वैदिक वास्तु - शास्त्र के परिपेक्ष्य में आदर्श नगर नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

स्थापत्य वेद संकाय

के अन्तर्गत वास्तुशास्त्र विषय में पी - एच. डी. (विद्यावारिधि) उपाधि हेतु प्रस्तुत



शोध प्रबन्ध

2002

: निर्देशक :

डॉ. आर. एन. पाण्डेय

पूर्व प्राचार्य

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर

: सह निर्देशक :

डॉ. बी. पी. तिवारी

परिसर प्रभारी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर

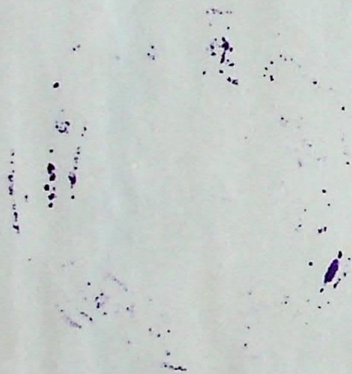
: शोधार्थी :

निर्मल कुमार पाण्डेय

एम. टेक., एल-एल. बी.

शोध केन्द्र

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, परिसर - अम्बिकापुर (छ. ग.)



मूल्यांकन हेतु अग्रसारित

Chaturved.
31.12.02

✓ परीक्षा विभाग





वैदिक वास्तु - शास्त्र के परिपेक्ष्य में आदर्श नगर नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

स्थापत्य वेद संकाय

के अन्तर्गत वास्तु शास्त्र विषय में पी - एच. डी. (विद्यावारिधि) उपाधि हेतु प्रस्तुत



शोध प्रबन्ध

2002

: निर्देशक :

डॉ. आर. एन. पाण्डेय

पूर्व प्राचार्य

रासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर

: सह निर्देशक :

डॉ. बी. पी. तिवारी

परिसर प्रभारी

महर्षि महेरा योगी वैदिक विरवविद्यालय, अम्बिकापुर

: रोधार्थी :

निर्मल कुमार पाण्डेय

एम. टेक., एल-एल. बी.

शोध केन्द्र

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, परिसर - अम्बिकापुर (छ. ग.)

वैदिक वास्तु - शास्त्र के परिपेक्ष्य में आदर्श नगर नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

स्थापत्य वेद संकाय

के अन्तर्गत वास्तुशास्त्र विषय में पी - एच. डी.(विद्यावारिधि) उपाधि हेतु प्रस्तुत



शोध प्रबन्ध

2002

: निर्देशक :

डॉ. आर. एन. पाण्डेय

पूर्व प्राचार्य

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर

: सह निर्देशक :

डॉ. बी. पी. तिवारी

परिसर प्रभारी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर

: शोधार्थी :

निर्मल कुमार पाण्डेय

एम. टेक.,एल-एल. बी.

शोध केन्द्र

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, परिसर - अम्बिकापुर (छ. ग.)

डॉ. आर. एन. पाण्डेय
शोध निर्देशक

पूर्व प्राचार्य
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,अम्बिकापुर
अम्बिकापुर, सरगुजा (छ.ग.)
दूरभाष : 07774 - 222396

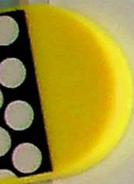
प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ***" वैदिक वास्तुशास्त्र के परिपेक्ष्य में आदर्श नगर नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन "*** विषय पर यह पी-एच.डी. (विद्यावारिधि) शोध प्रबंध ***श्री निर्मल कुमार पाण्डेय*** की मौलिक रचना है, जिसे उन्होंने मेरे निर्देशन और पर्यवेक्षण में निरंतर अध्ययनरत रहकर ***महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय परिसर-अम्बिकापुर*** शोध केन्द्र पर सम्पन्न किया है।

यह भी प्रमाणित किया जाता हे कि पंजीयन के उपरांत ***श्री निर्मल कुमार पाण्डेय*** ने ***महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय*** के पी-एच.डी.(विद्यावारिधि) संबंधित अध्यादेश में निर्धारित अवधि पूर्ण कर ली है, और अपनी शैक्षणिक योग्यता एवं बौद्धिक क्षमता के अनुसार वे इस कृति के सर्वथा योग्य है। इस पी-एच.डी.(विद्यावारिधि) शोध प्रबंध को विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने हेतु अनुशंसा की जाती है।

दिनांक : 26.12.2002

शोध - निर्देशक
[signature]
(डॉ. आर. एन. पाण्डेय)
पूर्व प्राचार्य



डॉ. आर. एन. पाण्डेय
शोध निर्देशक

पूर्व प्राचार्य
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,अम्बिकापुर
अम्बिकापुर, सरगुजा (छ.ग.)
दूरभाष : 07774 - 222396

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ***" वैदिक वास्तुशास्त्र के परिपेक्ष्य में आदर्श नगर नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन "*** विषय पर यह पी-एच.डी. (विद्यावारिधि) शोध प्रबंध ***श्री निर्मल कुमार पाण्डेय*** की मौलिक रचना है, जिसे उन्होंने मेरे निर्देशन और पर्यवेक्षण में निरंतर अध्ययनरत रहकर ***महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय परिसर-अम्बिकापुर*** शोध केन्द्र पर सम्पन्न किया है।

यह भी प्रमाणित किया जाता हे कि पंजीयन के उपरांत ***श्री निर्मल कुमार पाण्डेय*** ने ***महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय*** के पी-एच.डी.(विद्यावारिधि) संबंधित अध्यादेश में निर्धारित अवधि पूर्ण कर ली है, और अपनी शैक्षणिक योग्यता एवं बौद्धिक क्षमता के अनुसार वे इस कृति के सर्वथा योग्य है। इस पी-एच.डी.(विद्यावारिधि) शोध प्रबंध को विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने हेतु अनुशंसा की जाती है।

शोध - निर्देशक

दिनांक : 26.12.2002

(डॉ. आर. एन. पाण्डेय)
पूर्व प्राचार्य

डॉ. बी. पी. तिवारी
परिसर प्रभारी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर
परिसर-अम्बिकापुर
अम्बिकापुर, सरगुजा (छ.ग.)
दूरभाष : ०७७७४-२२३४३२

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ***" वैदिक वास्तुशास्त्र के परिपेक्ष्य में आदर्श [illegible] नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन "*** विषय पर यह पी-एच.डी. (विद्यावारिधि) शोध प्रबंध ***श्री निर्मल कुमार पाण्डेय*** की मौलिक रचना है, जिसे उन्होंने मेरे निर्देशन और पर्यवेक्षण में निरंतर अध्ययनरत रहकर ***महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय परिसर-अम्बिकापुर*** शोध केन्द्र पर सम्पन्न किया है।

यह भी प्रमाणित किया जाता हे कि पंजीयन के उपरांत ***श्री निर्मल कुमार पाण्डेय*** ने ***महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय*** के पी-एच.डी.(विद्यावारिधि) संबंधित अध्यादेश में निर्धारित अवधि पूर्ण कर ली है, और अपनी शैक्षणिक योग्यता एवं बौद्धिक क्षमता के अनुसार वे इस कृति के सर्वथा योग्य हैं। इस पी-एच.डी.(विद्यावारिधि) शोध प्रबंध को विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने हेतु अनुशंसा की जाती है।

सह निर्देशक

दिनांक: 26-12-[illegible]

(डॉ. बी. पी. तिवारी)
परिसर प्रभारी

डॉ. बी. पी. तिवारी
परिसर प्रभारी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर
परिसर-अम्बिकापुर
अम्बिकापुर, सरगुजा (छ.ग.)
दूरभाष : ०७७७४-२२३४३२

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ***" वैदिक वास्तुशास्त्र के परिपेक्ष्य में आदर्श नगर नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन "*** विषय पर यह पी-एच.डी. (विद्यावारिधि) शोध प्रबंध ***श्री निर्मल कुमार पाण्डेय*** की मौलिक रचना है, जिसे उन्होंने मेरे निर्देशन और पर्यवेक्षण में निरंतर अध्ययनरत रहकर ***महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय परिसर-अम्बिकापुर*** शोध केन्द्र पर सम्पन्न किया है।

यह भी प्रमाणित किया जाता हे कि पंजीयन के उपरांत ***श्री निर्मल कुमार पाण्डेय*** ने ***महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय*** के पी-एच.डी.(विद्यावारिधि) संबंधित अध्यादेश में निर्धारित अवधि पूर्ण कर ली है, और अपनी शैक्षणिक योग्यता एवं बौद्धिक क्षमता के अनुसार वे इस कृति के सर्वथा योग्य हैं। इस पी-एच.डी.(विद्यावारिधि) शोध प्रबंध को विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने हेतु अनुशंसा की जाती है।

सह निर्देशक

दिनांक: 26-12-02

(डॉ. बी. पी. तिवारी)
परिसर प्रभारी

घोषणा

मैं निर्मल कुमार पाण्डेय यह घोषित करता हूँ कि वैदिक वास्तु शास्त्र के परिपेक्ष्य में **आदर्श नगर नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन** विषय पर यह पी-एच.डी. (विद्यावारिधि) शोध प्रबंध मेरी मौलिक और सर्वथा अप्रकाशित कृति है। जिसे मैंने महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर, स्थापत्यवेद संकाय में पी-एच.डी. उपाधि हेतु ***डॉ. आर.एन. पाण्डेय*** शोध निर्देशक, पूर्व प्राचार्य शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर एवं ***डॉ. बी.पी. तिवारी*** शोध सह-निर्देशक, परिसर प्रभारी, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर के निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में तैयार किया है।

मैं यह भी घोषित करता हूँ कि इस शोध प्रबंध का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो किसी अन्य विश्वविद्यालय में शोध उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो।

निर्मल पाण्डेय

निर्मल कुमार पाण्डेय

अम्बिकापुर

दिनांक 26.12.2002

घोषणा

मैं निर्मल कुमार पाण्डेय यह घोषित करता हूँ कि वैदिक वास्तु शास्त्र के परिपेक्ष्य में **आदर्श नगर नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन** विषय पर यह पी-एच.डी. (विद्यावारिधि) शोध प्रबंध मेरी मौलिक और सर्वथा अप्रकाशित कृति है। जिसे मैंने महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर, स्थापत्यवेद संकाय में पी-एच.डी. उपाधि हेतु ***डॉ. आर.एन. पाण्डेय*** शोध निर्देशक, पूर्व प्राचार्य शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर एवं ***डॉ. बी.पी. तिवारी*** शोध सह-निर्देशक, परिसर प्रभारी, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर के निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में तैयार किया है।

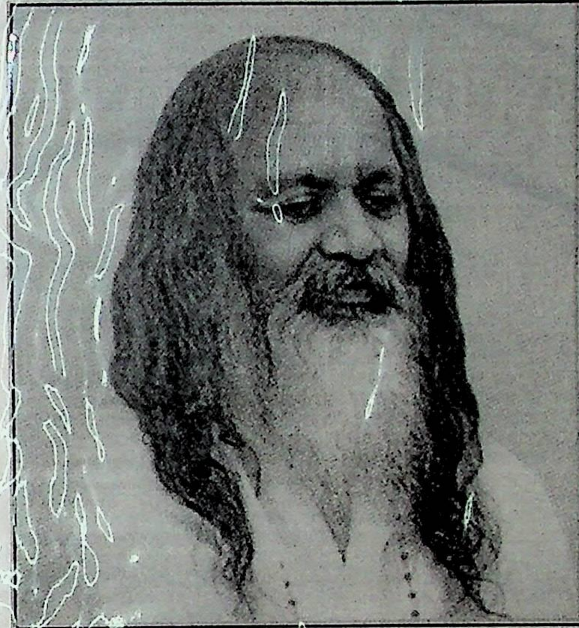
मैं यह भी घोषित करता हूँ कि इस शोध प्रबंध का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो किसी अन्य विश्वविद्यालय में शोध उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो।

निर्मल पाण्डेय

निर्मल कुमार पाण्डेय

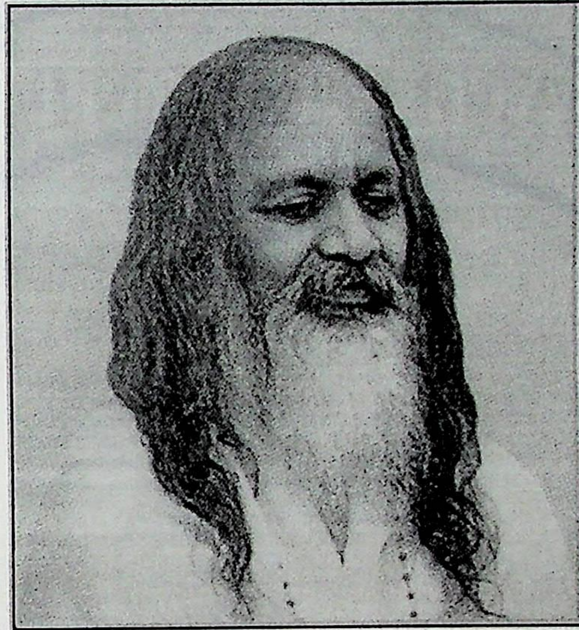
अम्बिकापुर

दिनांक 26.12.2002



" ज्ञान का क्षेत्र अपार है , किन्तु ज्ञान
स्वरूप आत्मा भी अनन्त, अपार,
सत्तावान है , इसीलिये आत्मा में
पूर्ण ज्ञान की जागृति सरलता से हो जाती है ।"

- महर्षि



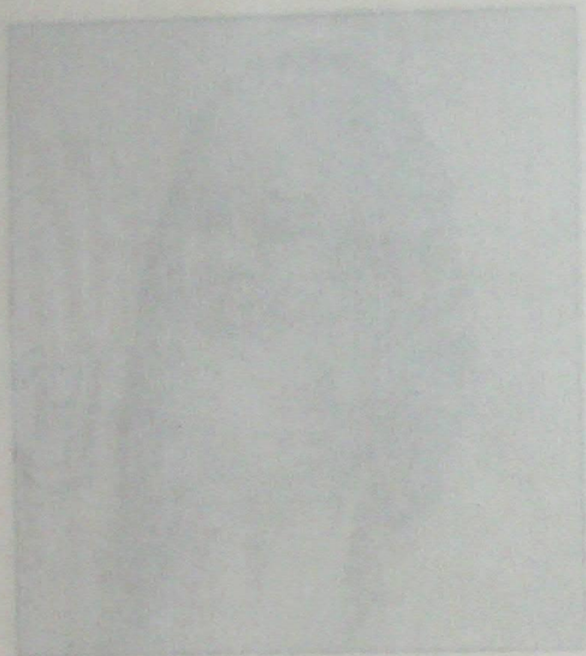
" ज्ञान का क्षेत्र अपार है , किन्तु ज्ञान
स्वरूप **आत्मा** भी अनन्त, अपार,
सत्तावान है , इसीलिये आत्मा में
पूर्ण ज्ञान की जागृति सरलता से हो जाती है ।"

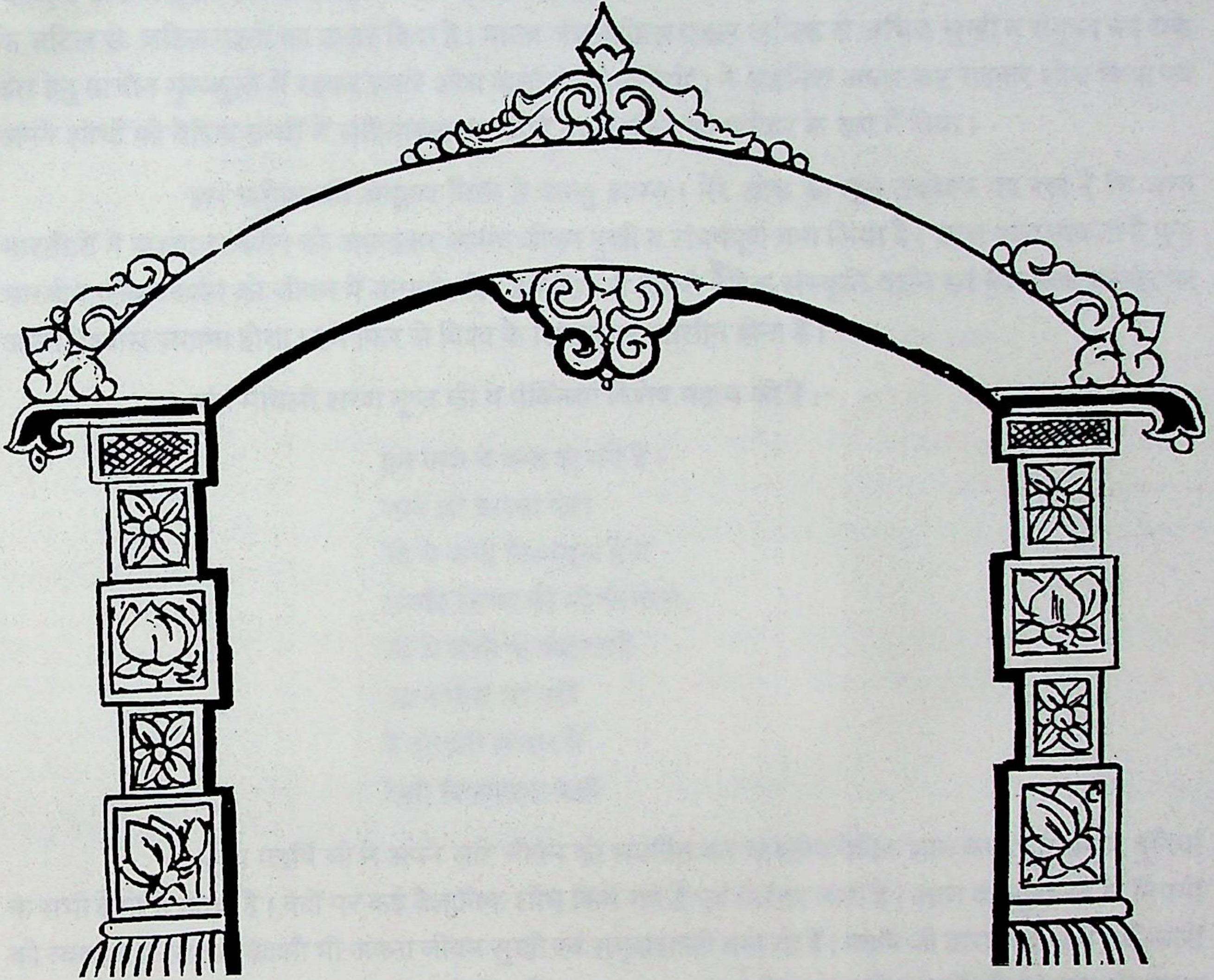
- महर्षि





प्राक्कथन एवं आभार प्रदर्शन





प्राक्कथन एवं आभार प्रदर्शन



प्राक्कथन एवं आभार

भारतीय सभ्यता व संस्कृति ऐसी पावन सलिला गंगा है जिसका प्रवाह मानव विकास के प्रारम्भिक चरण में प्रारम्भ हुआ एवं आज तक निरंतर प्रवाहमान है। भारतीय ज्ञान के अपार कोष वेद हैं जिन्होने मानव जीवन के जटिल से जटिल प्रश्नों का उत्तर दिया है। मानव जीवन किस प्रकार अधिक से अधिक सुखी व समृध्द बन सके इस हेतु प्राचीन गुरूकुलों में रहकर हमारे शोध कर्त्ताओं (मनीषियों) ने अहर्निश अपार कष्ट सहकर शोध किया एवं अपने शोधों को वैदिक ग्रन्थों में संहिताबद्ध कर आने वाली पीढ़ी को धरोहर के रूप में दिया।

इस धरोहर की अमूल्य निधि है वास्तु शास्त्र। मेरे शोध का मूल उद्देश्य यह रहा है कि आज भारतीयों ने पाश्चात्य दर्शन को अपनाकर अपना जीवन दुखी व संघर्षपूर्ण बना लिया है। आज आवश्यकता है पुनः भारतीय जीवन दर्शन को जीवन में उतारने की। हमें फिर से हमारी वैदिक संस्कृति दर्शन एवं वैज्ञानिक धरोहर पर आत्मविश्वास जगाना होगा। हमें फिर से विश्व के शिखर पर आसीन होना है।

यहां मैथिली शरण गुप्त की ये पंक्तियां विशेष महत्व की हैं :-

हम क्या थे क्या हो गये हैं।
जान लो इसका पता
जो थे कभी विश्वगुरू है न
उनकी शिष्य की भी योग्यता,
जो थे सभी के अग्रगामी
आज पीछे भी नहीं
है दीखती संसार में
ऐसी विपरीतता कहीं

पूज्य महर्षि जी ने अपने सारे जीवन को समर्पित कर भारतीय वैदिक ज्ञान का प्रचार प्रसार दुनियां के सभी देशों में किया है। वेदों पर कई वैज्ञानिक शोध किये गये हैं एवं निरंतर जारी है। आज वास्तुशास्त्र के नियमों को व्यवहार में लाकर विदशी भी अपना जीवन सुखी एवं समृद्धशाली बना रहे हैं। महर्षि जी द्वारा विदेशों में कई नगरों का निर्माण कराया गया है जहां वास्तु के सारे नियमों का अक्षरशः पालन किया गया है। महर्षि जी का स्वप्न है भूतल पर स्वर्ग का निर्माण। यह स्वप्न तभी पूरा होगा जब भारतीय वैदिक ज्ञान की गंगा जन -जन की चेतना में प्रवाहित होगी।

किसी भी कार्य को करने की प्रेरणा किसी न किसी अदृश्य शक्ति से ही प्राप्त होती है। कोई भी कार्य बिना सहयोग अथवा मार्गदर्शन के संभव नहीं होता। प्रस्तुत शोध अध्ययन में मुझे भी अनेक श्रोतों से अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनके लिए मैं ह्रदय से आभारी हूँ।

सबसे पहले तो मैं नतमस्तक हूँ आदि शक्ति *जगत जननी* एवं प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद *महर्षि महेश योगी* जी के श्री चरणों में जिनकी कृपा से मैं इस कार्य को पूर्ण कर सका। इसके पश्चात् मैं कृतज्ञ हूँ अपने पूज्य *माता-पिता* का जिनका आशीष एवं प्रेरणा मेरे कार्य को सदैव संबल प्रदान करते रहे।

इस अध्ययन के शोध - निर्देशक *डॉ. आर.एन. पाण्डेय* एवं सह- निर्देशक *डॉ. बी.पी. तिवारी* **परिसर प्रभारी महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय** के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य ज्ञान निधि में से कुछ अंश मुझे प्रदान कर मेरे कार्य को दिशा दी एवं शोध प्रपत्र के हर खंड को समृद्ध बनाया। मैं अपने मित्र एवं पूर्व परिसर प्रभारी महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय *श्री नरेन्द्र थापक* का आभारी हूं जिन्होंने सर्वप्रथम महर्षि विश्वविद्यालय एवं विद्यावारिधि पाठ्यक्रम के विषय में मुझे जानकारी दी साथ ही मैं आभारी हूँ *श्री अमरेश चंद्र त्रिपाठी* का जिन्होंने शोध कार्य के पहले चरण में मेरी यथा संभव सहायता की।

श्रद्धास्पद *प्रो. भुवनेश शर्मा कुलपति* **महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर,** *श्री अनुराग दीपक वर्मा* **कुलसचिव महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर** का एवं विश्वविद्यालय के समस्त पदाधिकारियों का हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने विश्वविद्यालय में शोध करने की अनुमति प्रदान कर एवं सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान करने की असीम कृपा की। मैं आभारी हूँ *श्री निकेतन आनंद गौड* एवं *श्री राजेन्द्र सोंठा जी* का जिन्होंने समय-समय पर शोध कार्य को आगे बढ़ाने हेतु अपना मार्गदर्शन प्रदान किया।

इस अध्ययन के लिए विषय सामग्री के संकलन में सहायता हेतु *डॉ. बी.पी. तिवारी* एवं *श्री हरिहर प्रसाद अवस्थी* का भी आभारी हूं जिन्होंने महर्षि परिसर अम्बिकापुर में उपलब्ध पुस्तकालय के उपयोग हेतु अनुमति प्रदान की। मैं आभारी हूँ वेद विज्ञान भवन अम्बिकापुर का जिन्होंने साहित्य संकलन में मेरी सहायता की। मैं आभारी हूँ पुस्तकालय प्रभारी महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर का जिन्होंने पुस्तकालय के उपयोग हेतु मुझे अनुमति प्रदान की।

अपने *परिवार के समस्त सदस्यों, अग्रजों, मित्रों* के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिनकी शुभेच्छाओं से यह कार्य पूर्ण हो सका। इस शोध कार्य में टंकण कार्य हेतु मैं *श्री अशोक कुजूर, श्री धरमदास, श्री ओम प्रकाश तिवारी* के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

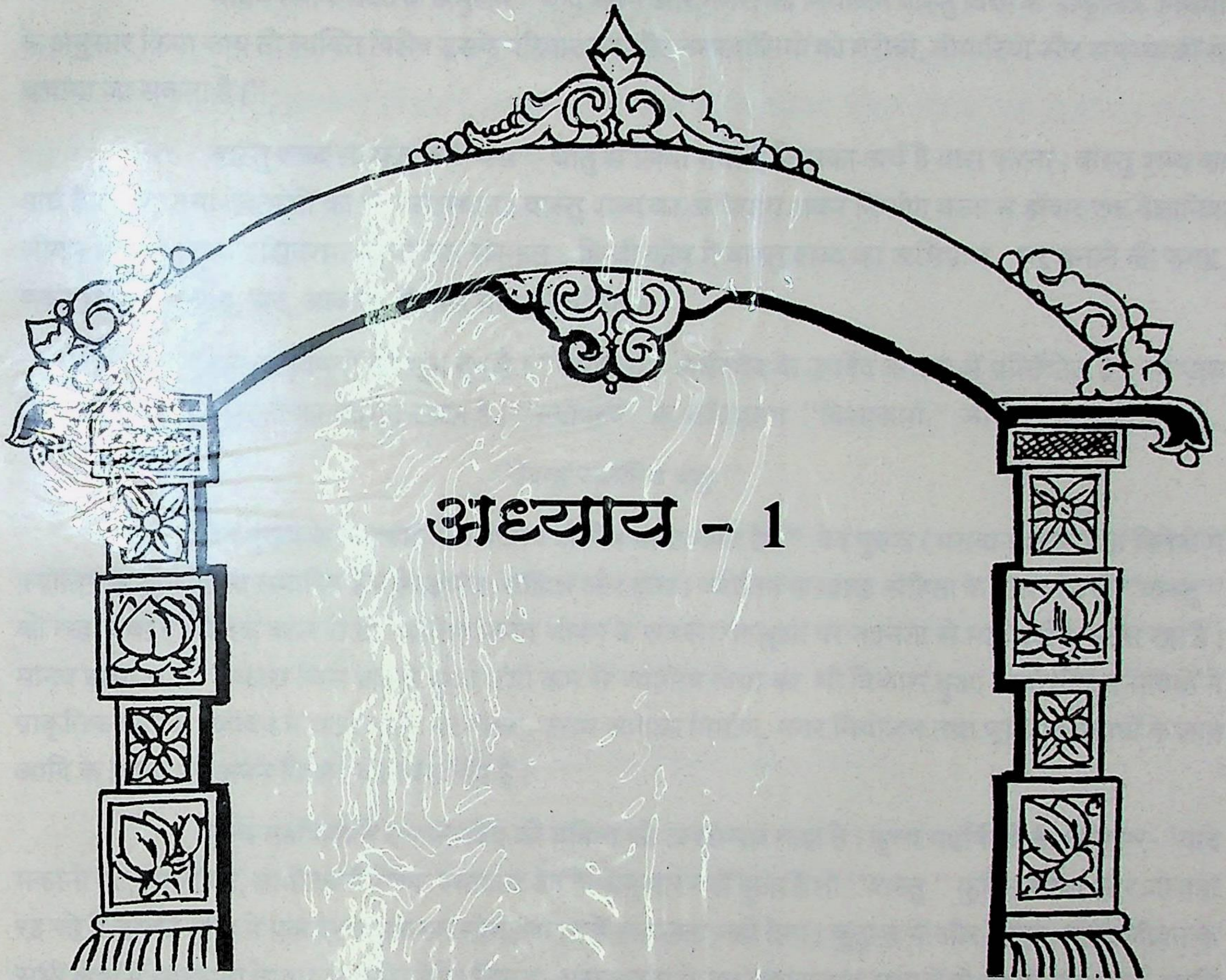
अंत में मैं आभारी हूं उन समस्त संस्थाओं एवं व्यक्तियों का जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस शोधकार्य को सम्पन्न करने में मेरी सहायता की।

निर्मल कुमार पाण्डेय

(निर्मल कुमार पाण्डेय)

अनुक्रम

मान - चित्र एवं आरेख - सूची



प्रस्तावना शोध प्रविधि एवं प्रतिदर्श परिचय



प्रस्तावना शोध प्रविधि एवं प्रतिदर्श परिचय



1. प्रस्तावना

1.1 विषय परिचय:-

महर्षि स्थापत्यवेद के अनुसार ''यदि भवन और नगरों का नियोजन वास्तु विद्या के प्राकृतिक नियमों के अनुसार किया जाय तो व्यक्ति विशेष उसके परिवारजन और नगरवासियों को गरीबी, बीमारियों और समस्याओं से बचाया जा सकता है।''

वास्तु शब्द संस्कृत के '' वस '' धातु से लिया गया है जिसका अर्थ है वास करना। वास्तु शब्द का अर्थ है मनुष्य तथा देवताओं का निवास स्थान। वास्तु शब्द का अभिप्राय भवन निर्माण कला न होकर एक वैज्ञानिक जीवन शैली है। वामन शिवराम आप्टे कृत संस्कृत - हिन्दी कोष में वास्तु शब्द का अभिप्राय - घर बनाने की जगह, भवन भूखण्ड, जगह, घर, आवास, निवास या भूमि वर्णित है।

समस्त विषयों का मूल वेद है। ''स्थापत्य'' अर्थववेद के उपवेद के रूप में प्रतिष्ठित है। स्थापत्य विश्व की समस्त कलाओं का उद्गम स्थल है। ''स्थापत्य'' के अधिष्ठाता ''विश्वकर्मा '' जी हैं।

''वेदाङ्गं ज्यौतिषं चक्षु ''

वेद पुरूष के छः अंगों में ज्योतिष को नेत्र माना गाया है।[1] वेद पुरूष (भगवान शंकर) के त्रिनेत्रों में ज्योतिष के तीन विषय समाहित हैं - सिद्धान्त, संहिता और होरा। ज्योतिष के खण्ड संहिता के अन्तर्गत ही ''वास्तु '' को रखा गया है। वैदिक काल से ही ज्योतिष मानव जीवन के समस्त पहलुओं पर गहनता से मार्ग दर्शन करता रहा है। मानव सभ्यता का विकास जिस क्रम में हुआ उसी क्रम से ज्योतिष विद्या का भी विकास हुआ। भारतीय मनीषियों ने प्राकृतिक आपदा , जीवन में घटने वाली घटनाओं, उत्तम आवास निर्माण, नगर नियोजन तथा भूमिगत पदार्थों के ज्ञान आदि के विषय पर अपने विचार व नियम दिये हैं।

पूज्य महर्षिजी ने स्थापत्यवेद की महिमा को अपरम्पार कहा है। पूज्य महर्षि जी के अनुसार- 'यदि मकानों का, नगरों का, ग्रामों का निर्माण, स्थापत्य वेद के अनुसार नहीं हुआ है तो ''वास्तु '' कुपित रहेगा और जो वहां रह रहे हैं उनकी बुद्धि में एक ऐसा आवरण रहेगा जो उन्हें सफलता नहीं देगा। कुटुम्ब में और भीतर-बाहर जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता के द्वार बन्द से रहेंगे। चिन्ता, असफलता ये सब नकारात्मक प्रभावों से वह घिरा रहेगा।' महर्षि जी के अनुसार - ''स्थापत्य वेद के विधान वैदिक गणित के वे अत्यन्त प्रभावशाली, दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करने वाले विधान हैं , जो सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि का भूतल पर प्रत्येक वस्तु से सम्बन्ध जोड़ते हैं। जो पर्वत, नदियां, आदि तीर्थ माने जाते हैं - समय-समय पर उनके दर्शन का महत्व हजारों वर्षों से चला आ रहा है। यह सब भारतीय संस्कृति के विधान स्थापत्य वेद और ज्योतिष शास्त्र के विधान हैं।''[2]

महर्षि जी ने आज की समस्त राजनैतिक समस्याओं के मूल में भी '' वास्तु के प्रकोप '' को प्रमुख कारण कहा है। देश के राजकीय कार्यालय,संसद,विधान सभा भवनों के बहुत से प्रवेश द्वार ठीक दिशा में न होने से वहां लिये जाने वाले निर्णय जन कल्याण कारी नहीं होंगे। हमारे देश की परिस्थितियों के लिये पूज्य महर्षि जी ने अपने विचार कुछ इस तरह प्रस्तुत किये हैं -

---

(1) वास्तुसौख्यम् / भूमिका/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय ,वाराणसी
(2) महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय विशेषताएं / 91

''सहस्राधिक वर्षो से वैदिक सिद्धान्तों की विस्मृति हो गई थी -अज्ञानवश प्रकृति के नियमों की अवहेलना होने लगी, कलिकाल के प्रभाव से भौतिकवादी सिद्धान्त प्रबल हो गये। आध्यात्मिक और आधिदैविक सिद्धान्त सबके दैनिक जीवन से ओझल हो गये। इसी उथल-पुथल में ''वास्तु'' के प्रकोप ने भारतीय जीवन को भीतर से मुरझा दिया।''(3)

पूज्य महर्षि जी ने कहा है - ''नित्य, त्रिकाल, संध्या वंदन, भावातीत ध्यान, पूजा करते हुये भी यदि कार्यो में विध्न आते हैं, सफलता कम होती है तो समझना चाहिये कि ग्रह शांति की आवश्यकता है, वास्तु शान्ति की आवश्यकता है, दैवी सहयोग कम हो रहा है। इतनी सतर्कता से दैनिक जीवन वैदिक अर्थात् ज्ञान समन्वित रहेगा। चतुर्दिक सफलता का राजमार्ग उसके लिये सदा खुला रहेगा।''(4)

आधुनिक वास्तुशात्रियों ने आज वैदिक वास्तु के महत्व को समझा है। आज कोई भी व्यक्ति अपना भवन वास्तुशास्त्र के अनुसार बनाना चाहता है। आधुनिक इंजीनियर्स के लिये अब यह अनिवार्य हो गया है कि वे वास्तु शास्त्र का विधिवत अध्ययन करें।

प्रसिद्ध वास्तु शास्त्री ''चन्द्रकान्त सोमपुरा'' जिन्होने भारत ही नहीं बल्कि U.K.,U.S. एवं Singapore में भी कई धार्मिक भवनों का निर्माण किया है तथा अयोध्या में प्रस्तावित ''राम मंदिर'' के वास्तुविद हैं के अनुसार -

"Temple Architecture involves severel Mathemetical calculations, based on Astrology. My work is not based on principles of modern architecture but on Indian classical Scripture, which are belived to be divine as well as scientific. I follow ancient family traditions in planing and executing assignmets, not using even a single piece of iron."

अयोध्या में निर्मित होने वाले राम मंदिर के विषय में उनका कथन है -

" Any one who enters it shall leave fully energised by the divine vibrations ."
मंदिर में प्रवेश करने वाला हर व्यक्ति दैवी चेतना से भरपूर होगा।

सोमपुरा लिखते हैं :- " When our energies get depleted and psychological states get porturbed, the heavenly abodes offer a healing psychic bond with God. It is the ultimate psychic switch and that is my great joy ." (5)

भविष्य महापुराण में उल्लेख है :-

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्ध्यन्ति गृहं विना। यतस्तस्माद् गृहारम्भप्रवेशसमयौ ब्रुवे॥
परगेह कृताः सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः। न सिद्धयन्ति यतस्माद् भूशीशः फलमुश्नते॥

- भविष्य महापुराण में गृहस्थ के लिये अपने स्वयं के घर का महत्व बताया गया है। स्वयं के घर के बगैर व्यक्ति के श्रौत और स्मार्त कर्म पूर्णफल नहीं देते। यदि उक्त कर्म दूसरे की भूमि या घर में करते हैं, तो उसके पुण्यफल का भागीदार भूमि स्वामी या गृहपति बन जाता है। इस प्रकार व्यक्ति को स्वयं का घर बना कर सुखपूर्वक निवास करना चाहिये।(6)

---

(3) महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय विशेषताएं / 122
(4) महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय विशेषताएं / 122
(5) Times of India - 8Th July 2001 (Sunday Times) .
(6) वास्तुसौख्यम् / भूमिका/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय ,वाराणसी

वास्तुशास्त्र के विषय में Dr. Bruno Dagens की टिप्पणी विषय के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालती है :-Having bowed his head before the omniscient god, Lord of the Universe and having listened exclusively to Him. Mayas,wise and learned architect, proclaims his systematic treatise which is the basis of success for every kind of dwelling (vastu) intended for gods & men and which contains the characteristics of dwelling for all.

''मय'' जो कि एक कुशल और विद्वान शिल्पी थे ने प्रभु के श्री चरणों में प्रणाम कर वास्तु के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया जो कि मनुष्यों एवं देवताओं के लिये एक सफल आवास के निर्माण के लिये आवश्यक है।[7]

विद्वानों नें अपने अपने प्रकार से वास्तु की महत्ता पर प्रकाश डाला है। दो विद्वानो ने भारतीय वास्तु परम्परा के दो अभूतपूर्व ग्रन्थों का विश्लेषण कर व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रथम हैं श्री प्रसन्न कुमार आचार्य जिन्होंने मानसार ऋिषि द्वारा रचित मानसार ग्रन्थ पर विस्तृत शोध कर चार खण्डों में व्याख्या प्रस्तुत की है। द्वितीय हैं डॉ. डी. एन. शुक्ल जिन्होंने राजा भोज द्वारा रचित ग्रंथ समरांगण-सूत्रधार पर अनुसंधान कर ग्रंथ को जन सामान्य हेतु अति उपयोगी बना दिया है।

वास्तुशास्त्र के महत्व पर श्री प्रसन्न कुमार आचार्य का मत भी अतिमहत्वपूर्ण है -

" For civilized people a comfortable residence is as necessary as food and clothes. In fact the standard of civilization seems to be ragulated, amongest other things by plan, aesthetic construction and successful finish of buildings religions, residential or military."

एक सभ्य समाज में उत्तम गृह की आवश्यकता उतनी ही है जितनी कि भोजन एवं वस्त्र की।[8]

वास्तुशास्त्र के स्थान पर कुछ ग्रन्थ यथा-मानसार, मयमत आदि शिल्पशास्त्र का शीर्षक देते हैं। ये सभी ग्रन्थ एक ही शास्त्र का प्रतिपादन करते हैं परन्तु वास्तुशास्त्र एवं शिल्प शास्त्र में स्पष्ट अंतर है। दक्षिण भारतीय वास्तु कला में चित्रण की प्रधानता होने के कारण वास्तु कला अथवा भवन निर्माण कला भी एक प्रकार से शिल्पकला अर्थात मूर्तिकला के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। फलस्वरूप दक्षिण के वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ भी शिल्प-शास्त्र के शीर्षक से प्रचलित हुये। वास्तु शब्द शिल्प की तुलना में अधिक प्राचीन है। वास्तु शब्द की उत्पत्ति वस्तु से हुई है। कोई भी निर्माण द्रव्य-काष्ठ,इष्टिका,पाषाण,धातु इत्यादि जब निर्माण प्रक्रिया से गुजरते हैं तो वास्तु कहलाते हैं। यह समस्त सृष्टि ही वस्तु है परन्तु विश्वकर्मा द्वारा वह वास्तु में परिणित हो गयी। ब्रम्हा ने केवल मानसी सृष्टि इस उबड़ खाबड़ जमीन को महराजा पृथु ने समतल कर भूतल पर आवास योग्य पुर,ग्राम,भवन, पत्तन,प्रसाद आदि का निर्माण विश्वकर्मा से कराया।[9]

वास्तु शब्द का साधारण अर्थ भवन या नगर है। वास्तु शब्द का व्यापक अर्थ धरा है। इस प्रकार पृथ्वी पर निर्मित होने वाली संरचनाएं नगर,भवन, ग्राम आदि सभी वास्तु हैं। भारतीय वास्तु कला वास्तव में विशुद्ध भौतिक या यान्त्रिक न होकर पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है।

मयमतम् के अनुसार -

---

(7) मयमतम/अध्याय 1.1-2/ब्रूनो डैगेन्स/सीता राम भारतीय इंस्टीट्यूट - 1.1-2

(8) MANSARA SERIES - II Indian Architecture - P.K.Acharya Chapter -I .2.

(9) समरांगण- सूत्रधार- वास्तु- शास्त्रीय (भवन निवेश) - पृ.- 17/20

" Experts call all places where immortals and mortals dwell, 'dwelling sites' (Vastu).The Earth is the principal dwelling place because it is on her that constructed dwelling (Vastu) such as temples have appeared and it is because of her nature as site and because of union with site that the ancients called them "dwelling sites" in this world."

अर्थात् जहां सजीव, निर्जीव, निवास करते हैं " वास्तु " कहलाता है। पृथ्वी सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है जहां हर प्रकार का निर्माण कार्य किया जाता है।[10]

1.2 वैदिक ग्रन्थों में भूविज्ञान -

वैदिक युग में भी भू- विज्ञान विषयक ज्ञान से लोग भली- भांति परिचित थे। पुराणों में एक कथा है महाराज पृथु - गोदोहन की। वास्तव में इसे विशुद्ध भौगर्भिक-शास्त्रीय अन्वेषण वृतान्त समझना चाहिये।

कौन सी भूमि कैसी है कहां पर नगर बसाने चाहिये और कहां पर दुर्ग स्थापित करने चाहिये ? कौन से देश लोगों के निवास योग्य हैं कौन से निवास योग्य नहीं हैं ? कौन सी ऐसी पृथ्वी है जहां खनिज है एवं जो खनन कार्य करने योग्य (खनिमती) है ? कौन सी भूमि ऐसी है जहां रत्न / बहुमूल्य पत्थर आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, कौन सी शस्य - श्यामला है,कौन सी सिता है; पीता है, कृष्णा है रक्ता है - यही महाराज पृथु का गोदोहन है, जिसे वर्तमान युग के वैज्ञानिक/विद्वान आज तक समझ न सके। यहां भूमि के जो वर्ण (सिता, पीता, कृष्णा, रक्ता) बताये गये हैं ये सब मृदा परीक्षण के मानबिन्दु हैं।

समरांगण सूत्रधार में भू-विज्ञान विषय पर एवं भू-विज्ञान के व्यावहारिक पक्षों पर प्रमुखता से टिप्पणी की गयी है। किसी भी नगर के सुचारू रूप से विन्यास करने के लिए अथवा किसी देश के भाग का आवास निर्माण करने से पूर्व इस क्षेत्र के स्थलाकृति (Topography) भूमि एवं मिट्टी के प्रकार की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। इतना ही नहीं समस्त ब्रम्हाण्ड, ग्रह, नक्षत्र , नदियां, पर्वत, समुद्र आदि के विषय में भी पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। इसी निमित्त समरांगण में ब्रम्हाण्ड के समस्त लक्षणों का वर्णन विस्तार से किया गया है। पृथ्वी, पृथ्वी का आकार, जम्बूद्वीप एवं वहां के लोग, पर्वत, नदियां, समुद्र आदि के विषय में भी वर्णन किया गया है।

किसी भी वास्तु रचना से पूर्व भूमि एवं स्थल निरीक्षण करने के साथ ही मिट्टी एवं शैलों की स्थिति एवं उनके प्रकारों का भी अध्ययन करना चाहिये। इस प्रकार व्यावहारिक भू - विज्ञान कर भी प्रयोग वास्तु विनिवेश में करना चाहिये। मृदा एवं शैल परीक्षण ध्वनि, स्पर्श, गंध , रंग एवं स्वाद के अनुसार करना चाहिये। मिट्टी का परीक्षण इस आधार पर भी करना चाहिये कि मिट्टी रंध्रयुक्त तो नहीं है , मिट्टी का घनत्व किस प्रकार का है। समरांगण - सूत्रधार में रंध्रयुक्त एवं कम घनत्व (Loose Soil) वाली मिट्टी पर वास्तु विनिवेश नहीं करने का निर्देश दिया गया है। इस आधार पर यह नियत किया जा सकता है कि परीक्षण की हुई मिट्टी पर नगर , ग्राम या भवन निर्माण उपयुक्त होगा या नहीं।[11]

आधुनिक अभियांत्रिकी भू - विज्ञान में भी वास्तु - शास्त्रानुसार रंध्रयुक्त एवं कम घनत्व (Loose Soil) वाली मिट्टी पर भवन, पुल, रोड, रेल - मार्ग , नगर आदि का निमार्ण नहीं करने के विषय में उल्लेख है।

---

(10) मयमतम् - अध्याय 2 -पृष्ठ क्र. 2 - ब्रूनो डैगेन्स/सीता राम भारतीय इंस्टीट्यूट

(11) समरांगण- सूत्रधार/ पृ.- 17/20/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स,दिल्ली

" Porosity is an important engineering property in the sense that it accounts for the absorption value of the stones in most cases and also that a higher porosity signifies a lesser density which generally means a lesser compressive strength ."

अर्थात अधिक रंध्रयुक्त शैल या मृदा का घनत्व कम होता है एवं इस प्रकार के शैल या मृदा का कम्प्रेसिव स्ट्रेन्थ कम होता है। अतः इस प्रकार के शैल या मृदा पर किसी भी प्रकार निर्माण कार्य स्थायी नहीं होता।[12]

1.2.1 वैदिक ग्रन्थों में भूजल विज्ञान -

बृहत् संहिता अध्याय 53 में दकार्गला अध्याय वर्णित है जिसमें भूमिगत जल की परीक्षा के विषय में मार्गदर्शन दिया गया है। आज के वैज्ञानिकों ने भी भूमिगत जल के परीक्षण की जो विधियां बतायी हैं उनमें इस अध्याय की विषयवस्तु का उल्लेख है। विविध प्रकार के वृक्षों यथा गूलर, अर्जुन, निंगुण्डी, बेर, ढाक, बहेड़ा, कम्पिल, करंज, महुआ, तिलक (बांस की प्रजाति), कदम्ब, ताड़, कपित्थ, अशमन्तक, हरिद्र, वृक्ष, भारंगी, त्रिवृत्त, दन्ती, सूकरपादी, लक्ष्मणा आदि की उपस्थिति से जल के ज्ञान का वर्णन है। विविध वृक्षों की उपस्थिति से इस बात का पता लगाया जा सकता है कि भूमि के कितने नीचे जल उपस्थित है। भूमि की उष्मा, भूमि के प्रकार आदि से भी भूजल स्तर का पता लगाया जा सकता है।[13]

1.3 वास्तु के विभाग -

विद्वानों के मतानुसार वास्तु को तीन भागों में बांटा जा सकता है :-

(1) वास्तु
(2) शिल्प
(3) चित्र

विविध ग्रन्थकारों ने अपनी सुविधानुसार विषय के अध्ययन हेतु विषय के विभाग किये हैं। मानसार में वास्तु के क्षेत्र या विभाग का वर्णन मिलता है।

''तैतलाश्च नरोचैव यस्मिन्यस्मिन्॥
तद्वस्तु सुरभिः प्रोत्तां तथा वै वज्ञयते ऽधुना॥
धरा हर्म्यादि यानं च पर्यङ्कादि चतुर्विधम्॥
धरा प्रधानवस्तु स्यात्तत्तज्जातिषु सर्वशः॥
विमानादीनि वास्तूनि वस्तुतं (तः) वस्तुसंश्रयात्॥
तान्येव वस्तुरे (चै) वेति कथितं वस्तुविद्दुधैः॥

अर्थात् वास्तु के निम्न चार विभाग हैं :-

(1) भूमि
(2) भवन
(3) यान

---

(12) Engineering & General Geology/ 339/Parbin Singh/ S.K. Kataria & Sons,Ludhiana
(13) बृहत् संहिता / खण्ड -2 / अध्याय 53/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र / रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(4) शय्या

इस प्रकार भूमि, व्यक्ति का निवास,उसके शयन करने का स्थान, वाहन ये सब वास्तु के ही विभाग हैं। वास्तु शास्त्र का क्षेत्र अति विस्तृत है।[14]

दक्षिण भारत के स्थापत्य की महत्वपूर्ण कृति मयमतम् के अनुसार :

"I present their different varieties which are four in number. Earth, Buildings, Cenveyances and Seats"

अर्थात यहां भी भूमि, भवन, यान और शय्या वास्तु के चार विभाग बताये गये हैं। परन्तु मयमतम् में वास्तु के क्षेत्र को और व्यापक किया गया है।

भवन: भवन के अंतर्गत हॉल, घर, राजमहल, सभाभवन आदि को रखा गया है।

यान: यान के अंतर्गत समस्त प्रकार के वाहन, युद्ध में प्रयुक्त होने वाले वाहन आदि को रखा गया है।

आसन: आसन के अंतर्गत सिंहासन, दीवान,कुर्सी, बेंच, शयन हेतु पलंग आदि आते हैं।

भूमि : इन सबसे महत्वपूर्ण स्थान भूमि का है क्योंकि पृथ्वी ही सम्पूर्ण संसार का आधार है।

इन सबके साथ-साथ एक नया अध्याय भी मयमतम् में महत्वपूर्ण है, वह है ''शिल्प एवं चित्र लक्षण'' (Iconogrrphy)। इस अध्याय में चित्रकला के सभी आयामों को प्रमुखता से दर्शाया गया है। राजाओं के सिंहासन, राजमुकुट, रथों आदि का विस्तृत विश्लेषण भी किया गया है।[15]

उत्तर भारतीय वास्तुशास्त्रीय परम्परा में महाराजाधिराज भोज द्वारा रचित समरांगण - सूत्रधार का अपना विशिष्ट महत्व है। समरांगण सूत्रधार में वास्तुशास्त्र की महत्ता एवं व्यापकता पर प्रकाश डाला गया है।

''देश: पुरम निवासश्च सभावेश्मासनानि च।
यद्यदीदृशमन्यच्च तत्तच्छ्रेयस्करं मतम्॥
वास्तुशास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणनिश्चय:।
तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रमेतदुदीर्यते॥''

इस प्रकार देश, पुर, निवास, सभा, वेश्य और आसन आदि सभी श्रेयस्कर माने गये हैं। वास्तुशास्त्र के द्वारा ही इनका लक्षण निश्चित किया जा सकता है कि उनका निर्माण उचित है अथवा नहीं। इसीलिये लोक कल्याण की भावना से वास्तुशास्त्र का व्याख्यान किया गया है। इस धरती पर बनने वाली समस्त संरचनाएं ही वास्तु के अंतर्गत आती हैं। वास्तु के क्षेत्र को निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

(1) देश :- सम्पूर्ण राष्ट्र, राज्य,जिले आदि।

(2) पुर :- राजधानी, महानगर, लघुनगर आदि।

(3) निवास :- गांव, कस्बे, गलियां, बस्तियां, कॉलोनी आदि।

(4) सभा :- विशेष प्रकार के भवन यथा यज्ञ शाला, मन्त्रशाला, परिषद आदि।

(5) वेश्म :- प्रासाद, उच्चकोटि के भवन,सामान्य घर आदि।

---

(14) मानसार/अध्याय 3/श्लोक 1-3/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(15) मयमतम - अध्याय 2 (2.1-3) /ब्रूनो डैगेन्स/सीता राम भारतीय इंस्टीट्यूट

(6) आसन :- विभिन्न प्रकार के पंलग, सिंहासन, सवारी आदि।

ये सभी वास्तु के अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। इनमें से जो भी रचना वास्तु सम्मत होती है वही कल्याणकारक है।[16]

तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त वर्णित समस्त संरचनाओं का निर्माण वास्तुशास्त्रीय सिद्धांतों को ध्यान में रखकर करना चाहिये। इस प्रकार की संरचनाओं में निवास करने वाले लोग भोग विलास से युक्त होकर हर प्रकार की समृद्धि को प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत यदि संरचनाओं का निर्माण वास्तुशास्त्रीय सिद्धांतों के विपरीत होता है तो लोग कई प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त रहते हैं।

हर शोध कार्य का प्रारंभ कुछ उद्देश्यों की पूर्ति को लेकर किया जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं :

1.4 शोध उद्देश्य -

1. वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध वास्तु शास्त्र के सिद्धांतों का गहन विश्लेषण करना। वास्तु शास्त्र की प्राचीनता एवं भारतीय वास्तुकला की उत्कृष्टता एवं व्यापक्ता का अध्ययन करना।

2. वैदिक ग्रन्थों के नियमानुसार आदर्श नगर नियोजन के सिद्धांतों का अध्ययन करना। वर्तमान परिपेक्ष्य में ये सिद्धांत नगर विन्यास हेतु कितने व्यवहारिक है उसका पता लगाना।

3. वैदिक वास्तु शास्त्र के अनुसार एक आदर्श गृह निर्माण के लिये आवश्यक परिस्थितियों नियमों एवं सिद्धांतों को जानने का प्रयत्न करना।

4. सम्प्रति वैदिक वास्तु शास्त्र के नियम कितने व्यवहारिक है यह भी अध्ययन का विषय है।

5. वैदिक वास्तु शास्त्र में उपलब्ध वास्तु सम्बन्धी ज्ञान का विश्लेषण करना जो कि मानव सभ्यता के लिए कल्याणकारक हों।

6. वास्तु शास्त्र के नियमों का लोगों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना। इस हेतु प्रतिदर्श के रूप में अम्बिकापुर नगर के विविध भवनों का चयन किया गया है।

7. अम्बिकापुर नगर का नगर नियोजन के सिद्धांतों के आधार पर विश्लेषण करना एवं नियमों के औचित्य का अध्ययन करना।

8. वास्तु के नियमों के वैज्ञानिक आधार का विश्लेषण करना।

1.5 शोध प्रविधि -

1. शोध कार्य हेतु वैदिक वास्तु शास्त्र पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों - वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद्, संहिता, मानसार, मयमतम, विश्वकर्मा, प्रकाश आदि ग्रन्थों का आधार लिया गया है।

(16) समरांगण- सूत्रधार - अध्याय 1/4-5/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली

2. अन्य ग्रन्थों एवं समसामयिक प्रकाशित ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकायें भी शोध का आधार हैं।

3. वास्तु विज्ञान की प्रासंगिकता एवं व्यवहारिकता का अध्ययन करने हेतु एक शोध सर्वेक्षण प्रपत्र तैयार किया गया है। इस आधार पर प्रतिदर्श के रूप में चयनित अम्बिकापुर नगर एवं नगर में निवास करने वाले लोगों के जीवन शैली का विश्लेषण किया जायेगा।

1.6 परिकल्पनायें -

इस अध्ययन में निम्न निष्कर्षों तक पहुंचने का प्रयास किया गया है।

1. वास्तु शास्त्र भी वैदिक ज्ञान है।

2. वास्तु शास्त्र के सिद्धांत पूर्णत: वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं।

3. भारतीय वास्तु ज्ञान भवन निर्माण कला न होकर सम्पूर्ण जीवन पद्धति है।

4. भारतीय वास्तु कला केवल भौतिक नहीं है अपितु आध्यात्मिक पक्षों का भी प्रतिपादन करती है।

5. यदि नगरों का निर्माण वास्तु शास्त्रीय ढंग से हो तो वहां निवास करने वाले लोगों की प्राकृतिक शक्तियों (उर्जा) का भरपूर सहयोग प्राप्त होता है। इस प्रकार व्यक्ति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से सुखी जीवन यापन करता है।

6. भवन में यदि रसोई घर आग्नेय कोण में न हो तो महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।

7. प्रवेश यदि उत्तर या पूर्व में हो तो लोगों का जीवन सुखी होता है।

1.7 अध्याय विभाजन -

सम्पूर्ण शोध कार्य अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पांच अध्यायों में सम्पन्न किया गया है।

अध्याय-1 प्रस्तावना एवं प्रतिदर्श परिचय

अध्याय-2 वास्तु शास्त्र का वैदिक चिन्तन

अध्याय-3 वैदिक वास्तु शास्त्र और आदर्श नगर नियोजन

अध्याय-4 वास्तु शास्त्र और गृह निर्माण

अध्याय-5 निष्कर्ष एवं उपसंहार

अध्याय - 1

अध्याय 1 में विषय परिचय, सैद्धांतिक पृष्ठभूमि, प्रतिदर्श चयन, शोध प्रविधि एवं शोध की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में प्रतिदर्श के औचित्य एवं मानचित्र का भी समावेश किया गया है।

अध्याय-2

अध्याय 2 में वास्तु शास्त्र का वेदों में जो ज्ञान निहित है उसका विश्लेषण किया गया है। विविध वैदिक ग्रन्थों ऋगवेद, अथर्ववेद, यर्जुवेद, सामवेद, संहिता, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत, उपनिषदों आदि में वास्तु शास्त्रीय विषयों का जो प्रतिपादन है उसकी चर्चा की गयी है।

महर्षि वेद विज्ञान के अनुसार संसार का समस्त ज्ञान जो कि चेतना में निहित है, वेदों से ही उद्धृत है। ज्ञान के तीन भाग हैं ऋषि-देवता-छंद एवं तीनों का इकट्ठापन संहिता है जो कि ज्ञान की सम्पूर्णता है। अध्याय-2 में यह जानने का प्रयत्न किया गया है कि वास्तु शास्त्र के मूलभूत सिद्धांत वेदों में निहित है। इस अध्याय में विविध ग्रन्थों में वास्तु पद विन्यास, वास्तु के दिशा निर्देश, वास्तु पुरूष की उत्पत्ति, वास्तु पुरूष का स्वरूप, वास्तु एवं ज्योतिष प्रकरणों पर विस्तार चर्चा की गयी है। विविध प्रकार के वास्तु पद विन्यासों के चित्रों का भी समावेश है।

अध्याय - 3

अध्याय 3 में वैदिक शास्त्र के अनुसार आदर्श नगर नियोजन के विषयों का सविस्तार विश्लेषण किया गया है।

नगर नियोजन पर विविध वैदिक ग्रन्थों में जो दिशा निर्देश उपलब्ध है उनकी भी चर्चा की गयी है। नगर नियोजन हेतु उपयुक्त भूमि, नगर हेतु वास्तु पद विन्यास, नगर की मार्ग व्यवस्था, नगर की वसति योजना, नगर के विविध प्रकार, नगर में देवालयों (मंदिरों) की स्थापना आदि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

प्रतिदर्श के रूप में चयनित नगर का वास्तु शास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। नगर में वास्तु शास्त्र के अनुसार विन्यास है कि नहीं यह भी जानने का प्रयत्न किया गया है। नगर में नियोजन की दृष्टि से जो त्रुटियां हैं उनका भी विश्लेषण किया गया है। नगर का विस्तृत मानचित्र भी संलग्न है।

अध्याय - 4

अध्याय 4 में आदर्श गृह निर्माण के नियमों एवं प्रविधियों की चर्चा की गयी है। वैदिक ग्रन्थों में गृह निर्माण विषय के पहलुओं भूमि-परीक्षण, प्लव परीक्षण, मृदा परीक्षण, शल्य विचार, गृह निर्माण की आवश्यकता, गृह निर्माण हेतु उपयुक्त दिशा एवं स्थान का चयन, भूमि के प्रकार, गृह में कक्ष नियोजन, वास्तु पद विन्यास, जल का स्थान, गृह में कूप (कुंआ) हेतु स्थान, गृह के चारों ओर वनस्पतियों का चयन, गृह का प्रवेश द्वार (चारों दिशाओं के अनुरूप), शिलान्यास की दिशा का निर्धारण, शिलान्यास विधि, गृहारंभ, गृह प्रवेश आदि पर गहन विश्लेषण किया गया है।

एक शोध-सर्वेक्षण प्रपत्र (परिशिष्ट में संलग्न) तैयार कर प्रतिदर्श के रूप में चयनित नगर के विविध भागों के भिन्न-भिन्न घरों का विश्लेषण किया गया है। विविध दिशाओं के प्रवेश द्वार एवं विविध वास्तु विन्यास करने वाले लोगों के जीवन शैली पर शोध किया गया है। वास्तु के सिद्धांत सम्प्रति कितने व्यावहारिक एवं प्रासंगिक है यह भी जानने का प्रयत्न किया गया है।

अध्याय- 5

अध्याय 4 में शोध अध्ययन के निष्कर्षों की प्रस्तुति एवं विवेचना की गयी है। शोध अध्ययन में परखी गयी शोध परिकल्पनाओं का भी विवेचनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत है। वास्तु शास्त्र की वैज्ञानिकता पर भी इस अध्याय में विवेचनात्मक प्रस्तुतीकरण है।

इसके अतिरिक्त अध्ययन में तीन परिशिष्ट संलग्न किये गये हैं।

1. शोध सर्वेक्षण हेतु तैयार किये गये अनुसूची का प्रारूप
2. राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी (महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर) में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाण - पत्र
3. राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी (शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर) में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाण - पत्र

प्रत्येक अध्याय में चर्चित संदर्भों को प्रस्तुत करने के लिए फुटनोट पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध अध्ययन के अंत में एक विस्तृत संदर्भ - सूची प्रस्तुत की गयी है। इसके अंतर्गत संपूर्ण अध्ययन में प्रयुक्त समस्त संदर्भ उनके लेखकों प्रकाशकों /स्त्रोत्रों के नाम की विस्तृत सूची प्रस्तुत की गयी है।

1.8 प्रतिदर्श चयन -

1.8.1 प्रतिदर्श परिचय -

प्रतिदर्श हेतु नवनिर्मित छत्तीसगढ़ प्रान्त के उत्तरी छोर पर स्थित सरगुजा जिले के मुख्यालय अम्बिकापुर नगर एवं आसपास के ग्रामों को लिया गया है। सरगुजा जिला 22° 38′ से 24° 61′ उत्तर अक्षांस तथा 81° 35′ से 85° 15′ देशांतर पूर्व के मध्य स्थित है। यह जिला प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है। पर्वत, नदियां, विविध वनस्पतियों से सराबोर एवं जंगलों से यह स्थान आच्छादित है। वर्ष भर जल से भरी नदियां प्रवाहित होती हैं।

दूसरी ओर यह जिला आदिवासी बहुल है एवं अत्यंत ही पिछड़ा व ग्रामीण क्षेत्र है। लोगों का जीवन विकास से कोसों दूर पुरातन शैली पर ही आधारित है। यद्यपि नगरों में जीवन शैली आधुनिक है। नगरों में विकास कार्य भी दिखता है। शिक्षा का स्तर भी ग्रामों में अत्यंत निम्न है।

1.8.2 प्रतिदर्श का भू-विज्ञान -

प्रतिदर्श हेतु चयनित स्थान भू - वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तीन शैल श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करता है।

1. आर्कियन श्रेणी
2. प्रोटोरोजोइक
3. गोंडवाना श्रेणी
4. डेक्कन टैप्स

5. रिसेन्ट

वास्तु- शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार नगर नियोजन की दृष्टि से ये शैलें एवं मृदा अत्यंत उपयुक्त है। आधुनिक अभियांत्रिकीय विज्ञान के अनुसार भी ये शैल समूह नगर , भवन, उद्योग आदि की स्थापना के लिये उपयुक्त हैं

1.8.2 चयन का आधार -

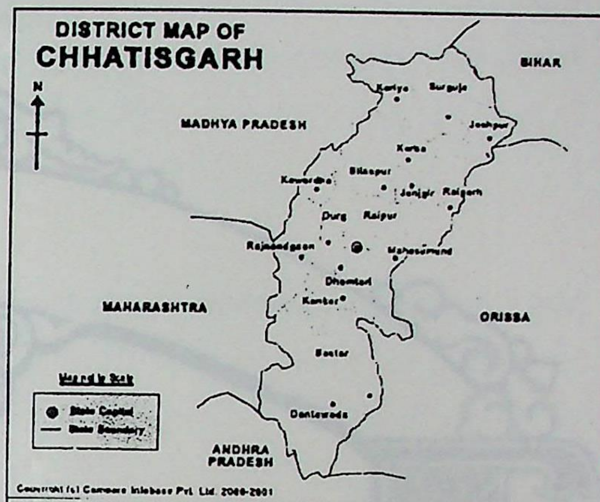
1. प्रतिदर्श के रूप में सरगुजा जिले को लेने का मुख्य कारण है यहां का पिछड़ापन एवं वैदिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार का अभाव।

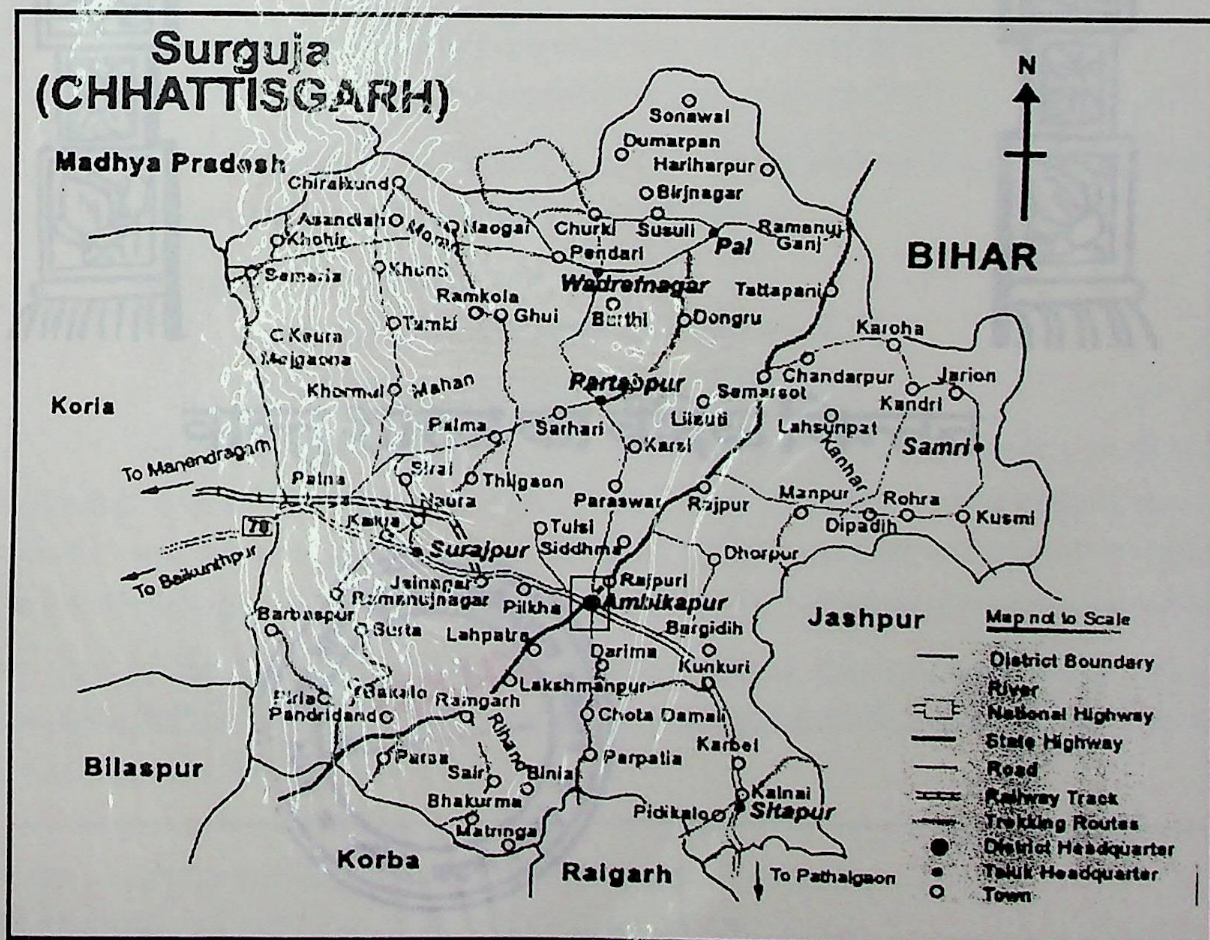
2. यहां के लोग भारतीय वैदिक वांगमय् के अनुरूप ज्ञान गंगा का लाभ उठा सकें एवं जीवन में



प्रतिदर्श की स्थिति

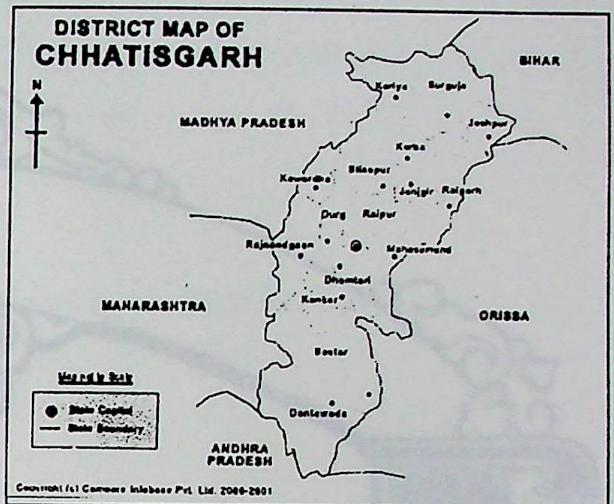

INDIA
PAKISTAN
CHINA
NEPAL
MYANMAR
BAY OF BENGAL


DISTRICT MAP OF
CHHATISGARH
N
BIHAR
MADHYA PRADESH
Surguja
Jashpur
Korba
Bilaspur
Kawardha
Janjgir
Raigarh
Durg
Raipur
Rajnandgaon
Dhamtari
Kanker
MAHARASHTRA
ORISSA
Bastar
Dantewada
ANDHRA
PRADESH
State Capital
State Boundary


Surguja
(CHHATTISGARH)
N
Madhya Pradesh
BIHAR
Koria
Jashpur
Bilaspur
Korba
Raigarh
Sonawal
Dumarpan
Hariharpur
Birjnagar
Chiraikund
Asandih
Khohir
Naogai
Churki
Susuli
Ramanuj Ganj
Pal
Pendari
Samaria
Khund
Wadrafnagar
Tattapani
Ramkola
Ghui
Tamki
Barthi
Dongru
Keura
Karoha
Chandarpur
Jarion
Khormul
Mahan
Partapur
Samarsot
Kandri
Palma
Sarhari
Lilzuti
Lahsunpat
Samri
To Manendragarh
Karzi
Kanhar
Silai
Thilgaon
Palna
Naura
Paraswar
Rajpur
Manpur
Rohra
Dipadih
Kusmi
78
Kalua
Tulsi
Surajpur
Siddhma
Dhorpur
To Baikunthpur
Jainagar
Rajpuri
Ramanujnagar
Pilkha
Ambikapur
Barbaspur
Surta
Lahpatra
Bargidih
Darima
Kunkuri
Lakshmanpur
Bakalo
Raigarh
Pandridand
Chota Damali
Rihand
Karbel
Parsa
Binia
Parpatia
Sair
Bhakurma
Kalnai
Pidikalo
Sitapur
Matringa
To Pathalgaon
Map not to Scale
District Boundary
River
National Highway
State Highway
Road
Railway Track
Trekking Routes
District Headquarter
Taluk Headquarter
Town

प्रतिदर्श की स्थिति

INDIA
States and Union Territories

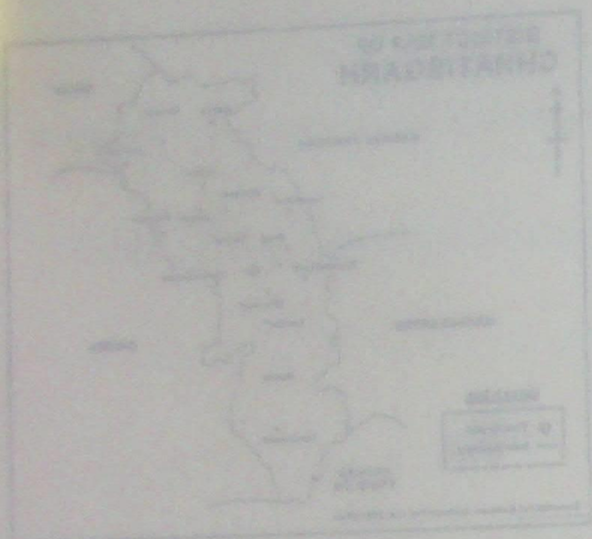


Surguja (CHHATTISGARH)

Madhya Pradesh
Koria
BIHAR
Jashpur
Bilaspur
Korba
Raigarh
Chiraikund
Asandiah
Khohir
Semaria
Khond
Naogai
Churki
Pendari
Susuli
Pal
Ramanuj Ganj
Sonawal
Dumarpan
Hariharpur
Birjnagar
Wadrafnagar
Tattapani
Ramkola
Ghui
Tamki
Barthi
Dongru
Keura
Majgaona
Khormul
Mahan
Partabpur
Semarsot
Karoha
Chandarpur
Jarion
Kandri
Samri
Lilauti
Lahsunpat
Palma
Sarhari
Karsi
To Manendragarh
Palna
Siral
Thilgaon
Naura
Paraswar
Rajpur
Manpur
Rohra
Dipadih
Kusmi
Kanhar
Tulsi
Surajpur
Siddhma
Dhorpur
To Baikunthpur
Jainagar
Rajpuri
Ramanujnagar
Pilkha
Ambikapur
Barbaspur
Surta
Lahpatra
Bargidih
Darima
Kunkuri
Bakalo
Lakshmanpur
Pirla
Pandridand
Ramgarh
Rihand
Chota Damali
Karbel
Parsa
Sair
Binia
Parpatia
Bhakurma
Matringa
Pidikalo
Kalnai
Sitapur
To Pathalgaon

Map not to Scale
District Boundary
River
National Highway
State Highway
Road
Railway Track
Trekking Routes
District Headquarter
Taluk Headquarter
Town









अध्याय - 2

वास्तु शास्त्र का वैदिक चिन्तन



2. वास्तुशास्त्र का वैदिक चिन्तन

समस्त विषयों का मूल वेद हैं। स्थापत्य अथर्ववेद के उपवेद के रूप में प्रतिष्ठित है। स्थापत्य विश्व की समस्त कलाओं का उद्गम स्थल है। भारतीय सभ्यता व संस्कृति विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थों (वेद) में ''वास्तु शास्त्र'' की चर्चा की गयी है। यह इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व हमारी सभ्यता विकास के शिखर पर थी।

2.1 वैदिक ग्रन्थों में वास्तु -

अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से समस्त वैदिक ग्रन्थों का एवं प्रामाणिक ग्रन्थों का पृथक - पृथक विश्लेषण किया गया है।

2.1.1 ऋग्वेद -

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋगवेद में स्थान स्थान पर वास्तोस्पति (वास्तु पालक देव / वास्तुदेव) नामक देवता का उल्लेख आता है जिसका गृह निर्माण से पूर्व आव्हान किया जाता था। जिनसे व्यक्तियों के द्वारा यह प्रार्थना की गयी है कि हे वास्तोष्पते देव आप हमें हर प्रकार की सुख सम्पत्ति प्रदान करें एवं हमें उत्तम स्वास्थ्य तथा शत्रुओं से हमारी रक्षा करें। वास्तु देवता का प्रथम उल्लेख ऋगवेद के सप्तम मण्डलके चौवनवें सूक्त में आता है :-

''वास्तोष्पते प्रति जानी ह्यस्मन्त्स्वावेशो अनमीवो भवाः नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥''

अर्थात-हे वास्तोष्पते (गृह-पालक देव) आप हमें जगाएं। हमारे घर में पुत्र-पौत्र आदि द्विपदों, चतुष्पदों को निरोग एवं सुखी करें। जो धन हम आपसे मांगे वह प्रदान करें।[1]

इसी प्रकार अगली ऋचाओं मे वर्णन है -

''वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्कानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नोजुषस्व॥''[2]

अर्थात, हे वास्तुदेव आप हमारे लिए कल्याणकारी धन का विस्तार करें। हे सोम हम! आपकी कृपा से गायों और घोड़ों के साथ नीरोग रहें। आप हमारा पुत्रवत पालन करें। आप हमें सुखकर रमणीय एवं ऐश्वर्य सम्पन्न स्थान प्रदान करें। साथ ही प्राप्त या प्राप्त होने वाले धन की रक्षा करें। हमें आप सदा कल्याणकारी साधनों से सुरक्षित रखें। हे वास्तोष्पते (वास्तुदेव/गृहपालक)! आप हमारे हर प्रकार से मित्र हैं, हमारे हर प्रकार के रोगों का नाश करें।[2]

ऋगवेद की ये ऋचायें स्पष्ट करती हैं कि ऋगवेद काल में लोग किसी वास्तोष्पते (वास्तुदेव/गृहपालक) देव से परिचित थे। इस काल में लोग भवनों आदि के निर्माण कला से परिचित थे तभी तो रमणीक स्थानों को प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं।

---

(1) ऋगवेद - सप्तम मण्डल -54 /श्री राम शर्मा आचार्य - गायत्री परिवार प्रकाशन
(1) अखण्ड ज्योति- जून 2000/पृ.क्र. 30-32 - गायत्री परिवार प्रकाशन
(2) ऋगवेद - सप्तम मण्डल -54 /श्री राम शर्मा आचार्य - गायत्री परिवार प्रकाशन

ऋगवेद की एक ऋचा में वास्तुपुरूष के स्वरूप का भी प्रमाण मिलता है। उल्लेख आता है - हे श्वेत सरमा (देव-कुक्करी) के वंशधर पीले वर्ण वाले हे वास्तोष्पति देव ! जब आप दांत दिखाते हैं, तो वे शस्त्रों की तरह चमकते हैं। आहार के समय वे विशेष शोभा पाते हैं - ऐसे (दांतों वाले) देव आप सुख से सो जायें। हे सरमा के पुत्र आप चोरों तस्करों के पास पुनः-पुनः जाएं। आप इन्द्र देव के भक्तों के निकट क्यों जाते हैं ? हमारे कार्यों में व्यधान क्यों डालते हैं ? अभी आप भली प्रकार सो जायें।[3]

यह ऋृचा यह स्पष्ट करती है कि वास्तुदेवता की जो व्याख्या पुराणों व अन्य ग्रन्थों में की गयी है उसका मूल आधार ऋृगवेद की यह ऋृचा ही है। इसी प्रकार ऋृगवेद में स्थान स्थान पर वास्तुशास्त्रीय विषयों पर चर्चा की गयी है।

2.1.2 अर्थववेद -

वास्तव में स्थापत्य वेद अथर्ववेद के उपवेद के रूप में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार यदि यह कहा जाय कि वास्तु का मूल अथर्ववेद में निहित है तो आतिशयोक्ति नहीं होगी। अथर्ववेद में वास्तु के नियमों का स्पष्ट व्यवहार दिखाई पड़ता है। अर्थववेद में वास्तुशास्त्र की महत्ता और भी स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आती है। अर्थववेद के प्रथम खण्ड के प्रथम अनुभाग के प्रथम सूक्त की द्वितीय ऋचा के अनुसार

"पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयिश्रुतम॥"

- इस सूक्त में ब्रम्हा श्री से यह अनुग्रह किया गया है कि वे बारम्बार अभिलिषित फल को प्रदान कर प्राणियों का कल्याण करें। इसी सूक्त में आगे ग्रामादि रूप धन के स्वामी या वासक से यह प्रार्थना की गयी है कि चूंकि आप वसुपति हैं अतः आपमें ग्राम आदि अनेक फलों को प्रदान करने की शक्ति है। अथर्ववेद के इस सूक्त में वर्णित वसुपति का अभिप्राय स्पष्ट रूप से वास्तु देवता ही हैं। यह सूक्त इस बात का प्रमाण है कि वैदिक काल में ही वास्तुशास्त्र व्यवहार में था।[4]

अथर्ववेद के नक्षत्र कल्प में वर्णन है -

"भूति काम वास्तु संस्कार कर्मणोर्वा स्पोष्पत्या"

अर्थात - वास्तु संस्कार कर्म में वास्तोष्पत्या महाशांति का वर्णन है। अथर्ववेद के ही प्रथम खण्ड के द्वितीय अनुवाक के तृतीय सूत्र की प्रथम ऋृचा के अनुसार -

"अस्मिन बसु वसबो धारयत्विन्द्रः पूषा वरूणो मित्रो अग्निः।
इमदित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन ज्योतिषि धारयन्तु॥"

इस सूक्त के द्वारा निवास व सम्पति चाहने वाला व्यक्ति वसु (वास्तु) देवता का आव्हान करता है। वेवल वसु देवता ही नहीं बल्कि इन्द्र, पूषा,वरूण, अग्नि देवता का भी आव्हान किया गया है। इस सूक्त का यदि विश्लेषण किया जाय तो मानव शरीर या वास्तुशास्त्र जिन पांच मूल तत्वों से मिलकर बना है वायु,अग्नि,जल, आकाश एवं पृथ्वी इन सभी के अधिपतियों का आव्हान किया गया है।[5]

---

(3) ऋगवेद - सप्तम मण्डल-55 / श्री राम शर्मा आचार्य - गायत्री परिवार प्रकाशन
(4) अथर्ववेद - 1/1/1-2 / पं रामस्वरूप शर्मा गौड़ - चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी
(5) अथर्ववेद - 1/2/3-1 / पं रामस्वरूप शर्मा गौड़ - चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी

अथर्ववेद में आगे तृतीय काण्ड के तृतीय अनुवाक में वास्तोष्यत्यगण की सूची का वर्णन है।

"इहैव ध्रुवाम" इति प्रथमं सूक्तं वास्तोष्यत्यगणे पठितम्।

उक्त सभी वास्तोष्पत्यगण हैं। इन गणों के द्वारा नवीन शाला (गृह) की भूमि को हल द्वारा जोत कर वास्तुसंस्कार किया जाता है।

अथर्ववेद के तृतीय खण्ड के विस्तृत अध्ययन से यह पता चलता है कि भवन निर्माण एवं नगर निमार्ण काफी प्रचलित था।

''इहैव ध्रुवाम्'' (ऋचा) श्लोक का प्रयोग नवीन शाला में गढ़ो में उपर को उठे हुये खंभो एवं भूमि को दृढ़ बनाने के लिए किया जाता है। [6]

अथर्ववेद की ऋचाओं में वास्तु संस्कार के विविध कार्यों हेतु मार्गदर्शन प्रस्तुत हैं। ये श्लोक एक प्रकार से वास्तु देवता की स्तुति में प्रस्तुत किये गये हैं।

कुछ ऋचाओं में व्यक्त की गयी प्रार्थनायें इस प्रकार हैं।

प्रथम ऋचा में वर्णन है - '' मैं इसी प्रदेश में खंभे आदि लगाकर शाला को स्थिर करता हूं, वह शाला घृत आदि अभिमत फल को देती हुई अग्नि आदि के भय से रहित होकर क्षेम पूर्वक रहे। हे शाले: ऐसी तुझमें शोभन गुण वाले रोग रहित अरिष्ट रहित पुत्रों से सम्पन्न होकर हम व्यवहार करें।''

द्वितीय ऋचा के अनुसार - '' इस ऋचा में शाला से यह अनुरोध है कि हे शाले आप हमें हर प्रकार की समृद्धि दें एवं आप स्थिर होकर रहें।''

तृतीय ऋचा में वर्णन है - '' हे शाले तू भोगों को धारण करने वाली है, बहुत से छन्दों देवताओं से सम्पन्न है। यहां यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि शाला अर्थात आवास भूमि में देवताओं का वास है।'' इसी सूक्त में शाला अर्थात वास्तुदेव से पुत्र एवं सुख समृद्धि की कामना की गयी है।''

अग्निपुराण, मत्स्य पुराण एवं बृहत् संहिता में वास्तु पद विन्यास की विस्तृत चर्चा की गयी है। चौंसठ पदीय आदि विविध वास्तु विन्यास का उल्लेख आता है, जिसमें भिन्न-भिन्न कोष्ठों में विविध देवताओं को स्थापित किया जाता है एवं सबकी पूजा अर्चना कर बलि समर्पित की जाती है।

चौथी ऋचा में अनुरोध है कि - '' इस ऋचा में सविता देव, वायु, इन्द्र और बृहस्पति देव से यह विनती की गयी है कि गृह निर्माण की समस्त रीति अनुसार गृह एवं स्तम्भों का निर्माण करें।''

पंचम ऋचा में वर्णन है -'' हे माननीय वास्तुपति की पत्नीभूत शाले और धान्य आदि का पालन करने वाली शाले: देवताओं ने सृष्टि के आरम्भ में प्राणियों को सुख देने वाली प्राणियों की रक्षा करने वाली तुझ दमकती हुई शाला को प्राणियों के उपभोग करने हेतु रचा है। वह तू तिनको से ढ़की हुई शोभन मन वाली हो, फिर हम बसने वालों के लिए पुत्र आदि सहित धन दे।''

अष्टमी ऋचा में वर्णित है -

''पूर्ण नारि प्रभर कुम्भमेतं घृतस्य धाराम मृतेन संभृताम्।
इयां पातृनमृतेना समङ्ग्ध्डीष्टापूर्वमभि रज्ञात्येनाम्॥''

---

(6) अथर्ववेद - 3/3/2 / पं रामस्वरूप शर्मा गौड़ - चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी

इसका अभिप्राय है - हे पूर्णा नारी जल से पूर्ण सुधामय जल से सम्पादित क्षरण के स्वभाव वाले मधु घृत आदि की धारा करने वाले कुम्भ को शाला में ला इस कलशी को सुधारूप जल से भली प्रकार दमका , हम जिस शाला में प्रवेश कर रहें हैं उसमें किया हुआ श्रौत और स्मात कर्म चोर और अग्नि के भय से रक्षा करें।

गृह प्रवेश के अवसर पर पूर्णानारी का जल कुम्भ सहित प्रवेश का उल्लेख है। गृह प्रवेश की जो पुरातन पद्धति आज तक प्रचलित है उसके विषय में भी काफी संकेत मिलता है। आज भी हिन्दू समाज में यह परिपाटी है कि गृहप्रवेश में सर्वप्रथम जल से परिपूरित कलश सहित पत्नी (पूर्णा नारी) को नवीन गृह में प्रवेश कराया जाता है।[7]

अथर्ववेद का विस्तृत अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वैदिक काल में भवन निर्माण कला का काफी प्रचार प्रसार था। लोग वास्तु के नियमों से भली प्रकार परिचित थे तथा वास्तु के संस्कार लोगों में व्यवहार रूप में प्रचलित थे।

वैदिक युग में ''यज्ञ वास्तु संस्कार '' कर्म के लिए नियम एवं ऋचा का प्रावधान किया गया था। यज्ञ वास्तु संस्कार नामक कर्म में '' इन्द्र सीतां निगृह्णातु '' इस ऋचा से नवीन अग्नि को स्थापित करने के स्थान में उल्लेख करना चाहिये। अर्थात यज्ञ वास्तु को ठीक करना चाहिए।[8]

यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग में यज्ञ आदि कर्म में भी वास्तु के सिद्धान्त प्रचलित थे तथा व्यवहार में लाये जाते थे।

2.1.3 रामायण -

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का वर्णन कई स्थानों पर मिलता है। एक महत्वपूर्ण दृष्टांत राम - वनवास काल का है।

'' ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम्।
कर्त्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः ॥''

- अर्थात '' हे सुमित्रा कुमार ! हम गजकन्द का गूदा लेकर उसी से पर्णशाला के अधिष्ठता देवताओं का पूजन करेंगे। क्योंकि दीर्घ जीवन की इच्छा करनेवाले पुरूषों को वास्तु शान्ति अवश्य करनी चाहिये।''

जब श्री राम एवं लक्ष्मण तथा सीता माता वनवास काल में चित्रकूट पहुंचते है तब महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में उनकी आज्ञा से पर्णशाला का निमार्ण लक्ष्मण जी द्वारा किया जाता है। पर्णशाला में प्रवेश से पूर्व वास्तुशांति भगवान श्री राम द्वारा विधिपूर्वक की जाती है। यहां यह संदेश भी उक्त श्लोक के द्वारा दिया गया है कि दीर्घ व सुखी जीवन की कामना रखने वाले पुरूषों को वास्तु शान्ति अवश्य करनी चाहिये।[9]

इसी प्रसंग में आगे वर्णन है - ''लक्ष्मण ! इस गजकन्द को पकाओ। हम पर्णशाला के अधिष्ठाता देवताओं का पूजन करेगे। जल्दी करो। यह सौम्य मुहूर्त है और यह दिन भी ध्रुव संज्ञक है अतः इसी में यह शुभकार्य होना चाहिये।

इस प्रकार श्री राम ने वास्तु देवताओं की पूजा एवं वास्तु शांति हेतु मुहूर्त के विषय में भी उपदेश दिया है।[10]

---

(7) अथर्ववेद - 3/3/2/1-8 / पं रामस्वरूप शर्मा गौड़ - चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी
(8) अथर्ववेद - 3/4/2/4 / पं रामस्वरूप शर्मा गौड़ - चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी
(9) बाल्मीकि रामायण/आयोध्याकाण्ड/56 वां सर्ग/श्लोक 22 /पं राम नारायण शास्त्री/ गीता प्रेस गोरखपुर
(10) बाल्मीकि रामायण/अयोध्याकाण्ड/56 वां सर्ग/श्लोक 25/पं राम नारायण शास्त्री/ गीता प्रेस गोरखपुर

इसी प्रकार अयोध्या काण्ड के ही 56 वें सर्ग के श्लोक क्र. 26 से 35 तक वास्तु शास्त्र के कई विषयों पर प्रकाश डाला गया है। मुख्य रूप से वास्तु शांति, वास्तु पद विन्यास,बलिकर्म विधान आदि पर संक्षेप में ही पर महत्वपूर्ण वर्णन किया गया है।

बाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड में वास्तु के नियमों की एक झलक मिलती है :-

'' प्रागुदक्प्रवणे देशे गुहा साधु भविष्यति।
पश्चौकेन्नता सौम्य निकतेयं भविष्यति ॥''

- अर्थात 'सौम्य ! यहां का स्थान ईशान कोण की ओर से नीचा है, अतः यह गुफा हमारे निवास के लिये अच्छी रहेगी। पश्चिम-दक्षिण के कोण की ओर से ऊंची यह गुफा हवा और वर्षा से बचाने के लिये भी अच्छी होगी।[11]

बाल्मीकी रामायण के ही सुन्दर काण्ड में भवनों के प्रकार आदि का भी वर्णन मिलता है :-

''प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहै : शुभै : ।
सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितै :॥''

-उस समय लङ्का श्वेत बादलों के समान सुन्दर एवं विचित्र राक्षस गृहों से प्रकाशित हो रही थी। उन गृहों में से कई तो *कमल* के आकार में बने हुए थे। कोई *स्वस्तिक* के चिन्ह या आकार से युक्त थे और किन्हीं का निमार्ण *वर्धमान* संज्ञक गृहों के रूप में हुआ था। वे सभी सब ओर से सजाये गये थे।[12]

भवन के जो प्रकार इस श्लोक में उल्लिखित हैं इनका विस्तृत वर्णन वराह मिहिर कृत बृहत् संहिता में मिलता है । मतस्य पुराण में भी भवनों के प्रकार के विषय में इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है।

2.1.4 बृहत् संहिता -

वाराहमिहिर विरचिता यह ग्रन्थ वास्तुशास्त्र पर एक प्रमाणिक ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ के अध्याय 52,53,व 54 में वास्तुशास्त्र के मूल सिद्धान्त जिनमें मुख्यतया भवनों के प्रकार, विभिन्न प्रकार के वास्तु पद विन्यास, वास्तु के प्रकार,भवन के चर्तुदिश वृक्षों का संयोजन, प्लव परीक्षण, भूमि परीक्षण, जलपरीक्षण,मार्ग वेध, विविध दिशाओं के अनुसार द्वारों का निर्माण,शल्य परीक्षण आदि विषयों पर उत्कृष्ट व्याख्या की गयी है।

''वास्तु ज्ञानमथातः कमल भवान्मुनिपरम्परायातम्।
क्रियतेऽधुना मयेदं विदग्धसांवत्सरप्रीत्यै ॥''

-अर्थात ब्रह्मा जी द्वारा गर्गादि ऋषियों को बताया गया वास्तु ज्ञान कहता हूं। इस वास्तु विद्या को जानने से बुद्धिमान व विद्वान दैवज्ञों को प्रसन्नता होगी।[13]

बृहत्संहिता ग्रन्थ में अध्याय 52 के श्लोक क्र. 4 से 30 तक राजा के निवास का विचार, सेनापति, सचिव, युवराज,सामन्त, राज्य के अन्य बड़े अधिकारी, दैवज्ञ, राजवैद्य, राजपुरोहित आदि के निवास का विचार, उनके गृहों की आप आदि का विचार किया गया है। ब्राम्हणादि आदि वर्णो के गृह की माप, शाला व अलिन्द की माप,

---

(11) बाल्मीकि रामायण / किष्किन्धा काण्ड / 27 वां सर्ग / श्लोक 12 /पं राम नारायण शास्त्री/ गीता प्रेस गोरखपुर

(12) बाल्मीकि रामायण / सुन्दर काण्ड / चतुर्थ सर्ग/ श्लोक 6-8 /पं राम नारायण शास्त्री/ गीता प्रेस गोरखपुर

(13) बृहत् संहिता भाग-2/अध्याय 52/ श्लोक 1/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

दीवार की माप,द्वार की माप, गृहद्वार, स्तम्भ रचना व स्तम्भों की माप के विषय में तथ्यात्मक विश्लेषण किया गया है। भवनों के पांच प्रकार उनकी माप, कक्षों व बरामदों आदि का वर्णन तथा गृह के द्वारों का संयोजन भी बताया गया है।

मुख्यतया पांच प्रकार के भवन बताये गये हैं :-

(1) सर्वतोभद्र
(2) नन्द्यावर्त
(3) वर्धमान
(4) स्वस्तिक
(5) रूचक [14]

इनके प्रकार तथा विन्यास का वर्णन शोध के वास्तुशास्त्र और गृह निमार्ण नामक अध्याय में किया गया है। बृहत्संहिता में वास्तुपद विन्यास का भी वर्णन सविस्तार किया गया है।

वास्तुदोष, नगर वास्तु, ग्राम वास्तु, द्वार वेद्य, घर के चारों ओर वृक्षों का विन्यास,भूमि परीक्षा, शल्य विचार आदि विषयों पर सविस्तार चर्चा की गयी है।

2.1.5 पुराणों में वास्तु -

भारतीय वाङ्मय में पुराणों का अपना एक विशिष्ट महत्व है।

पुराण भारत की अतीत कालीन धर्म और संस्कृति के मूर्तिमान गौरव के ज्वलंत प्रमाण हैं आज का वैज्ञानिक युग भी पुराणों के प्रभाव को जरा भी कम नहीं कर सका है। भारत के हर घर में पौराणिक कथाएं प्रचलित हैं। पुराणों की शिक्षा हर घर में कथा कहानी के माध्यम से व्यवहार में लायी जा रही हैं। वेदों में भी पुराणों की चर्चा की गयी है और उन्हें वेदों की भांति ही नित्य व प्रमाण भूत बताया गया है।

विविध पुराणों में वास्तुशास्त्र विषय पर अपार ज्ञान उपलब्ध है। वास्तु शास्त्र की उत्पत्ति से लेकर गृह निर्माण योजना, नगर विन्यास देवालय निर्माण, द्विशाल भवन, चतु:शाल भवन, गृहारम्भ, शिलान्यास ,गृह-प्रवेश आदि का गहन विश्लेषण पुराणों में मिलता है।

पितामह ब्रम्हा जी ने अठारह पुराणों के विषय में उपदेश दिया है :

(1) ब्रम्ह पुराण
(2) पद्म पुराण
(3) विष्णु पुराण
(4) शिव पुराण
(5) श्रीमद्भागवत पुराण
(6) नारदीय पुराण
(7) मार्कण्डेय पुराण
(8) अग्नि पुराण
(9) भविष्य पुराण

---

(14) बृहत् संहिता /भाग-2 /अध्याय 52 श्लोक- 31-36 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(10) ब्रम्ह वैवर्त पुराण

(11) नृसिंह पुराण

(12) वाराह पुराण

(13) स्कन्द पुराण

(14) वामन पुराण

(15) कूर्म पुराण

(16) मत्स्य पुराण

(17) गरूड पुराण

(18) ब्रह्माण्ड पुराण

इन समस्त पुराणों में मानव जीवन से जुड़ी हर प्रकार के विषयों की गहन चर्चा की गयी है। इन पुराणों में से जिनमें प्रमुखता से वास्त शास्त्र की विषय वस्तु मिलती है उनका वर्णन इस प्रकार है।

2.1.5.1 मत्स्य पुराण -

मत्स्य पुराण पुराणों में एक ऐसी रचना है जिसमें वास्तु शास्त्र के समस्त सिद्धांतों को गणित के सूत्रों की तरह एक ही स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। वैदिक ग्रंथों में वास्तु के सूत्रों को एक - एक कर मिलाना पड़ता है परन्तु मत्स्य पुराण के अध्याय 252 में लगभग सभी सिद्धांतों को एक साथ प्रस्तुत कर दिया गया है।

'' प्रासाद भवनादीनां निवेशं विस्तद्वद ।
कुर्यात्केन विधानेन कश्च वास्तुरूदाहृतः ।।''

यह श्लोक मत्स्य पुराण के 252 वें अध्याय का प्रथम श्लोक है जिनका अभिप्राय है - ऋषियों ने सूत से आग्रह किया कि आप हमें राजप्रसाद तथा भवन आदि के निमार्ण की विधि का सविस्तार वर्णन करें।

वास्तु क्या है इसे हम सभी जानना चाहते हैं। ऋषियों के इन प्रश्नों का उत्तर सूत जी ने मत्स्य पुराण के अध्याय 252 से 270 तक में सविस्तार दिया है। इन अध्यायों में वास्तु के स्थापित आचार्यों से लेकर वास्तु पुरूष की आकृति, भवनों के प्रकार, गृहारम्भ के शुभ मुहूर्त, इक्यासी पदीय वास्तु चक्र, प्रासादों का निर्माण,विधि एवं प्रतिमा निर्माण की विधि का सविस्तार वर्णन है। साथ ही वास्तु शान्ति की विधि का भी विधिवत वर्णन है।[15]

मत्स्य पुराण में वास्तु के 18 प्रवर्तकों (आचार्यों) का उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण का सम्पूर्ण अध्ययन इस बात का प्रमाण है कि पुराणकाल में वास्तु शास्त्र पूर्ण रूपेण स्थापित हो चुका था।[16]

2.1.5.2 अग्नि पुराण -

अग्नि पुराण में वास्तुशास्त्र के हर पहलू का गहन विश्लेषण दृष्टिगोचर होता है। अग्नि पुराण के अध्याय 38 से अध्याय 66 तक देवालय निमार्ण का फल,विविध देवाताओं की प्रतिष्ठा विधि, वास्तु मण्डल स्थापना, शिला विन्यास, प्रासाद लक्षण का सविस्तार वर्णन किया गया है। अध्याय 67 में जीर्णोद्धार विधि का उल्लेख है।

(15) मत्स्य पुराण अध्याय- 252/1 -पं. बाबूराम उपाध्याय /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(16) मत्स्य पुराण अध्याय- 252/1-4 -पं. बाबूराम उपाध्याय /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

अध्याय 53 एवं 54 में वास्तुपूजा एवं शिलाविन्यास विधि का विधिवत विवरण है। अध्याय 55 में वास्तुशास्त्र का ज्योतिष शास्त्र से सामंजस्य स्थापित किया गया है। देवता प्रतिष्ठा को ज्योतिष सम्मत ढ़ंग से करने हेतु मार्गदर्शन है।

'' विना चैत्रेण माघादौ प्रतिष्ठामास पच्चके।
गुरूशुक्रोदये कार्या प्रथको करणत्रये ॥''

- अर्थात ''चैत्र मास को छोड़कर माघ आदि पांच मासों में, प्रथम तीन करणों में तथा बृहस्पति और शुक्र के उदय होने पर देवता की प्रतिष्ठा करनी चाहिये।''(17)

इसी प्रकार ग्रहों एवं नक्षत्रों की ज्योतिषीय गणना के अनुसार वास्तुशास्त्र का विश्लेषण किया गया है। विविध देवताओं के मंदिर निमार्ण एवं प्रतिष्ठा विधि का भी सारगर्भित उल्लेख है।

अध्याय 96 से अध्याय 103 तक विविध देवताओं के मंदिर निमार्ण (शिलान्यास,द्वार प्रतिष्ठा) एवं देवता प्रतिष्ठा विधि का सविस्तार वर्णन है। अध्याय 104 से लेकर 106 तक क्रमशः प्रासाद लक्षण, गृहनिर्माण एवं नगर निवेश सम्बन्धी वास्तु विषयक जानकारी का विषद वर्णन किया गया है।

इस प्रकार अग्नि पुराण वास्तुशास्त्र का एक प्रामाणिक एवं पुरातन ग्रन्थ है।

2.1.5.3 भविष्य महापुराण -

भविष्य महापुराण का अध्याय 130 वास्तु शास्त्र के विषय में व्यापक प्रकाश डालता है। इस अध्याय में सूर्य देव प्रतिष्ठा एवं उनके लिये प्रासाद निर्माण के विषय में नियम बताये गये हैं।

'' चतुःषष्टिपदं कुर्या देवतायतनं सदा।
द्वारं च मध्यमं तस्मिन्समदिक्सम्प्रशस्यते ॥
यो विस्तारो भवेत्तस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः।
उच्छ्रायस्तु तृतोयोऽथ तेन तुल्या कटिर्भवेत ॥''

- अर्थात ''देवताओं के लिये चौसठ पदीय वास्तु की रचना की जानी चाहिए और उसके मध्य भाग में द्वार का निर्माण करना चाहिये। विस्तार से द्विगुणित कोठी की ऊंचाई होनी चाहिये और उसके एक तिहाई भाग के समान ऊँचा कटि मध्य भाग रहे।''(18)

भविष्य महापुराण में मनुष्यों के गृह निर्माण हेतु द्वार प्रतिष्ठा एवं द्वारों पर मांगलिक पक्षी श्री वृक्ष एवं मंगल कलश की स्थापना हेतु व्यवस्था बताई गयी है। अध्याय 130 में ही बीस प्रकार के भवनों के विषय में उल्लेख किया गया है।(19)

'' पूर्वे मेरूर्महाबाहो कैलासश्च तथापरे,
भवन्ति चापरे वीर विमानच्छदनं तथा।
समुद्रपद्मगरूडनन्दिवर्द्धन कुन्जराः,
गृह राजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः।

---

(17) अग्नि पुराण 95/2 - तारिणीश झा / डॉ. घनश्याम त्रिपाठी -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(18) भविष्य महापुराण 130/17/18 - पं. बाबूराम उपाध्याय -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(19) भविष्य महापुराण 130/19 - 62 पं. बाबूराम उपाध्याय - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

सिंहो वृषश्चतुष्कोण: षोडशाष्टाश्रयस्तथा,
इत्येते विंशति: प्रोक्ता: प्रासादा यदुनन्दन॥''

अर्थात '' मेरू, कैलाश, विमान, समुद्र, पद्म, गरूड, नन्दिवर्द्धन, कुंजन, गृहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृष, चतुष्कोण नामक ये सोलह एवं आठ मंजिला वाले भवन बताये गये हैं।''

नगर के मध्य भाग या पूरब की ओर सूर्य मन्दिर का निर्माण करना चाहिये। भली प्रकार भूमि परीक्षण की भी विधि का वर्णन किया गया है। घर का द्वार पूर्वाभिमुख होने का निर्देश है। भविष्य महापुराण के अध्याय 130 में संक्षेप ही परन्तु स्पष्ट रूप से वास्तु के नियमों पर प्रकाश डाला गया है।[20]

2.1.5.4 मार्कण्डेय पुराण -

मार्कण्डेय पुराण में वास्तु शास्त्र की विशेष चर्चा की गयी है। अध्याय 26 में मनुष्यों के द्वारा सभ्यता के विकास पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही वास्तु के माप एवं नगर के प्रकार व विस्तार पर भी चर्चा की गयी है।

ब्रम्हा जी ने जब सृष्टि की रचना की तो उस समय की प्रथा सात्विक थी साथ ही धर्म परायण भी। पृथ्वी पर हर जगह सुख शांति थी। बाद में लोगों के अंदर लोभ मोह आदि जागृत हुए।

इसके बाद शीत, उष्ण, क्षुधा आदि का जन्म हुआ। मनुष्यों ने ततपश्चात् नगरों (पुरों) का निर्माण किया कुछ लोग मरूभूमि अथवा धन्वदेश को शत्रुओं के लिए दुर्गम समझकर उसमें रहने लगे। कुछ लोगों ने पर्वतों एवं गुफाओं का आश्रय लिया। कुछ लोगों ने वृक्षों, पर्वतों एवं जल के दुर्गों को अपना निवास स्थान बनाया। कुछ मनुष्यों ने कृत्रिम दुर्ग बनाकर अपना वास स्थापित किया।

मनुष्यों ने वस्तुओं की लंबाई-चौड़ाई का माप करने के लिए पैमाना तैयार किया। पैमाने के रूप में सर्वप्रथम उंगलियों का सहारा लिया गया।

माप की दृष्टि से सबसे सूक्ष्म वस्तु परमाणु है। उससे बड़ा ऋसरेणु होता है। यह ऋसरेणु पृथ्वी की धूलि के कण के आकार का होता है। इसके बाद वालाग्र, लिक्षा, मूका और यवोदर। ये सब उत्तरोत्तर एक-दूसरे से आठ-आठ गुणा बड़े होते हैं।

आठ यव का एक अंगुल, छ: अंगुल का एक पड़ा दो पद का एक बित्ता दो बित्ते का एक हाथ होता है। चार हाथ का एक धर्नुडण्ड होता है। दो हजार धनुष की एक गव्यूति और चार गव्यूति का एक भोजन होता है।

इस प्रकार माप का निर्माण कर लोगों ने रहने के लिए पुर, खेट, द्रोणी-मुख, शाखा-नगर, खर्वट, द्रमी आदि का निर्माण किया।

ये सब नगरों के प्रकार हैं जिनका वर्णन किया गया है। नगरों के बाद प्रजा ने अपने रहने के लिए घरों का निर्माण किया। घरों का निर्माण इस प्रकार किया गया कि वहां ठण्ड-गर्मी आदि से बचा जा सके। पूर्व में जिस प्रकार घर के आकार के वृक्ष होते थे एवं वहां जैसी सुविधायें प्राप्त होती थीं उन सबके अनुसार ही गृहों का निर्माण किया गया। जैसे वृक्ष की शाखायें एक के बाद दूसरी तथा छोटी-बड़ी, उंची-नीची होती है उसी प्रकार लोगों ने अनेक प्रकार की शालायें बनायीं।[21]

---

(20) भविष्य महापुराण 130/23-42-पं. बाबूराम उपाध्याय -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

ब्रम्हपुराण में भी वास्तु के नियमों की चर्चा की गयी है। बुद्धिमान पुरूष को उत्तर व पश्चिम की ओर सिर करके सोना नहीं चाहिए। सदैव दक्षिण या पूर्व दिशा की ओर ही सिर करके सोना चाहिए।[22]

2.1.6 मानसार -

लगभग छठवीं से आठवीं शताब्दी के मध्य मानसार ऋषि द्वारा रचित मानसार वास्तु - शास्त्र का अप्रतिम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के 70 अध्यायों के हर पहलू पर तथ्य परक जानकारी समाहित है।

'' उत्पत्तिरक्षणलयान् जगतां प्रकुर्वन् भुवारिवह्निमरूतो गगनं च सूते।
नाना सुरेश्वर किरीटविलोलमालाभृङ्गावलीढचरणाम्बुरूहं नमामि ॥
गंगाशिरः कमलभूकमलेक्षकेन्द्र गीर्वामनारदमुखैर खिलैर्मुनीन्द्रैः।
प्रोक्तं समस्त तरवस्त्वपि वास्तुशास्त्रं तन्मानसार ऋषिणापिहि लक्ष्यत स्म ॥''

-अर्थात- उन ब्रम्हा जी के चरणों में मेरा सादर नमन् है जिन्होने इस संसार की उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय किया। साथ ही पंच तत्वों पृथ्वी,अग्नि,जल,वायु और आकाश को उत्पन्न करने वाले जिनको भौरों की पंक्तिके समान हिलती हुई नाना प्रकार के सुरेश्व्ररों की किरीट माला चूमति है। यह वास्तुशास्त्र,गंगा को सिर पर धारण करने वाले भगवान शंकर, कमल से उत्पन्न ब्रम्हा जी, कमल नयन भगवान विष्णु,इन्द्र, बृहस्पति एवं नारद आदि ऋषियों द्वारा रचा गया एवं मानसार ऋषि द्वारा विस्तार को प्राप्त हुआ।[23]

मानसार ग्रन्थ में माप लक्षण से प्रारम्भ करके भूमि परीक्षा, शंकु स्थापन, वास्तु पद विन्यास, बलिकर्म विधान, ग्रामादि लक्षण, नगर लक्षण, गभन्यास, स्तम्भमान, प्रस्तर की विधि, सन्धि कर्म (लकड़ी के जोड़ने की विधि), विमान (बड़े भवनों) के लक्षण तथा द्वितल,त्रितल, चतुस्तल से लेकर द्वादश तल भवनों के लक्षण का वर्णन है। इसके बाद चहारदीवारी, मंदिर लक्षण, गापुर, गृह विन्यास, गृह प्रवेश, द्वार स्थान विधि,द्वार के मान, राज्यहर्म्य, राजाओं के लक्षण, मान (वाहन),रथ,शय्या तथा सिंहासनादि का सविस्तार वर्णन किया गया है। वास्तु शास्त्र के समस्त विभाग व विषयों पर मानसार की प्रामाणिकता सर्वग्राह्य है।

2.1.7 मयमतम् -

Bruno Dagens ने लिखा है - " The MAYAMATA and the MANSARA are the best Known amongst Sanskrit treatise of South India on Architecture & Iconography."

मयमतम् एवं मानसार दक्षिण भारत के दो प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ है जो कि वास्तुशास्त्र एवं शिल्प विज्ञान पर लिखे गये हैं। मयमतम् वास्तुशास्त्र की एक अनुपम कृति है। इस ग्रन्थ में कुल छत्तीस अध्याय हैं जिनमें वास्तुशास्त्र के विभिन्न पहलुओं पर गहनता से विचार किया गया है। विविध अध्यायों में भूमि परीक्षण, मापन की विधियां, ग्राम नियोजन, नगर नियोजन, विविध प्रकार के भवनों का वर्णन, नींव, स्तम्भ,मंदिर निर्माण सभाकक्ष,

---

(21) मार्कण्डेय पुराण/अध्याय 26/पृ.क्र. 143-144 - कल्याण संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (ईक्कीसवें वर्ष का विशेषांक) - कल्याण कार्यालय, गीता प्रेस गोरखपुर

(22) ब्रम्ह पुराण/अध्याय 91/पृ.क्र. 561 - कल्याण संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (ईक्कीसवें वर्ष का विशेषांक) - कल्याण कार्यालय, गीता प्रेस गोरखपुर

(23) MAYAMATA / Bruno Dagens / SITA RAM BHARTIYA INSTITUTE OF SCIENE & RESEARCH

प्रवेशद्वार, गृह निर्माण, भवनों का मुख्यद्वार, राजमहल, द्वार, वाहन एवं शय्या आदि की सारगर्भित जानकारी प्रस्तुत की गयी है। इस ग्रन्थ की गरिमा इस बात से और भी बढ़ जाती है कि वास्तु के अन्तर्गत आने वाली समस्त रचनाओं के विषय में सूक्ष्मता से प्रकाश डाला गया है।[24]

2.1.8 विश्वकर्मा प्रकाश -

उत्तर भारतीय वास्तुशिल्प कला के प्रणेता रूप में विश्वकर्मा स्थापित हैं। विश्वकर्मा प्रकाश में वास्तु ज्ञान का प्रतिपादन सूक्ष्मता से किया गया है।

''पराशरः प्रातः बृहद्रथाय बृहद्रथः प्राहच विश्वकर्मणे।
स विश्वकर्माजगतां हिताय प्रोकथ शास्त्र बहुभेदयुक्तम॥''
''वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाभ्यया॥''

अर्थात - '' इस शास्त्र को पराशर ऋषि ने बृहद्रथ को कहा और बृहद्रथ ने विश्ववर्मा को कहा। विश्वकर्मा जी ने जगत के कल्याण के लिए वास्तुशास्त्र की व्याख्या की।''[25]

विश्वर्मा प्रकाश ग्रन्थ के ये श्लोक वास्तुशास्त्र की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इन श्लोकों के अनुसार प्राचीनतम् वास्तुशास्त्र के प्रणेता महादेव हैं। विश्वकर्मा प्रकाश में भी वास्तु शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

2.1.9 मुहूर्त चिन्तामणी -

पं. रामदैवज्ञ की कृति मुहूर्त चिन्तामणी में भी वास्तुशास्त्र की चर्चा की गयी है। ग्रन्थ के 12 वें एवं 13 वें अध्यायों में वास्तु प्रकरणों पर व्यावहारिक रूप से प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में काकिणी विचार, व्यक्ति की राशि के आधार पर निवास का विचार (नगर व ग्राम के परिपेक्ष्य में) पिण्ड विचार , गृहारम्भ विचार, द्वार प्रकरण, आदि का विचार किया गया है। सोलह प्रकार के गृहों का वर्णन किया गया है जिनके नाम हैं - 1. ध्रुव 2. धान्य 3. जय 4. नन्द 5. खर 6. कान्त 7. मनोरम 8. सुमुख 9. दुर्मुख 10. उग्र 11. रिपुद 12. वित्तद 13. नाश 14. आक्रन्द 15. विपुल और 16. विजय।[26]

2.1.10 वास्तु सौख्यम -

राजा टोडरमल विरचित वास्तुसौख्यम वास्तुशास्त्र का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। ग्रन्थ मे वास्तुशास्त्र के गूढ़तम रहस्यों को सहजता से प्रस्तुत किया गया है। वास्तु पुरूष की उत्पत्ति , भूमि परीक्षा , निवास हेतु उपयुक्त भूमि एवं वर्जित भूमि के प्रकारों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। साथ ही गृह के समीप वृक्षों का विन्यास, लगाने योग्य वृक्ष एवं वर्जित वृक्ष , भूमि में शल्य विचार , शिलान्यास विधि , गृह में प्रयोग करने हेतु उत्तम काष्ठों की व्यवस्था, भवन के मुख्य द्वार का निर्धारण , वास्तु पद विन्यास , मार्ग वेध , आदर्श भवन हेतु कक्ष नियोजन एवं नगर नियोजन हेतु

---

(24) विश्वकर्मा प्रकाश - श्लोक क्रं.2-5 तक /खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई
(25) मुहूर्त चिन्तामणी/अध्याय-2/श्लोक-10 /श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी /चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन वाराणसी

आदि विषयों का क्रमवार बृहद् विश्लेषण किया गया है।[27]

कुछ अन्य प्रमाणिक ग्रन्थ भी वास्तुशास्त्र के आधार स्तम्भ हैं जिनसे विषय के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। वास्तु रत्नाकर [28] , बृहद्वास्तुमाला [29] आदि इसी श्रेणी में आते हैं।

2.2 वास्तु की परिकल्पना (वास्तु का प्रार्दुभाव) -

वास्तु पुरूष की परिकल्पना विषयक वर्णन हमारे वैदिक ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में व्याप्त है। वास्तु के स्वरूप के विषय में पहला प्रमाण ऋगवेद में है। ऋगवेद के विषय में उल्लेख आता है -

'' वास्तोष्यपति देव श्वेत सरमा के वंशज हैं। वास्तुदेव का शरीर पीत वर्ण का है। इनके दांत भयानक हैं एवं वे शस्त्रों की तरह चमकते हैं। आहार के समय के विशेष शोभा पाते हैं।''

यह इस बात का प्रमाण है कि वास्तु देवता एक दैत्याकार पुरूष था।[30]

मत्स्य पुराण में वास्तु की उत्पत्ति विषयक वर्णन है।

'' ऋषिगण ने प्रश्न किया राजप्रसाद एवं भवन आदि के निर्माण की विधि के विषय में विस्तार पूर्वक बताइये। इन्हे किस प्रकार बनाना चाहिये। वास्तु क्या है ? इस विषय में प्रकाश डालिये। इस प्रश्न के उत्तर में मत्स्यरूप धारी भगवान ने संक्षेप में मनु के लिये वास्तुशास्त्र का वर्णन किया। ''

मत्स्य पुराण में वास्तु की उत्पत्ति के विषय में कथा है -

'' प्राचीन काल में अन्धक के वध के अवसर पर भगवान शंकर ने विकराल रूप धारण किया। इस दौरान उनके ललाट प्रदेश से स्वेद का एक भीषण बिन्दु पृथ्वी पर गिरा। इस बिन्दु ने एक कराल मुख वाले अद्भुत प्राणी का रूप धारण किया। उत्पन्न होते ही यह प्राणी सातों द्वीपों समेत समस्त वसुन्धरा तथा आकाश को ग्रस लेने को उद्यत हुआ। इस प्राणी ने युद्ध के दौरान गिरे हुये समस्त रक्तका पान कर लिया । इनके बावजूद जब यह प्राणी सन्तुष्ट नहीं हुआ तो सदाशिव भगवान के सम्मुख घोर तपस्या करने लगा । उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भैरव नेउससे कहा - हे निष्पाप ! तुम्हारी जो अभिलाषा हो उसे मांग लो। प्राणी ने उत्तर दिया- हे देव, मैं यह चाहता हूं कि तीनों लोकों को ग्रस लेने की सामर्थ्य मुझमें आ जाये, त्रिशूल धारी भगवान ने एवमस्तु का आशीष दिया। इसके बाद वह विचित्र प्राणी अपने विशाल शरीर से स्वर्ग, सम्पूर्ण भूमण्डल एवं आकाश को छेकते हुये पृथ्वी पर गिर पड़ा। भयभीत चित्त देवगणों ब्रम्हा,शिव तथा समस्त दानव, दैत्य एवं राक्षसों ने ऊपर चढ़कर चारों ओर से उसे रोक लिया। जो लोग उसे जहां आक्रान्त कर बैठे थे वहीं बने रह गये। सभी देवताओं का निवास होने के कारण वह वास्तु नाम से पुकारा गया। समस्त देवताओं से इस विचित्र प्राणी ने अनुरोध किया - हे समस्त देव गण: मुझ पर आप प्रसन्न हों। आप लोगों के द्वारा निश्चालित किया गया मैं भला नीचे मुख किये हुये देर तक किस प्रकार अवस्थित रह सकूंगा। उसके इस निवेदन को सुनकर ब्रम्हादि देवताओं ने कहा कि - वास्तु के प्रसंग में जो बलि दी जायगी, वैश्वदेव के अन्त में जो आहार चढ़ाया

---

(26) वास्तु सौख्यम / राजा टोडर मल्ल विरचित/आचार्य श्री कमलाकान्त शुक्ल/ संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

(27) वास्तु रत्नाकर /श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी / चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी

(28) बृहद्वास्तु मालायाम / डॉ. ब्रम्हानंद त्रिपाठी / चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन

(29) ऋग्वेद- सप्तम मण्डल /55/2 -श्री राम शर्मा आचार्य - गायत्री परिवार प्रकाशन

जायेगा वह निश्चय ही तुम्हारा होगा। वास्तु की शान्ति के लिये जो यज्ञ होगा वह भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगा। यज्ञोत्सव के प्रारम्भ में दी हुई बलि भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगी। वास्तु पूजा के न करने वाले तुम्हारे आहार होंगे। अज्ञान से किया गया यज्ञ भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगा। ब्रम्हादि देवताओं के ऐसा कहने पर वह वास्तु नामक प्राणी परम सन्तुष्ट एवं हर्षित हुआ। तभी से लोक में शांति के लिये वास्तु यज्ञ का प्रचलन प्रारम्भ हुआ।''[31]

वास्तु पुरूष की उत्पत्ति के विषय में प्रसिद्ध ग्रन्थ '' अग्नि पुराण '' में उल्लेख मिलता है।

'' पूर्वभासीन्महद्भूतं सर्वभूतभयंकरम्।
तद्देवैर्निहितं भूमौ स वास्तु- पुरूषः स्मृत ः ॥ ''

अर्थात - प्राचीन काल में सब प्राणियों को भय ग्रस्त करने वाला एक महान् भूत (प्राणी) था। देवताओं ने उसे पकड़कर भूमि में गाड़ दिया वही वास्तु पुरूष नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यहां भी लगभग समान कथा का उल्लेख मिलता है।[32]

पुरातन ग्रन्थ ''विश्वकर्मा प्रकाश '' में भी वास्तु के प्रादुर्भाव का विवरण प्राप्त होता है। विश्वकर्मा प्रकाश के अनुसार - '' महर्षि पराशर ने बृहद्रथ को एवं बृहद्रथ ने विश्वकर्मा को कहा तथा विश्वकर्मा जीने जगत के कल्याण के लिये अनुपम अनेक भेड़ों से युक्त वास्तुशास्त्र का वर्णन किया।''

वास्तु के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में एक कथा का वर्णन इस ग्रंथ में भी किया गया है - '' त्रेतायुग में एक महाभूत उत्पन्न हुआ जिसने अपनी विशाल काया से समस्त जगत को आच्छादित कर दिया। उस महाकाय पुरूष को देखकर इन्द्र आदि देवतागण आश्चर्य व भय से ग्रस्त होकर ब्रम्हा जी की शरण में पहुचें। भय - ग्रस्त होकर देवगणों ने ब्रम्हा जी से आग्रह किया की हे भूतों के ईश्वर हम सब कहां जायें। तत्पश्चात ब्रम्हा जी ने देवताओं से कहा कि आप इस महाबली भूत का विरोध न करें। इस प्राणी को अधोमुख गिरा दें। इस प्रकार भयभीत देवगणों ने उस महाबली भूत को भूमि पर अधोमुख गिरा दिया और उसी के ऊपर वे सब बैठ गये।

विश्वकर्मा प्रकाश में वास्तु पुरूष के जन्म का भी वर्णन है वास्तु पुरूष का जन्म भाद्र पद के कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि को हुआ। उस दिन शनिवार था एवं नक्षत्र कृतिका था। योग व्यतीपात का एवं करण विष्टि था। भद्राओं के मध्य में और कुलिक योग में उसका जन्म हुआ और महान शब्द करता हुआ वास्तु पुरूष ब्रम्हा जी से कहा हे प्रभो ये देवता गण बिना अपराध के मुझे अधोमुख गिरा कर मुझ पर विराजमान हैं एवं मुझे पीड़ा देते हैं। प्रसन्न हुये जगत पितामह ब्रम्हा जी ने उसे वरदान दिया कि ग्राम,नगर,दुर्ग, पत्तन, (शहर),महल (प्रसाद),प्याऊ, जलाशय, उद्यान आदि के निर्माण के समय आपकी पूजा होगी। जो मनुष्य वास्तुपूजा नहीं करेंगे वे आपका भोजन होंगे।''[33]

ब्रम्हा जी ने यह भी बताया कि मनुष्य अपने कल्याण के लिये कब-कब वास्तु पूजा करे -

(1) गृह के आरम्भ में

(2) गृह प्रवेश में

(3) द्वार के निर्माण में

(4) तीन प्रकार के प्रवेश में

---

(30) मत्स्यपुराण अध्याय - 252/1-19 - पं. बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(31) अग्नि पुराणम् पूर्व भाग/अध्याय 40/श्लोक 1-तारिणीश झा / डॉ. घनश्याम त्रिपाठी -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(32) विश्वकर्मा प्रकाश-अ.1/6-15 /खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई

(5) यज्ञ में

(6) पुत्र के जन्म में

(7) यज्ञोपवीत में

(8) विवाह और महोत्सव में

(9) जीर्ण के उद्धार में

(10) शल्य के न्यास में

(11) वज्र (बिजली) और अग्नि से दूषित में

(12) भग्न (फूटा) में

(13) सर्प और चाण्डाल से युक्तमें

(14) जिस घर में उल्लू बसते हों

(15) जिस घर में सात दिन तक काग बसे हों

(16) जिसमें रात्रि में मृग बसें

(17) जिसमें गोविलाव अत्यन्त शब्द करें

(18) जिसमें घोड़े हाथी आदि अत्यन्त शब्द करें

(19) जो घर स्त्रियों के मुद्ध से अत्यन्त दूषित हों।

(20) जिस घर में कबूतरों का निवास हो

(22) जिस घर में मधूकादि निलय (मोहर)बैठती हो।

इस प्रकार जो अनेक उत्पात है उनसे घर के दूषित होने पर वास्तु शान्ति करना अपरिहार्य होता है।इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों में भी वास्तु पुरूष के स्वरूप का उल्लेख मिलता है। [34]

बृहत् संहिता में वास्तु पुरूष के प्रादुर्भाव के विषय में समान विवरण उपलब्ध है।

'' पुरातन काल में कोई अद्भुत अज्ञात स्वरूप व नाम का विशाल प्राणी प्रकट हुआ, उसके विकराल शरीर भूमि से आकाश तक व्याप्त था। विस्मय से वशीभूत उसे देवताओं ने सहसा पकड़कर नीचे फेंक दिया। उसके शरीर पर देवताओं ने यथास्थान अपना निवास बना लिया। जिस देव ने प्राणी के जिस भाग को पकड़ा उनका स्थान वही निश्चित हो गया। उस अज्ञात प्राणी को ब्रम्हा जी ने देवमय वास्तु-पुरूष के नाम से उद्घोषित कर दिया।''[35]

वास्तु सौख्यम ग्रन्थ में भी वास्तुपुरूष के प्रादुर्भाव के विषय में समान कथा का वर्णन किया गया है।[36]

बृहद्वास्तुमाला में भी वास्तुपुरूष के उत्पत्ति के विषय में समान कथा का वर्णन किया गया है।

'' सतयुग के प्रारम्भ में एक महान प्राणी उत्पन्न हुआ। यह प्राणी अपने विशाल शरीर से समस्त भुवनों में व्याप्त था । इसको देख देवराज सहित देवगण भय एवं आश्चर्य को प्राप्त हुये। तद्नन्तर उन्होने क्रुद्ध होकर उस असुर को पकड़कर उसका सिर नीचे करके भूमि में गाड़ दिया और स्वयं वहां खड़े रहे। इसी पुरूष को ब्रम्हा जी ने ''वास्तु पुरूष '' कहा। ''[37]

---

(33) विश्वकर्मा प्रकाश-अ.1/15-23 /खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई

(34) बृहत्संहिता खण्ड-2/अध्याय 52-श्लोक-2-3 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(35) वास्तु - सौख्यम (राजा टोडरमल्ल विरचितम्) /प्रथम अध्याय -श्लोक-9-13/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय, वाराणसी

(36) बृहद्वास्तुमाला-अध्याय 1/1-3 /डॉ. ब्रम्हानंद त्रिपाठी - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन , वाराणसी

इसी प्रकार की अन्य कथाएं और भी विविध ग्रन्थों में प्रचलित हैं। वास्तव में देखा जाय तो यह एक प्रतीक कथा हैं। वास्तु पुरूष एवं उसकी रचना का वैज्ञानिक आधार शोध का विषय है। इस बात की प्रबल संभावना है कि वास्तुशास्त्र पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति एवं उसकी बल धाराओं का उर्जा प्रवाह होगा। इन उर्जा प्रवाहों को संतुलित करने के लिये विविध ग्रह-नक्षत्रो,सूर्य-चंद्र, वायु,जल, ताप,आदि प्राकृतिक शक्तियों ने प्रभावपूर्ण कार्य किया होगा। वास्तु पद विन्यास में विविध कोष्ठों में विभिन्न देवी देवताओं की स्थापना की जाती है। वास्तव में जो चुम्बकीय बल धारायें हैं एवं उनका उर्जा प्रकट है उसी को संतुलित करने की परिकल्पना वास्तु पद विन्यास के माध्यम से की गयी है।

2.2 वास्तु देवता का स्वरूप -

वास्तु देवता के स्वरूप के विषय में ऐसा कहा गया है कि ये औंधो मुंह लेटे हुये हैं। कई विद्वान यह कहतें हैं कि वास्तु पुरूष सीधे लेटे हुये हैं। परन्तु वास्तु पुरूष की स्थिति का सही-सही विन्यास अग्नि पुराण ग्रन्थ में मिलता है।

'' आकु ञ्चितकरं वास्तुमुत्तानम सुराकृतिम्।
स्मरेत्पूजासु कुड्यादिनिवेशेत्वधराननम्॥
जानुनी कूर्परौ सक्थि दिशि वातहुताशयो:।
पैत्र्यां पादपुटौ रौद्रयां शिरोऽस्य हृदयेऽञ्जलिः॥
अस्य देहे समारूढा देवता: पूजिता शुभाः।

-अग्नि पुराण के अनुसार वास्तु पूजा काल में वास्तु पुरूष का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि '' उनके हाथ सिकुड़े हुये हैं, शरीर उत्तान पड़ा हुआ है। आकृति असुर की तरह है। भित्ति के निवेश का ध्यान इस प्रकार है- मुख नीचे की ओर लटका है। घुटना,कोहनी, तथा जड्घा वायु तथा अग्निकोण में स्थित है। चरण नैऋत्य कोण में और सिर, हृदय तथा अञ्जलि ईशानकोण में स्थित हैं। उसके शरीर में सम्मानित देवगणों का वास है।''(38)

वाराह मिहिर कृत बृहत् संहिता में भी वास्तुपुरूष के स्वरूप का वर्णन किया गया है-

'' पूर्वोत्तरडि. मूर्धा पुरूषोऽयमवाड्. मुखोऽस्य शिरसि शिखा।
आपो मुखे स्तनेऽस्यार्यमा ह्युरस्या पवत्सश्च॥
पर्जन्याद्या बाह्या हक्श्रवणोर : स्थलांसगा देवा :।
सत्याद्या: पञ्च भुजे हस्ते सविता च सावित्र:॥
वितथो बृहत्क्षतयुत: पार्श्वे जठरे स्थितो विवस्वांश्च।
ऊरू जानु च जड्.घे स्फिगिति यमाद्यै: परिगृहीता :॥
एते दक्षिणपार्श्वे स्थानेष्वेवं च वामपार्श्वस्था :।
मेढ्रे शक्रजयन्तौ हृदये ब्रह्म पिताऽड्.घ्रिगत: ॥''

वास्तु पुरूष का सिर ईशान में है। इसके सिर पर ''शिखी'' नामक देवता का वास है। '' आप '' मुख में, अर्यमा स्तन में, एवं आपवत्स छाती पर है। बाहरी कोष्ठकों में स्थित 'पर्जन्य' नेत्र में, 'जयन्त' कान में, 'इन्द्र' हृदय में, सूर्य कन्धे में, स्थित है। 'सत्य', भृश, अनिल, पूषा एवं 'अन्तरिक्ष' इसकी भुजा में है। हथेली में सविता एवं सावित्र हैं।

---

(37) अग्नि पुराणम् पूर्व भाग / अध्याय 93 /श्लोक 3-5 /- तारिणीश झा / डॉ. घनश्याम त्रिपाठी -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(38) बृहत्संहिता /अध्याय52/श्लोक 51-54 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

दोनों पार्श्वों में 'वितथ' एवं 'बृहक्षत ' है। 'विवस्वान ' का स्थान पेट में, 'यम ' अरू में स्थित है।'गन्धर्व ' घुटनों में, 'भृंगराज ' पिण्डली में तथा भृग का निवास कूल्हे में है। ये देवता दक्षिण भाग में स्थित है।

बाएं पार्श्व में स्तन में 'पृथ्वीधर ' नेत्र में 'दिति ' तथा कान में 'अदिति' का वास है। छाती पर 'भुजग ' कन्धे में 'सोम' स्थित है। 'भल्लाट ' 'मुख्य' 'अहि' 'रोग' 'पापयक्ष्मा' भुजा (हाथ) में स्थित हैं। 'रूद्र' व 'राजयक्ष्मा' हथेली में, 'शोष' व 'असुर' पार्श्व में, तथा 'वरूण' का वास जांघ में है। 'पुष्पदन्त' का वास घुटने में, 'सुग्रीव' का पिण्डली में तथा दौवारिक का वास 'कूल्हे' में स्थित है।

वास्तु पुरूष के लिंग में 'शक्र' व 'जयन्त' का वास है। हृदय में 'ब्रम्हा' पैरो में 'पितर' का वास है। इस प्रकार अंगानुसार सभी देवगणों का वास है। वास्तु पुरूष की अवस्था अवाङ्.मुख (औंधे मुख) रहती है।''(39)

मानसार में भी वास्तु पुरूष के स्वरूप का उल्लेख है।

'' वास्तु पुरूष उत्तर पूर्व में अधोमुख लेटा है। उसका मुख अर्यमा के पद में है। ईशान में सत्य हाथ, नैऋत्य में सत्य पैर, अग्नि कोण में सत्य हाथ, वायत्य में दायां पैर फैला है। विवस्वत में दाहिना हिस्सा, भूधर में बायां हिस्सा एवं मित्र में मेढ्र है। वास्तु पुरूष के दोनों कान, नाड़ी तंत्र, शिरा, छः वंश, हृदय पश्चिम से दक्षिण तथा ईशान से पूर्व के मूल वंश हैं। यह वास्तु पुरूष कुंज,कुटिल व कृश है। शिल्पी का यह दायित्व है कि देव गृह व भवनों में वास्तु पुरूष का उचित ध्यान रखे। समस्त शुभ व अशुभ का मूल होने के कारण इसका कोई भी भाग पीड़ित नहीं होना चाहिये। अज्ञान वश भी यदि वास्तु पुरूष का कोई अंग हीन हो जाये तो कर्त्ता का विनाश होता है।''(40)

समरांगण सूत्रधार के अनुसार वास्तु पुरूष का स्वरूप कुछ इस प्रकार है -

वास्तु पुरूष के सिर को अग्नि कला कहा गया है। दोनों नेत्रों को दिति और मेघों का अधिपति कहा गया है। वास्तु पुरूष के कानों को जयन्त और अदिति कहा गया है। मुख में वायु का वास है। दाहिने हाथ में सूर्य और बायें हाथ में चन्द्रमा प्रतिष्ठित हैं। वक्षस्थल पर आप वत्स के साथ अर्यमा तथा बायें पर पृथ्वीधर स्थित हैं। यक्ष्मा, रोग,नाग,मुख्य, भल्लाट- ये पांच देवता बांई बाहु में अवस्थित हैं। सत्य, भृश, नभ, वायु और पूषा- ये पांच देव वास्तु पुरूष के दाहिनी भुजा पर स्थित हैं। वास्तु पुरूष के हृदय में ''ब्रह्मा '' जी विराजमान हैं तथा सावित्र (गणेश), सविता, रूद्र और शक्तिधर ये चार देव दोनों हाथों के ककोमिस्थ हैं। दाहिनी ओर वितथ और ओकःक्षत और बांई बगल में शेष और असुर नामक देवता स्थित हैं। मित्र एवं विवस्वान इसके पेट में विराजमान् हैं। वास्तु पुरूष के लिंग में इन्द्र एवं जय नामक देवों का वास है। यम और वरूण देवों का स्थान दाहिने और बायें ऊरू में हैं। दाहिनी कंधा में भृग गन्धर्व और भृंग का स्थान है। बायीं जंघा में द्वारस्थ, सुग्रीव और पुष्प नामक देवों का वास है। पितृगण का स्थान वास्तु पुरूष के चरणों में है।

वास्तु पुरूष का सिर - इक्यासी पदीय वास्तुरचना में वास्तु पुरूष का सिर ईशान कोण में स्थित होता है। चौंसठ पद वाले वास्तु में वास्तु देव का सिर माहेन्द्री दिशा में स्थित रहता है।(41)

मयमतम् ग्रन्थ में वास्तु पुरूष के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। भवन की आत्मा वास्तु पुरूष

---

(39) मानसार / अध्याय 7/श्लोक 127 से 136 / Architecture Of Mansara By P.K. Acharya / Low Price Publication, Delhi
मानसार (हिन्दी टीका) /शिव वर्मा - शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(40) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम(महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम) /अध्याय 17 श्लोक -1-10 तक/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली

(41) MAYAMATA / Chapter 7/ 49-50 / Bruno Dagens /

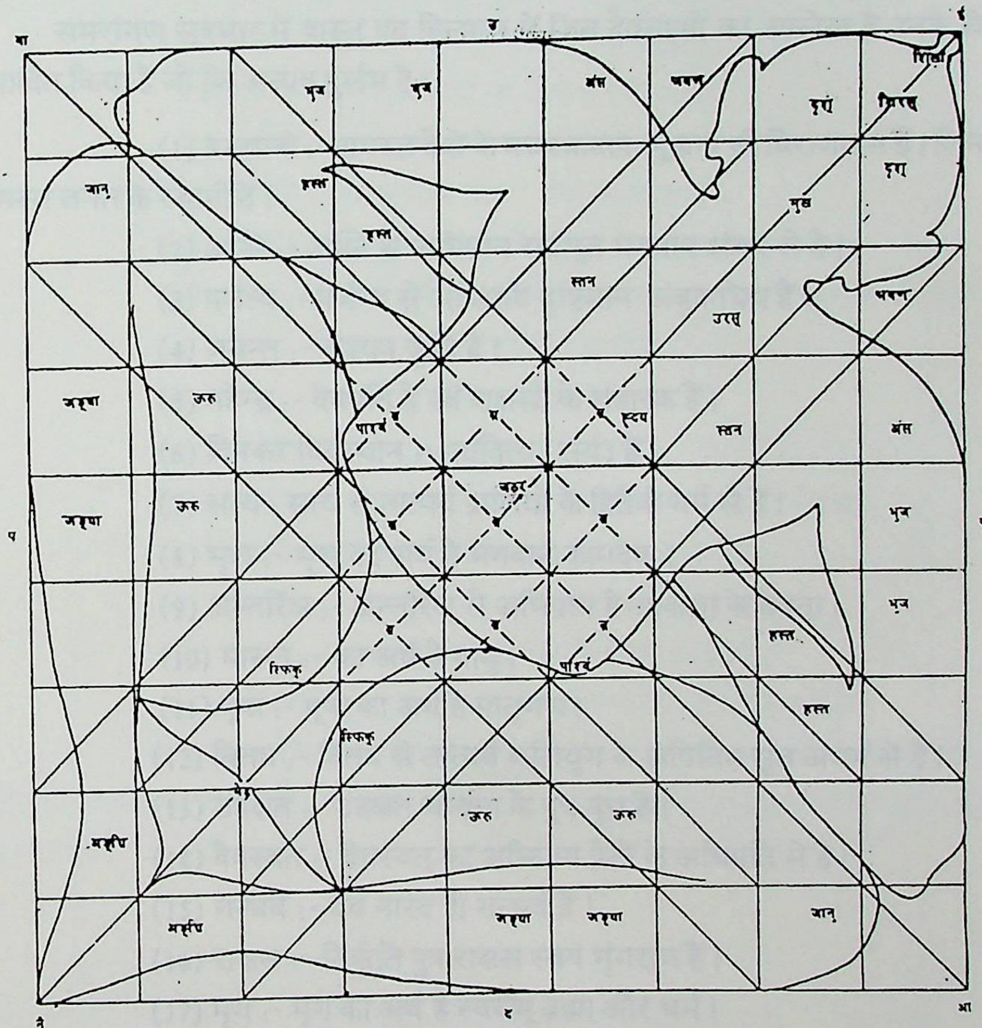
वास्तु देवता की शरीरिकी

वास्तुपुरुषाकृति (सावयवा)
(९ × ९ = ८१) बृहत्संहिता (अ. ५३)

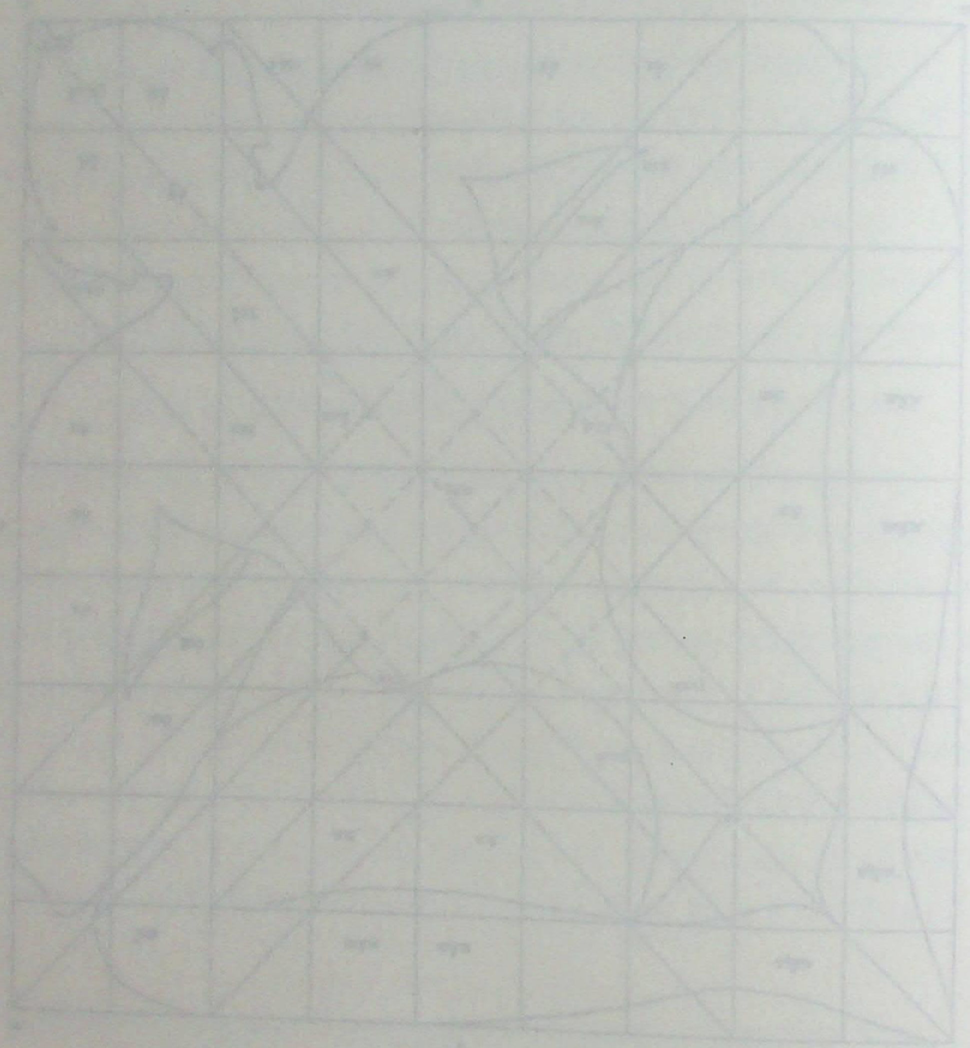
वास्तुपुरुष-शरीरावयव-रचना

वास्तु देवता की शरीरिकी

वास्तुपुरुषाकृति (सावयवा)
(९ × ९ = ८१) बृहत्संहिता (अ. ५३)



वास्तुपुरुष-शरीरावयव-रचना



के छ: शल्य, एक हृदय, चार मर्मस्थान, एवं चार शिराएं हैं वह पूर्व की ओर सिर करके लेटा है। वास्तु पुरूष के सिर पर भगवान आर्य का निवास है। सविन्द्र उसकी दाहिनी भुजा है, साविन्द्र उसका दाहिना हाथ है। आप उसकी दाहिनी भुजा एवं आपवत्स दाहिना हाथ है। वास्तु पुरूष का दाहिना भाग विवस्वन्त एवं बायां भाग महिधारा है। मध्य में ब्रम्हा का स्थान है। वास्तु पुरूष के मेड्र (Testicles) में मित्र स्थित हैं।[42]

इस प्रकार विविध वास्तु के आचार्यों ने वास्तु पुरूष के स्वरूप एवं वास्तु पुरूष के प्रार्दुभाव पर प्रकाश डाला है।

2.2.1 वास्तु - पद विन्यास में वर्णित देवताओं का विवरण -

समरांगण सूत्रधार में वास्तु पद विन्यास में जिन देवताओं का उल्लेख है उनके विषय में सम्पूर्ण विवरण प्रतिपादित किया है जो कि अन्यत्र पुर्लभ है।

(1) ब्रम्हा जी :- समस्त देवों के मध्य कमल-भू ब्रह्म जी विराजमान हैं। जिनके सहस्त्र मुख हैं ब्रह्म जी समस्त जगत के स्वामी हैं।

(2) अग्नि :- अग्नि से अभिप्राय सर्वभूत भगवान शंकर से है।

(3) पर्जत्य :- पर्जन्य से अभिप्राय वृष्टिमान अंबुदाधिय हैं।

(4) जयन्त :- कश्यप कृषि हैं।

(5) महेन्द्र :- देवपति हैं एवं राक्षसों के संहारक हैं।

(6) दिनकर विवस्वान :- आदित्य (सूर्य) हैं।

(7) सत्य : सत्य से तात्पर्य प्राणियों के हितैषी धर्म से हैं।

(8) भृश :- भृश का अर्थ है भगवान कामदेव ।

(9) अन्तरिक्ष :- अन्तरिक्ष से अभिप्राय है आकाश के देवता।

(10) मारूत :- का अर्थ है वायु।

(11) पूषा :- पूषा का अर्थ है मातृगण।

(12) वितथ :- वितथ से तात्पर्य कलियुग के अप्रितिम सुत अधर्म से है।

(13) ग्रहक्षत :- ग्रहक्षत चन्द्रमा के पुत्र बुध हैं।

(14) वैवस्वत :- वैवस्वत् का अभिप्राय प्रेतों के अधिपति से है।

(15) गन्धर्व :- देव नारद ही गन्धर्व हैं।

(16) राक्षस :- निर्ऋति पुत्र राक्षस स्वयं भृंगराज हैं।

(17) मृग :- मृग का अर्थ है स्वयंभू ब्रह्मा और धर्म।

(18) पितृगण :- पितृगणों से पितृलोक के निवासी देवगण वर्णित है।

(19) दौवारिक :- दौवारिक का अभिप्राय नंदी से है जो कि प्रथमों के अधीश्वर हैं।

(20) सुग्रीव :- सुग्रीव से तात्पर्य आदि प्रजापति सृष्टि कर्त्ता मनु से है।

(21) पुष्पदन्त :- विनिता पुत्र महाजवशाली वायु ही पुष्पदन्त हैं।

(22) वरूण :- सुमुद्रों (जल)के स्वामी और लोकपाल ''वरूण'' हैं।

(23) असुर :- असुर का अर्थ सिंहिका पुत्र राहू से है जो कि सूर्य व चन्द्र के संहारक हैं।

(42) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम(महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम) /अध्याय 17

(24) शोष :- सूर्य पुत्र शनि ही शोष हैं।

(25) पाप- यक्ष्मा :- पाप यक्ष्मा का अर्थ है क्षय

(26) रोग :- रोग का अर्थ है ज्वर

(27) नाग :- सर्पों के अधिपति भगवान वासु कि शेषनाग ही " नाग " हैं।

(28) मुख्य :- मुख्य नामक देव का अभिप्राय है "विश्वकर्मा " और "वृष्टा"।

(30) सोम : सोम का अर्थ है " कुबेर "

(31) व्यसाय :- व्यवसाय को चरक कहा गया है।

(32) अदिति :- अदिति का अभिप्राय है " लक्ष्मी "।

(33) दिति : दति का अर्थ त्रिशूलधारी वृषभध्वज भगवान शंकर।

(34) आप :- आप का अर्थ है देवात्मा हिमालय।

(35) आपवत्स :- आपवत्स का अर्थ है देवी 'उमा '।

(36) अर्यमा :- अर्यमा से अभिप्राय है 'आदित्य'।

(38) सविता :- सविता से 'गंगा' देवी व्यवह्वत हैं।

(39) विवस्वान :- भृत्य कारक देव है " विवस्वान "।

(40) जय:- बलवान् हरिइन्द्र जो कि देववत्र धारण करने वाले हैं " जय " हैं।

(41) मित्र :- मित्र का अर्थ है माली "हलधर "

(42) रूद्र :- रूद्र का अर्थ है 'महेश्वर'।

(43) राजयक्ष्मा :- राजयक्ष्मा का अभिप्राय है " कार्तिकिय "।

(44) पृथ्वीधर :- पृथ्वीधर का अर्थ है भगवान अनंत " शेषनाग "।

(45) चरकी : राक्षसयोनी में उत्पन्न देवों की अनुचरी।

(46) विदारी :- राक्षसयोनी में उत्पन्न देवों की अनुचरी।

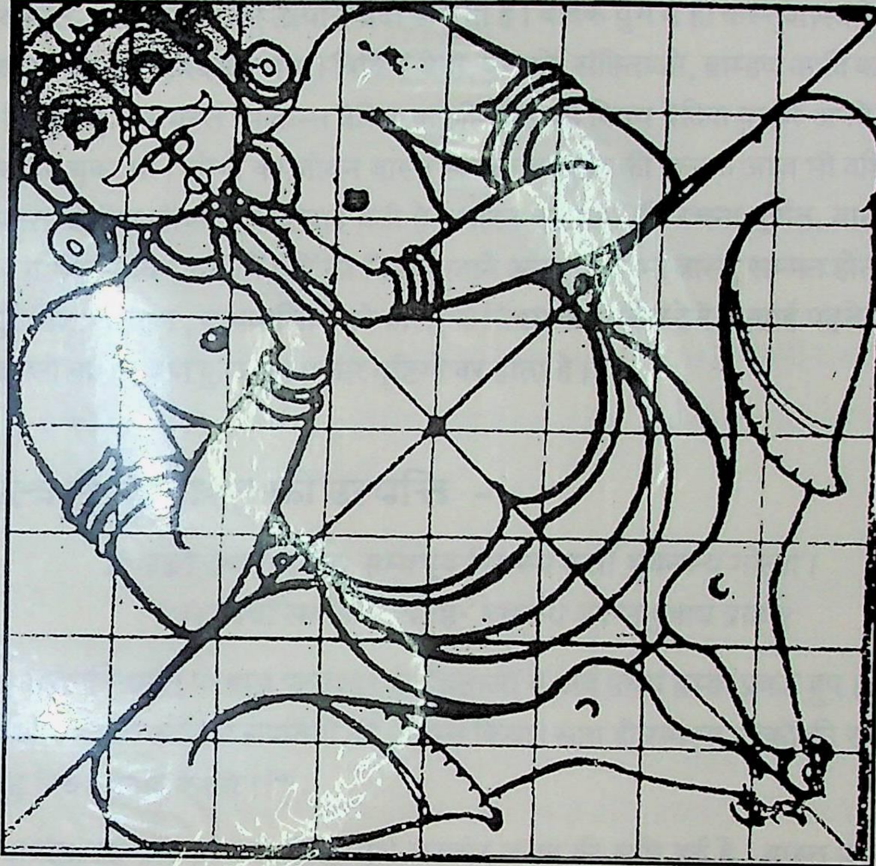
(47) पूतना :- राक्षसयोनी में उत्पन्न देवों की अनुचरी।

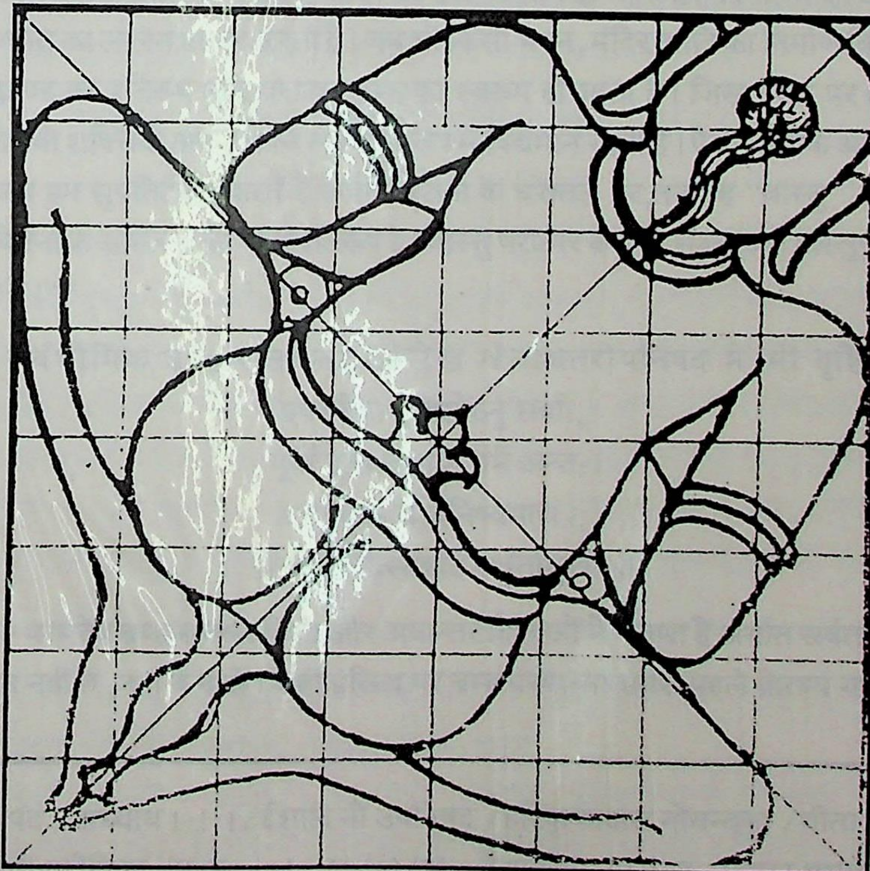
(48) पाप राक्षसी :- राक्षसयोनी में उत्पन्न देवों की अनुचरी।[42]

ये समस्त देवता वास्तु - पुरूष के अलग -अलग स्थानों पर अवस्थित हैं। वास्तु रचना में इन्हीं देवताओं का ध्यान रख कर नियोजन किया जाता है। वास्तु पूजा में इन्हीं देवताओं को बलि आदि समर्पित कर प्रसन्न किया जाता है।

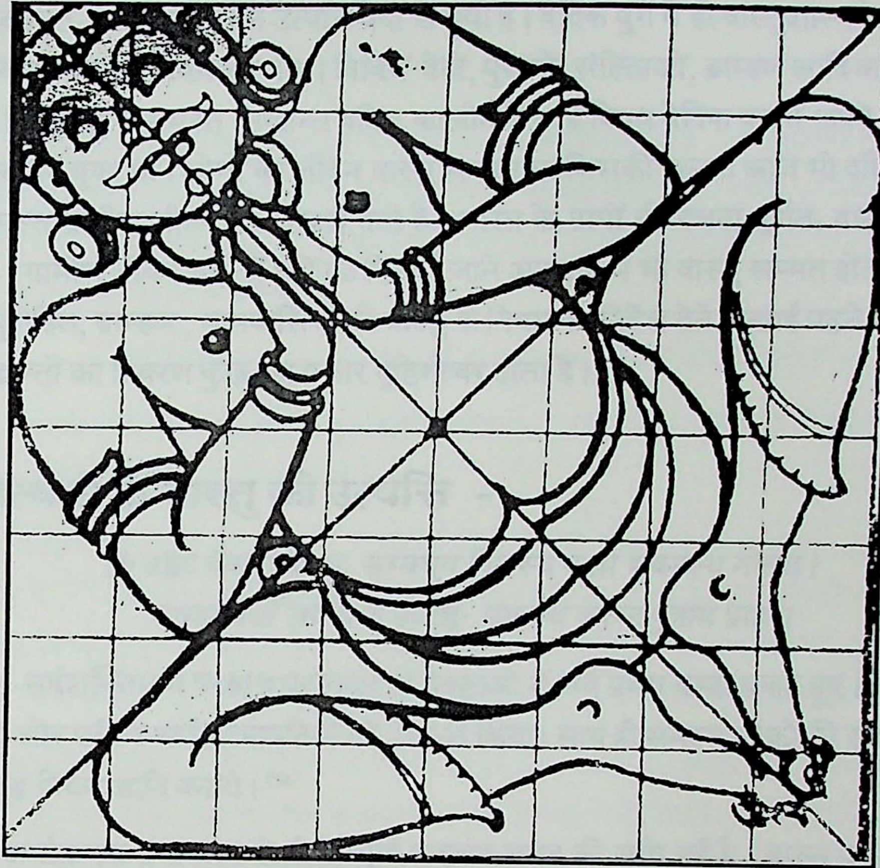
श्लोक -13-33 तक/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली

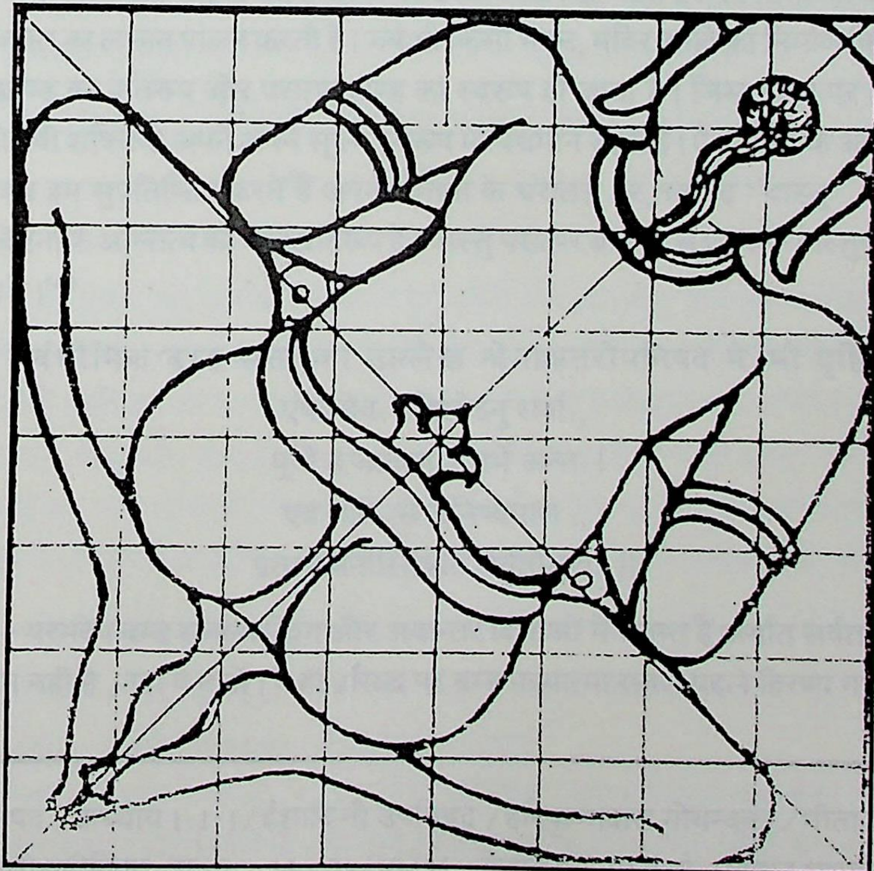
वास्तु देवता का स्वरूप





वास्तु देवता का स्वरूप









2.4 वास्तु शास्त्र के मूल सिद्धान्त -

वस्तुतः वास्तुशास्त्र की उत्पत्ति वेदों से हुयी है। वैदिक युग में ही वास्तुशास्त्र के समस्त सिद्धान्तों का विकास हुआ एवं यह सम्पूर्ण विषय बन गया। विविध वेदों, पुराणों, संहिताओं, ब्राम्हण आदि का विस्तृत अध्ययन यह सिद्ध करता है कि वास्तु के समस्त सिद्धान्त वैदिक कालीन हैं। यह विषय वैदिक युग में अपने विकास की समस्त अवस्थाओं को पार कर चुका था। लोगों का जीवन वास्तु सम्मत था जिसकी झलक आज भी दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत के समस्त ग्रामीण जीवन पर दिखाई देती है। भारत के ग्रामों की रचना पूर्णतः वास्तु के सिद्धान्तों पर आधारित होती है । ग्रामीण जीवन चर्या में घरों का निर्माण जाने अनजाने में भी वास्तु सम्मत होता है। ग्रामीण जीवन शैली में आज भी पुरोहित, ब्राम्हण , ग्रामवासियों को वास्तु के नियम का निर्देश देते दिखाई पड़ते हैं। वैदिक शास्त्रों में वास्तु के मूल सिद्धान्तों का विवरण कुछ इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है।

2.4.1 ब्रम्ह तत्व से ही वास्तु की उत्पत्ति -

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्रस्य कर्त्ता भुवनस्य गोत्वा।
सब्रह्मविद्यां सर्वविद्या प्रतिष्ठ- मथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह ।।

- सर्वशक्तिमान परब्रम्ह परमेश्वर से देवताओं में सर्व प्रथम ब्रम्हा प्रकट हुए। फिर इन्होने ही सब देवताओं, महर्षियों और मरीचि आदि प्रजापतियों को उत्पन्न किया। साथ ही समस्त लोकों की रचना भी की तथा उन सबकी रक्षा के सुदृढ़ नियम आदि बनाये। (44)

अर्थात एक ब्रम्ह तत्व से ही सम्पूर्ण चराचर जगत की सृष्टि हुई है। वास्तु पुरूष उसी सर्वव्याप्त चेतना का प्रतिरूप है जिससे सब कुछ बनता है और फिर उसी में लीन हो जाता है। परमात्मा की अनुपम कृति पृथ्वी है जो सम्पूर्ण प्राणी जगत का लालन पालन करती है। जब भी किसी भवन, मंदिर आदि का निर्माण किया जाता है , तो वह स्थान समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतिरूप और परात्पर ब्रम्ह का स्वरूप हो जाता है। जिस स्थल पर हम निर्माण करतें हैं समग्र ब्रह्माण्ड की दैवी शक्तियों अपने अपने सूक्ष्म स्वरूप में विद्यमान रहती हैं। ऐसी धार्मिक अथवा स्थूल रचना को सचेत के रूप में जब हम सुप्रतिष्ठित करतें हैं अपनी चेतना के धरातल पर,तब वह ''वास्तु '' कहलाती है। वास्तु हमारी आंतरिक चेतना के अस्तित्व का व्यक्तप्रतिरूप है। वास्तु परात्पर ब्रम्ह के सूक्ष्म रूप वास्तुपुरूष की विद्यमानता का ज्वलंत प्रमाण है।(45)

सर्वभौमिक ब्रम्ह सत्ता का उल्लेख श्वेताश्वतरोपनिषद में भी दृष्टिगोचर होता है।

एषह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः,
पूर्वो ह जातःस उ गर्भे अन्तः।
एव जातः स जनिष्यमाण :,
प्रताड़ जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुख : ।।

- परमदेव ब्रम्ह समस्त दिशा और अवान्तर दिशाओं में व्याप्त हैं अर्थात सर्वत परिपूर्ण है। जगत में कोई भी ऐसा स्थान नहीं है ,जहां वे न हों। वे ही प्रसिद्ध पर ब्रम्ह परमात्मा सबसे पहले हिरण्य गर्भरूप में प्रकट हुये हैं

---

(43) मुण्डकोपनिषद /अध्याय 1-1-1/ईशादि नौ उपनिषद /हरिकृष्णदास गोयन्दका /गीता प्रेस गोरखपुर
(44) विज्ञान भारती प्रदीपिका /पृ.क्र. - 14 - 21/10/96 - केशवराम अय्यंगर /विज्ञान भारती प्रकाशन जबलपुर

और भविष्य में अर्थात प्रलय के बाद भी सृष्टिकाल में पुनः प्रकट होने वाले हैं। ये समस्त जीवों के भीतर अन्तर्यामीरूप से स्थित हैं।[46]

2.4.2 ब्रह्माण्ड के पांच मूलभूत तत्व -

हमारा ब्रह्माण्ड पंच भूतात्मक है जिसमें पांच तत्वों का समावेश है । ये पांच तत्व हैं पृथ्वी, अग्नि,वायु, जल, और आकाश। ठीक इसी प्रकार मानव शरीर भी पांच तत्वों का सम्मिश्रण है । पृथ्वी पर किया जाने वाला किसी भी प्रकार का निर्माण कार्य इन्हीं पांच तत्वों पर आधारित है। गोस्वामी तुसलीदास जी ने मानव शरीर के पंचभूतात्मक शरीर के विषय में किष्किन्धाकाण्ड में लिखा है :-

'' छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा ।। ''[47]

ये पांच तत्व अपने उचित अनुपात में हो तो मानव शरीर के समस्त कार्य सुचारू रूप से चलते हैं। मूलतः वास्तु के भी आधारभूत तत्व ये पंचभूत ही हैं।

इन्हीं पांच तत्वों की उत्पत्ति के विषय में तैत्तिरीय उपनिषद के ''ब्रह्मानन्द वल्ली '' के प्रथम अनुवाक में उल्लेख है - ''सर्वप्रथम आकाश तत्व उत्पन्न हुआ। आकाश से वायुतत्व,वायु से अग्नि तत्व, अग्नि से जल-तत्व, और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वी से नाना प्रकार के औषधियां- अनाज के पौधे हुये और औषधियों से मनुष्यों का आहार अन्न उत्पन्न हुआ। उस अन्न से यह स्थूल शरीर रूप मनुष्य उत्पन्न हुआ।''[48]

अर्थात ये पांच शक्तियां ही मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। इनके द्वारा हमारा शरीर कोर्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा चर्बी जैसे आन्तरिक शक्तिवर्द्धक तत्व प्राप्त करता है तथा गर्मी,प्रकाश,ध्वनि तथा वायु बाह्य शक्तियों द्वारा ग्रहण करता है। जब इन पंच तत्वों का सामञ्जस्य बिगड़ता है तो हमारी शक्तियां क्षीण होने लगती हैं,जिनके कारण, बीमारियां, मानसिक तनाव तथा अन्य परेशानियां बढ़ने लगती हैं। जब ये सारी शक्तियां अपने सभी अनुपात में कार्य करती हैं तो व्यक्तिको सुख, आरोग्य,धन,सम्पति एवं सफलता प्राप्त होती है।

इस विषय पर श्वेताश्वतरोपनिषद् बड़ा तात्विक प्रकाश डाला गया है -

'' पृथत्यप्रेजानिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणेप्रकृत्ते।
नतस्य रोगो न जरा न मृत्यु : प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।। ''

- इस प्रकार जब साधक योग करते हुये पृथ्वी,जल,तेज,वायु और आकाश का उत्थान कर लेता है अर्थात जब इन पांच तत्वों को अपने वशीभूत कर लेता है तो उस मनुष्य को न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है और न उसकी मृत्यु होती है। यदि इस श्लोक पर विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि शरीर का संचालन ये पंच तत्व ही करते हैं। वास्तु के मूल तत्व भी ये पांच तत्व ही हैं। इन पांच शक्तियों का सही विन्यास वास्तु रचना में किया जाता है। वास्तुपद विन्यास में इन पांच शक्तियों की सही दिशा का निर्धारण कर गृह, नगर, ग्राम, आदि का निर्माण कराया जाता है। इस प्रकार के निर्माण से हर शक्ति की उर्जा का प्रवाह अपने संतुलित रूप में होता है। जो भी व्यक्ति या समाज

---

(45) श्वेताश्वतरोपनिषद -2/16 /ईशादि नौ उपनिषद /हरिकृष्णदास गोयन्दका /गीता प्रेस गोरखपुर
(46) रामचरित मानस - किष्किन्धाकाण्ड /गीता प्रेस गोरखपुर
(47) तैत्तिरीयोपनिषद - ब्रम्हानन्द वल्ली /1/ईशादि नौ उपनिषद /हरिकृष्णदास गोयन्दका /गीता प्रेस गोरखपुर
(48) श्वेताश्वतरोपनिषद -2/12/ईशादि नौ उपनिषद /हरिकृष्णदास गोयन्दका /गीता प्रेस गोरखपुर

वास्तु अनुरूप रचना में निवास करते हैं उनके जीवन में सुख,आरोग्य, धन, सफलता की अधिकता रहती है।[49]

2.5 वास्तु के प्रर्वतक -

वास्तु शास्त्र के प्रर्वतक आचार्यों का क्रमवार एवं तथ्यात्मक विश्लेषण मत्यस्य पुराण ग्रन्थ के अध्याय 252 में मिलता है।

'' भुगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा। नारदोनग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरंदरः ॥

ब्रम्हा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च। वासुदेवोऽविरूद्धश्च तथा शुक्र बृहस्पति ॥

अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका:। संक्षेपेणोयदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा ॥

-अर्थात् भृगु , अत्रि , वशिष्ट , विश्वकर्मा , मय , नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष , पुरन्दर , ब्रम्हा , कुमार , नन्दीश , शौनक , गर्ग, वासुदेव , अनिरूद्ध , शुक्र तथा वृहस्पति-ये अठ्ठारह वास्तुशास्त्र के उपदेशक अथवा प्रणेता माने गये हैं।[50]

इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर वास्तु शास्त्र की दो मुख्य धारायें दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रथम धारा के प्रणेता हैं -

(1) देवशिल्पी विश्वकर्मा

दूसरी धारा के उपदेष्टा हैं -

(1) दानव शिल्पी मय

2.5.1 देव शिल्पी प्रजापति विश्वकर्मा -

विश्वकर्मा जी के विषय में समरांगण सूत्र-धार नामक ग्रन्थ में बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रमाण उल्लिखित है । साररूप में देखें तो कुछ महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। प्रथम तो विश्वकर्मा जी की वंश परम्परा का उल्लेख है। विश्वकर्मा जी प्रभास वसु के पुत्र थे। तथा बृहस्पति के भानजे थे । विश्वकर्मा जी को त्रिदशाचार्य सर्व-सिद्धि प्रर्वतक बताया गया है। इसी उद्धारण में यह भी स्पष्ट है कि विश्वकर्मा ने ही देवराज इन्द्र की अमरावती का निर्माण किया था । राजाओं की अन्य मनोरम नगरियों की भी इन्होने ही रचना की है। पर्वतों एवं वृक्षों से आकीर्ण इस साक्षात मूर्ति (पृथ्वी) को क्षेत्रीकृत (समीकृत) देखकर विश्वकर्मा जी अवश्य ही पुर, ग्राम तथा नगरों के सुन्दर निवेशों का सम्पादन करेंगे।[51]

वेदों में आठ वसुओं का वर्णन है जो कि भिन्न-भिन्न कलाओं में पारंगत थे। इन वसुओं के नाम घर, ध्रुव, सोम, अहः (आयः),अनल, अनिल, प्रत्यूष, प्रभास। इन्ही प्रभास वसु के पुत्र थे विश्वकर्मा जी। '' वाल्मीकी रामायण, महाभारत तथा सभी पुराणों में विश्वकर्मा को अष्टम वसु प्रभास का पुत्र बताया गया है। इनकी माता देवों के गुरू ''वृहस्पति'' की बहन ''आं गिरसी '' थीं। इनका विवाह दैत्यों की बहन ''रचना'' से हुआ था। विश्वकर्मा के दो

---

(49) मत्यस्य पुराण/श्लोक 252/ श्लोक 2-4/पं. बाबूराम उपाध्याय /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(50) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम(महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम) /अध्याय 1
श्लोक -17-22 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स , दिल्ली

(51) विज्ञान भारती प्रदीपिका (21 अक्टूबर 1996) / पृ.क्र. 53-62/प्रो. सुरेश्वर शर्मा /विज्ञान भारती प्रकाशन जबलपुर

पुत्र हुये ''सतिनवेश'' और ''विश्वरूप ''। विश्वकर्मा की चार पुत्रियां थीं प्रथम ''संज्ञा'' जो विवस्थान ''सूर्य'' की पत्नी बनी अन्य तीन थी ''बर्हिष्मती'' चित्रांगदा एवं कशेरू।[52]

समरांगण सूत्रधार में विश्वकर्मा के चार पुत्रों के नाम इस प्रकार वर्णित हैं - ''जय, विजय, सिद्धार्थ तथा अपराजित ''। इन्ही विश्वकर्मा जी के पुत्र ''जय'' ने विश्वकर्मा जी से वास्तु विज्ञान के रहस्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर जगत के कल्याणार्थ इस ज्ञान को व्यापक बनाया।[53]

बृहत्संहिता ग्रन्थ में भी वास्तु शास्त्र के प्रारम्भिक उपदेष्टाओं के विषय में वर्णन है। ब्रम्हा जी द्वारा गर्गादि ऋषियों को प्रथम बार यह वास्तुज्ञान बताया गया है। इस वास्तु विद्या को जानने से बुद्धिमान व विद्वान दैवज्ञ लाभान्वित होंगे।[54]

राजा टोडरमल्ल विरचित ग्रन्थ वास्तु सौख्यम में भी वास्तु शास्त्र के प्रथम उपदेष्टाओं का वर्णन किया गया है।[55]

2.5.2 दानव शिल्पी मय -

दक्षिण भारत के दो प्रमुख ग्रन्थ जो कि वास्तु विद्या के आधार स्तम्भ माने जाते हैं। उनके नाम हैं ''मयमतम् '' एवं ''मानसार''। समस्त भारतीय वैदिक ग्रन्थों, पुराणों ,रामायण, महाभारत आदि में ''मय'' के शिल्प शास्त्र की चर्चा मिलती है। महर्षि बालमीकि ने रामायण में '' मय '' के कला कौशल का विशद् वर्णन किया है।

''मय'' दानव राज रावण का ससुर था। ऐसी मान्यता है कि लंका नगरी का निर्माण स्वयं ''मय'' ने कराया था।

''गोस्वामी तुलसीदास '' कृत ''रामचरितमानस'' में भी लंका नगरी के वास्तु शिल्प का वर्णन है। मय की वंश परंपरा में ''कश्यप'' को मय का पिता बनाया गया है। उनकी 12 पत्नियों में एक 'दनु' थी जिसके पुत्र दानव कहलाये। मय दानवों में ज्येष्ठ था।[56]

2.6 वास्तु पद विन्यास -

जब कभी भी पृथ्वी पर वास्तु रचना की जाती है तो वह ब्रह्माण्डीय रचना की ही संकल्पना होती है। प्रसिद्ध आगम ग्रंथों में वास्तु पुरूष को ब्रह्माण्ड पुरूष का सूक्ष्म रूप माना गया है। भारतीय वैदिक वांगमय में वास्तु पद विन्यास का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। पौराणिक कथाओं में उद्धृत वास्तु देवता ही वास्तु पुरूष मण्डल के रूप में चित्रित होते हैं।

मत्स्य पुराण में वास्तु पद विन्यास का वर्णन मिलता है। मत्स्य पुराण में वास्तु - पद विन्यास पर समुचित प्रकाश डाला गया है :-

'' सर्ववास्तु विभागेषु विज्ञेया नवका नव।
एकाशीतिपदं कृत्या वास्तु वित्सर्ववास्तुषु ॥
पदस्थान्यूजयेछेवांस्त्रिशत्यश्चदशैव तु।

---

(52) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम(महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम) /अध्याय 2 श्लोक -2-3 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स , दिल्ली

(53) बृहत्संहिता खण्ड-2/अध्याय 52-श्लोक-1 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(54) वास्तु सौख्यम (राजा टोडर मल्ल विरचित)/अध्याय 1-1/पृ.क्र.3-4/ आचार्य श्री कमलाकान्त शुक्ल/ संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

(55) विज्ञान भारती प्रदीपिका (21 अक्टूबर 1996) / पृ.क्र. 53-62/प्रो. सुरेश्वर शर्मा /विज्ञान भारती प्रकाशन जबलपुर

द्वात्रिंशद्वा ह्यत: पूज्या: पूज्याश्चन्तस्त्रयोदशा ॥

- अर्थात सभी प्रकार के वास्तु विभागों में नव-नव (9.9) अर्थात इक्यासी पद का वास्तु जानना चाहिये। वास्तु शास्त्र के विज्ञाता को सभी प्रकार के वास्तु सम्बन्धी कार्यों में इनका प्रयोग करना चाहिये।पदस्थ 45 देवताओं का पूजन करना चाहिये। पैंतालीस में से बत्तीस देवताओं का बाहर से तथा तेरह देवताओं का अन्दर से पूजन करना चाहिये। [57]

मनुष्यों को देवताओं का पूजन ईशान आदि कोणों में हवि द्वारा करना चाहिये। वे बत्तीस देवता जिनका पूजन बाहर से करना चाहिये उनके नाम हैं :- शिखी, पर्जन्य,जयन्त, कलिशायुध, सूर्य,सत्य, भृंश,आकाश, वायु,पूषा, वितथ, गृहक्षत, दोनों यम, गन्धर्व, मृगराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सृग्रीव,अघदन्त, जलाधिय, असुर,शोष,पाप,रोग,अहिमुख्य, मल्लाट, सोम,सर्प, अदिति और दिति। ईशान आदि चारो कोणों में अवस्थित इन देवताओं की बुद्धिमान पुरूष को पूजा करनी चाहिये।

आप, सवित्र, जय तथा रूद्र ये चार चारों ओर से तथा मध्य में 5 वें स्थान पर ब्रम्हा तथा उनके समीप में अवस्थित अन्य आठ देवताओं की भी पूजा करनी चाहिये। ये देवता ही मिलकर मध्य क 13 देवता होते हैं। ब्रम्हा के चारो ओर स्थित वे आठ देवता जो क्रमश: पूर्वादि दिशाओं में दो-दो के क्रम से रहते हैं, साध्य देव गज कहलाते हैं। इन साध्य देवगणों के नाम हैं :- अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र,राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर एवं आपवत्स। ये आठ देवता ब्रम्हा के चारो ओर अवस्थित माने गये हैं।

आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि तथा दिति ये पांच देवताओं के वर्ग हैं, जिनकी पूजा अग्निकोण में करनी चाहिये। उनके बाहर बीस देवता हैं, वे सभी तीन पदों में रहते हैं।अर्यमा, विवस्वान्, मित्र तथा पृथ्वीधर ये चार ब्रम्हा के चारों ओर रहने वाले देवता हैं। ये सभी तीन-तीन पदों में अवस्थित रहतें हैं।

वायु से लेकर रोग पर्यंत, पितृगण से शिखी पर्यन्त, मुख्य से भृश पर्यन्त, शेष से वितथ पर्यन्त, सुग्रीव से अदिति पर्जन्य, तथा मृग से पर्यन्त तक (पर्यन्त)ये वंश कहलाते हैं। कहीं-कहीं मृग से लेकर जय, पर्यन्त वंश कहा जाता है। पद के मध्य में इनका जो संपात है वह पद, मध्य तथा सम नाम से भी प्रसिद्ध है एवं त्रिशूल एवं कोणगामी जो हैं। वे मर्मस्थल कहे जाते हैं। स्तम्भन्यास एवं तुलादि विधि में इन सबको बचाना चाहिये। मनुष्य को प्रयास पूर्वक देवता के पदों पर कीलें ठोंकना, उच्छिष्ट भोजनादि छोड़ना तथा चोटें पहुंचाना एसे कार्यो कों वर्जित रखना चाहिये।

यह वास्तु चक्र सभी स्थलों में पितृवर्ग एवं वैश्वनिर के अधीन माना गया है। उसके मुख में अग्नि का निवास माना गया है, मुख में ही जल का निवास भी है, दोनों स्कन्धों पर पृथ्वीधर तथा अर्यमा का निवास है। वास्तु पुरूष के वक्षस्थल पर आपवत्स की पूजा करनी चाहिये। दोनों नेत्रों में रिति और पर्जन्य तथा दोनों कानों में अदिति और जयन्तक तथा दोनो कन्धों पर अवस्थित सर्प और इन्द्र की प्रयत्न पूर्वक पूजा करनी चाहिये। उसी प्रकार दोनों बाहुओं में सूर्य और चन्द्रमा से लेकर पांच-पांच देवता अवस्थित हैं। रूद्र और राजयक्ष्मया ये दोनों देवता बाएं हाथ पर अवस्थित हैं। उसी प्रकार सावित्र और सविता दाहिने हाथ पर अवस्थित हैं। विवबन्धों पर अवस्थित हैं असुर, और शेष दो बाएं पार्श्व में अवस्थित हैं। दाहिने पार्श्व में वितथ और गृहक्षत हैं। दोनों अरू, भागों में यम और जलाधिप, घुटनों में गन्धर्व, और पुष्पक को जानना चाहिए। जंघों में भृंग और सुग्रीव तथा दोनों नितंबों पर दौवारिक और मृग हैं। लिंग स्थान पर जय तथा शक्र और दोनों पैरों पर पितृगण अवस्थित हैं। मध्य के नौ पदों पर ब्रम्हा हैं जिनकी पूजा वास्तु के ह्रदय में करनी चाहिये।[58]

---

(57) मत्यस्य पुराण/श्लोक 253/ श्लोक 21-22/पं. बाबूराम उपाध्याय /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(58) मत्यस्य पुराण/श्लोक 253/ पं. बाबूराम उपाध्याय /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

2.6.1 प्रासाद निर्माण -

ब्रम्हा जी ने प्रासाद निर्माण के लिये चौंसठ पदों वाले वास्तु के पूजने की विधि बताई है। यहां ब्रम्हा का निवास चार पदों में रहता है, काणों में आधे पद में देवगण अवस्थित रहते हैं। वास्तु के बाहरवाले कोणों में डेढ़ पद में देवताओं का निवास रहता है तथा बीस देवता दो पदों में निवास करतें हैं।[59]

अग्नि पुराण ग्रन्थ के पूर्व भाग में भी वास्तु पद विन्यास वर्णित है। अग्नि पुराण के अनुसार नगर,ग्राम तथा दुर्ग आदि में ग्रह तथा महल की वृद्धि के निमित्त इक्यासी प्रकोष्ठों से युक्त वास्तुदेव की आकृति का पूजन करना चाहिये। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य अग्नि पुराण में यह दृष्टिगोचर होता है कि यहां वास्तु देव की 20 नाड़ियों का उल्लेख मिलता है।

वास्तुदेव की उस पूर्वाभिमुखी नाड़ियों के नाम हैं :- शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी,सती, वसुमति, नन्दा,सुभद्रा और मनोरमा। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नाड़ियां हैं जो इक्यासी प्रकोष्ठों से युक्त तथा उत्तराभिमुखी हैं। इनके नाम हैं :- हरिणी, सुप्रभा, लक्ष्मी,विभूति, विमला, प्रिया, जया, ज्वाला,विशोका और स्मृता।[60]

ईश आदि आठ-आठ देवताओं का सब दिशाओं में पूजन करना चाहिये। ईश, धनञ्जय, शक्र, अर्क,सत्य, भृश तथा व्योम की पूजा पूर्व दिशा में करनी चाहिये। दृव्यवाह, पूषा, वितथा, भौम, कृतान्त, गन्धर्व, भृङ्ग, तथा भृग की पूजा दक्षिण दिशा में करनी चाहिये। रोग, अहि (नाग) अदिति, तथा दिति की उत्तर दिशा के पादों में पूजा होनी चाहिये। बीच के नव प्रकोष्ठों में ब्रम्हा की पूजा होनी चाहिये। शेष अड़तालीस पदों में से आधे में अर्थात चौबीस पदों में वे देवता पूजनीय हैं जो अकेले छः पदों में अधिकार रखतें हैं। (प्रासाद के चारों ओर एक-एक करके चार देवता षटपदगामी हैं- जैसे पूर्व में मरीमिचिका या अर्येमा). दक्षिण में, विवस्वान, पश्चिम में मित्र तथा उत्तर में पृथ्वीधर) ब्रम्हा जी तथा ईश के मध्यवर्ती दो पदों में 'आप' तथा उससे नीचे वाले दो पदों में 'आपवत्स' की पूजा करनी चाहिये। अग्नि तथा मरिचि के बीच दो कोष्ठों में सावित्री देवी और उससे भी नीचे छह कोष्ठों में सूर्य की पूजा करनी चाहिये। पितर और ब्रम्हा के बीच में विष्णु,चन्द्रमा तथा इन्द्र की, उससे नीचे जय की पूजा करनी चाहिये। वरूण और ब्रम्हा के मध्य में छह प्रकोष्ठों में मित्र नामक देव की पूजा करनी चाहिये।रोग और ब्रम्हा के बीच विष्णु तथा रूद्रदास की पूजा करनी चाहिये। उसके नीचे दो कोष्ठों में यक्षमा और छह कोष्ठों में धराधर की पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात ईश आदि के कोष्ठों से बाहर चरकी,स्कन्द,विकट,विदारी, पूतना, जम्भ पापदेव तथा पिलिपिच्छ की पूजा करनी चाहिये।

सामान्य गृह के लिये इक्यासी कोष्ठों से युक्त वास्तुदेव की आकृति होनी चाहिये। मण्डप के निर्माण के लिये सौ कोष्ठों से युक्त वास्तु देव की रचना करनी चाहिये। यहां भी पूर्व की ही भांति देवताओं की पूजा करनी चाहिये। सोलह कोष्ठों में ब्रह्म की पूजा और ईशान आदि कोणों में स्थित दश कोष्ठों में मरीची, विवस्वान, मित्र तथा पृथ्वीधर की पूजा करनी चाहिये। दैत्यमाता, ईश,अग्नि,मृग नामक दो पितर,पाप,यक्ष्मा तथा वायु के देवताओं की पूजा डेढ़-डेढ़ कोष्ठ में करनी चाहिये।[61]

---

(59) मत्यस्य पुराण/श्लोक 253/ पं. बाबूराम उपाध्याय /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(60) अग्नि पुराणम् पूर्व भाग / अध्याय 105 / श्लोक 1-4 / तारिणीश झा / डॉ. घनश्याम त्रिपाठी -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(61) अग्नि पुराणम् पूर्व भाग / अध्याय 105 / श्लोक 14-16 / तारिणीश झा / डॉ. घनश्याम त्रिपाठी -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

वाराह मिहिर विरचित बृहत् संहिता ग्रन्थ वास्तु विज्ञान पर महत्वपूर्ण जानकारी संग्रहित है। वास्तु पद विन्यास पर भी महत्वपूर्ण जानकारी दी गयी है।

2.6.2 चौंसंठ पद वास्तु का स्वरूप -

बृहसंहिता में 64 पदीय वास्तु रचना का उल्लेख मिलता है।

" अष्टाष्टकपदमाश कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक्।

ब्रह्म चतुष्पदों ऽस्मिन्नर्धपदा ब्रह्मकोणस्था : ।।

अष्टौ च बहिष्कोणेएवर्धपदास्त दुमयस्थिता: साधो : ।।

उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विशंतिस्ते हि।।

- बराबर दूरी पर अवस्थित 9-9 खड़ी व आड़ी रेखाये खींचकर चौंसठ कोष्ठों का क्षेत्र बना लेना चाहिये। चारो कोनों में तिर्यक रेखा तीन-तीन खण्डों को मिलाती हुई खींच लेना चाहिये। चार पदों में विराजमान ब्रह्म जी को केन्द्र में स्थापित किया जाता है। 8 देवता जो कि आधे पद में स्थित रहतें हैं बाहरी कोनों में होते हैं एवं शेष देवता द्विपद स्थापित रहते हैं।[62]

2.6.3 इक्यासी पद वास्तु का स्वरूप -

समस्त भूमि जिस पर निमार्ण करना हो को 81 बराबर भागों में विभक्त करना अभीष्ट होता है। इसके लिये 10-10 रेखाएं (समानान्तर) खड़ी एवं आड़ी खींचना चाहिये। इस प्रकार 81 खाने बन जायेंगे। इस 81 कोष्टक वाले क्षेत्र में, मध्य भाग में 13 देवता व बाहर 32 देवता रहते हैं। कुल मिलाकर 45 देवताओं की स्थिति रहती है। ईशान कोण से प्रारम्भ करके बाहरी कोष्ठकों में क्रमश: ये देवता प्रदक्षिता के क्रम से स्थित रहते हैं।

शिखी, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र,सूर्य, सत्य, भृश, अन्तरिक्ष, अनिल या अनल में 9 देवता ईशान से अग्नि कोण तक के 9 कोष्ठकों में स्थित रहते हैं। अग्नि कोण से नैकृत्य तक पूषा, वितथ, बृहत्क्षत्, यम, गन्धर्व, भृंगराज, मृग, पितर रहते हैं। पश्चिमी 9 कोष्ठकों में दौवारिक, सग्रीव, पुष्यदन्त, वरूण,असुर, शेष, पापयक्ष्मा व रोग स्थित रहते हैं। उत्तरी 9 कोष्ठों में - नाग,मुख्य,भल्लाट, सोम, भुजग,अदिति,दिति है।

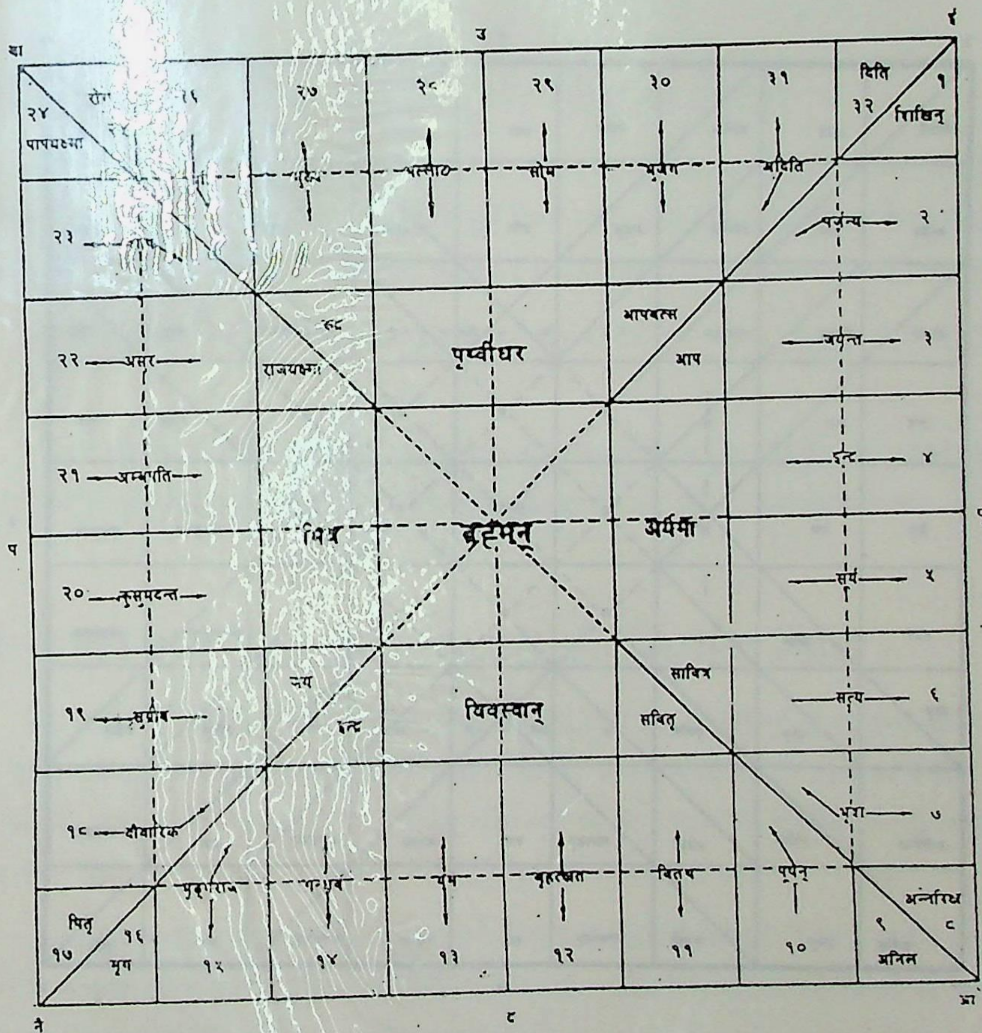
भीतर अवस्थित 13 देवता - बीच के 9 कोष्ठकों में ब्रम्हा जी का स्थान है। ब्रम्हा के ऊपर पूर्व में 3 कोष्ठकों अर्यमा, दक्षिण के तीन कोष्ठकों में विवस्वान्, पश्चिमी कोष्ठकों में मित्र, उत्तरी 3 कोष्ठकों में पृथ्वीधर का स्थान है। मध्य में बचे कोणों में ईशान में आपवत्स, अग्निकोण में सवितह, नैकृत्य में इन्द्र वायत्य में राजयक्ष्या का अधिष्ठान है। बाहर की ओर से दूसरी पंक्ति में ईशान कोण में आप,आग्नेय में सावित्र, नैकृत्य में जय, वायत्य में रूद्र स्थित हैं। शेष खाली कोष्ठकों में, बाहरी पंक्ति के देवता ही रहते हैं।

इस प्रकार ईशान कोण में आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि,दिति ये पांच देवता सम्मिलित होकर एक वर्ग या एक पद, कोष्ठक या पदिका का निर्माण करतें हैं। इसी प्रकार अग्नि कोण में सविता,सावित्र, अर्यमा,अन्तरिक्ष, पूषा इन पांच का एक वर्ग बनता है। [63]

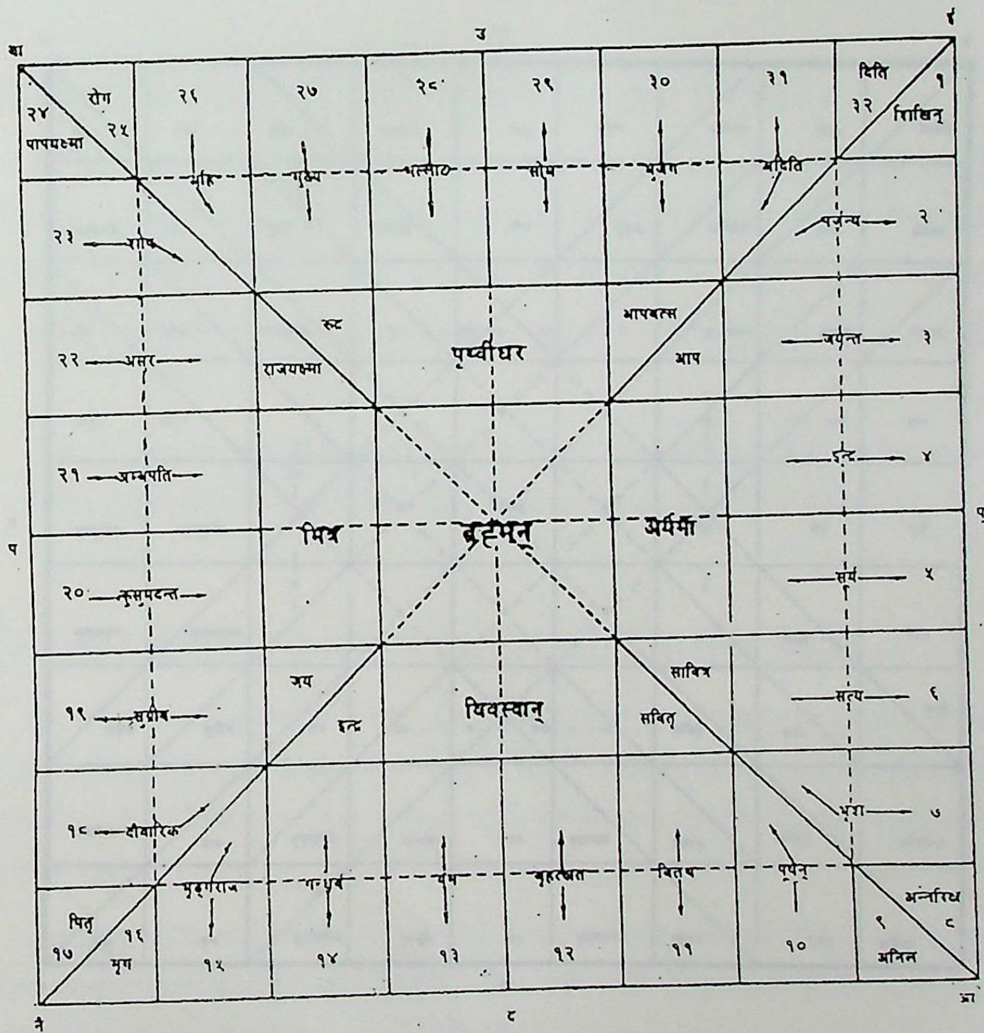
(62) बृहत्संहिता खण्ड-2/अध्याय 52-श्लोक-55-56 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

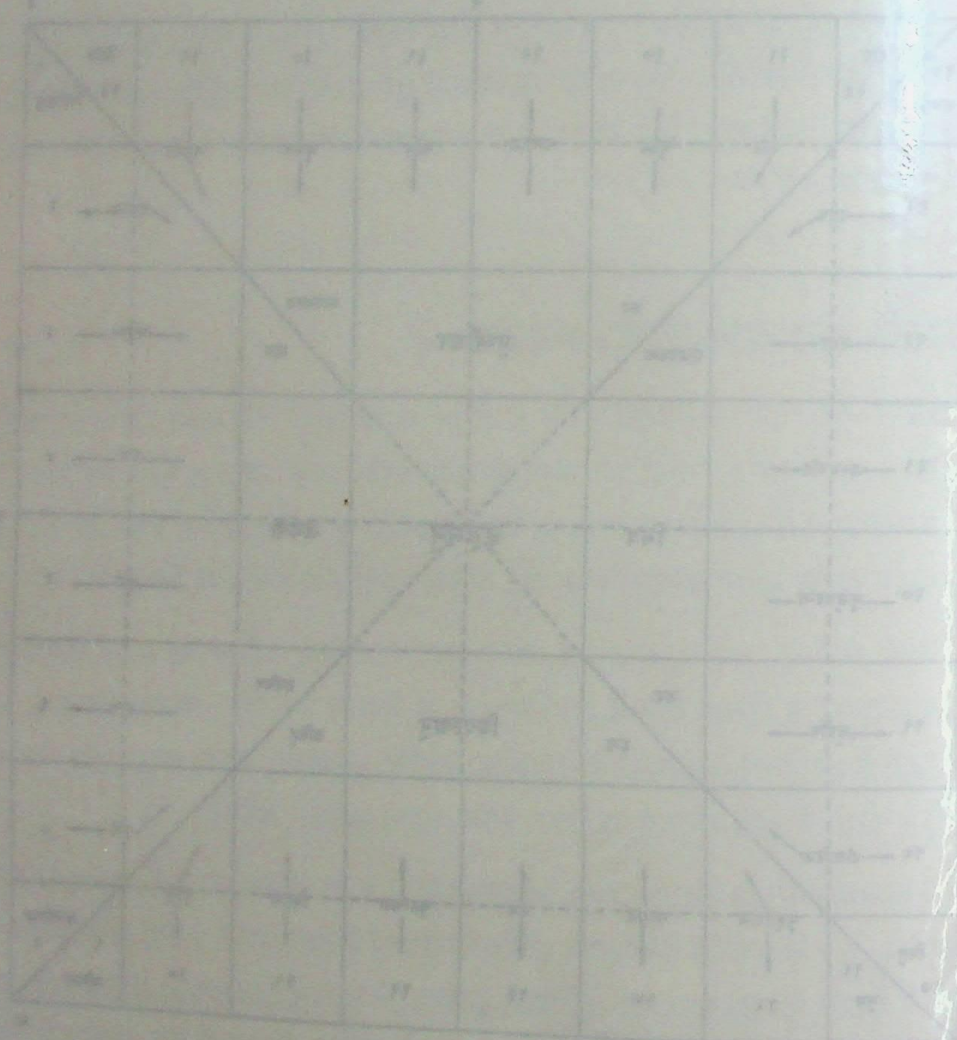
(63)बृहत्संहिता खण्ड-2/अध्याय 52-श्लोक-42-58 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

वास्तु पदविन्यास
(8.8 = 64)
बृहत्संहिता अध्याय 53



वास्तु पदविन्यास
(8.8 = 64)
बृहत्संहिता अध्याय 53





वास्तु पदविन्यास
(9.9 = 81)
बृहत्संहिता अध्याय 53

वा | उ | ई

रोग	अहि	मुख्य	भल्लाट	सोम	भुजग	अदिति	दिति	शिखी
पापयक्ष्मा	रुद्र	मुख्य	भल्लाट	सोम	भुजग	अदिति	आप	पर्जन्य
शोष	शोष	राजयक्ष्मा	पृ -	- थ्वी -	ध - - र	आपवत्स	जयन्त	जयन्त
असुर	असुर		ब	ब	ब	अ	इन्द्र	इन्द्र
अम्बुपति	अम्बुपति	मि	ब	ब्रह्मम्	ब	र्य	सूर्य	सूर्य
कुसुमदन्त	कुसुमदन्त	त्र	ब	ब	ब	मा	सत्य	सत्य
सुग्रीव	सुग्रीव	इन्द्र	वि -	ब - - स्वा	- न	सवितृ	भृश	भृश
दौवारिक	जय	भृङ्गराज	गन्धर्व	यम	बृहत्क्षत	वितथ	सावित्र	अन्तरिक्ष
पितृ	मृग	भृङ्गराज	गन्धर्व	यम	बृहत्क्षत	वितथ	पूषन्	अनिल

प | पू

नै | द | आ

नैऋत्य कोण में बिबुधाधिय, जय, दौवारिक पिता, मृग ये मिलकर एक पद या वर्ग का निमार्ण करतें हैं। वायव्य कोण में राजयक्ष्मा रूद्र, पापयक्ष्मा, रोग, अहि का एक पद होता है। इस प्रकार 81 कोष्ठों में से इन देवताओं को एक-एक ही कोष्ठक (पद) का स्वामित्व मिलता है।

उक्त देवताओं के अतिरिक्त बाहरी पंक्ति में रहनें वाले शेष देवता द्विपद अर्थात दो-दो कोष्ठकों के स्वामी हैं। जयन्त,इन्द्र, सूर्य, सत्य व भृश में पूर्व में। वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृंगराज ये दक्षिण में। सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरूण, असुर व शेष पश्चिम में तथा मुख्य, मल्लाट, सोम,भुजग, व अदिति में 20 देवता उत्तर दिशा में दो-दो कोष्ठकों के स्वामी होते हैं। इनके अतिरिक्त शेष 4 देवता अर्यमा,विवस्वान,मित्र व पृथ्वीधर त्रिपद होते हैं, अर्थात् इन्हें तीन-तीन कोष्ठकों का स्वामित्व मिलता है।

इस प्रकार का पदविन्यास 81 पदीय वास्तु में होता है। यह वास्तु भूमि के आकार के अनुसार चौकोर,त्रिकोण या गोलाकार हो सकता है।[64]

2.6.4 त्रिकोणात्मक 81 पदीय वास्तु की निर्माण विधि -

इस हेतु 5 समानान्तर त्रिकोण एक दूसरे के भीतर निर्माण करना चाहिये। तीनों बाहरी कोणों पर क्रमशः दिति अनिल व वरूण को स्थान देना चाहिये। शेष पूर्व दिशा भाग को 8 बराबर भागों में विभक्त करना चाहिये। शेष दोनों भुजाओं को 12-12 भागों में विभक्त करना चाहिये। अब शिखी आदि को क्रमशः स्थापित करना चाहिये।

दूसरे त्रिकोण के भी 32 भाग करके पूर्ववत उसी क्रम से बाहरी त्रिकोण अनुसार समस्त देवों को स्थान देना चाहिये।

तीसरे त्रिकोण में तीनों ओर 4-4 भाग करके चक्र में दर्शाए अनुसार आप, आपवत्स आदि देवों को स्थापित करना चाहिये। गर्भ त्रिकोण का 5 भाग करके सबों पर ब्रम्हा जी को स्थान देना चाहिये।[65]

2.6.5 वर्तुलाकार इक्यासी पदीय वास्तु की निर्माण विधि -

इस प्रकार के वास्तु पद विन्यास के लिये क्रमशः पांच वृत एक केन्द्र से अलग-अलग दूरी लेकर खींचने चाहिये। अर्थात ये वृत्त एक दूसरे के अंदर होने चाहिये। बाहरी-बाहरी वृत्तों को 32-32 भाग में विभाजित करना चाहिये। तीसरे वृत्त की 12 भाग में विभक्त करना चाहिये। चौथे वृत्त को चार भागों में विभक्त करना चाहिये। पांचवा वृत्त अविभाजित होना चाहिये। यहां 32+32 +12+5 = 81 पद का वास्तु तैयार होता है।

अब ईशान से प्रारम्भ करके शिखी आदि वे देवता जो द्विपद के स्वामी हैं उन्हें बाहरी 2 वृत्तों में रखें। तीसरे वृत्त में ईशान से शुरू करके प्रदक्षिणा क्रम से अर्यमा, विवस्वान, मित्र व पृथ्वीधर को त्रिपदों में स्थापित करना चाहिये। केन्द्रीय वृत्त में ब्रम्हा जी की प्रतिष्ठा करनी चाहिये।[66]

---

(64) बृहत्संहिता खण्ड-2/अध्याय 52-श्लोक-42-58 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(65) बृहत्संहिता खण्ड-2/अध्याय 52-श्लोक-42-58 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(66) बृहत्संहिता खण्ड-2/अध्याय 52-श्लोक-49-56 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

वास्तु पदविन्यास
(9.9 = 81)
बृहत्संहिता अध्याय 53

।। एकाशीतिपद त्रिकोणवास्तु ।।

पूर्व

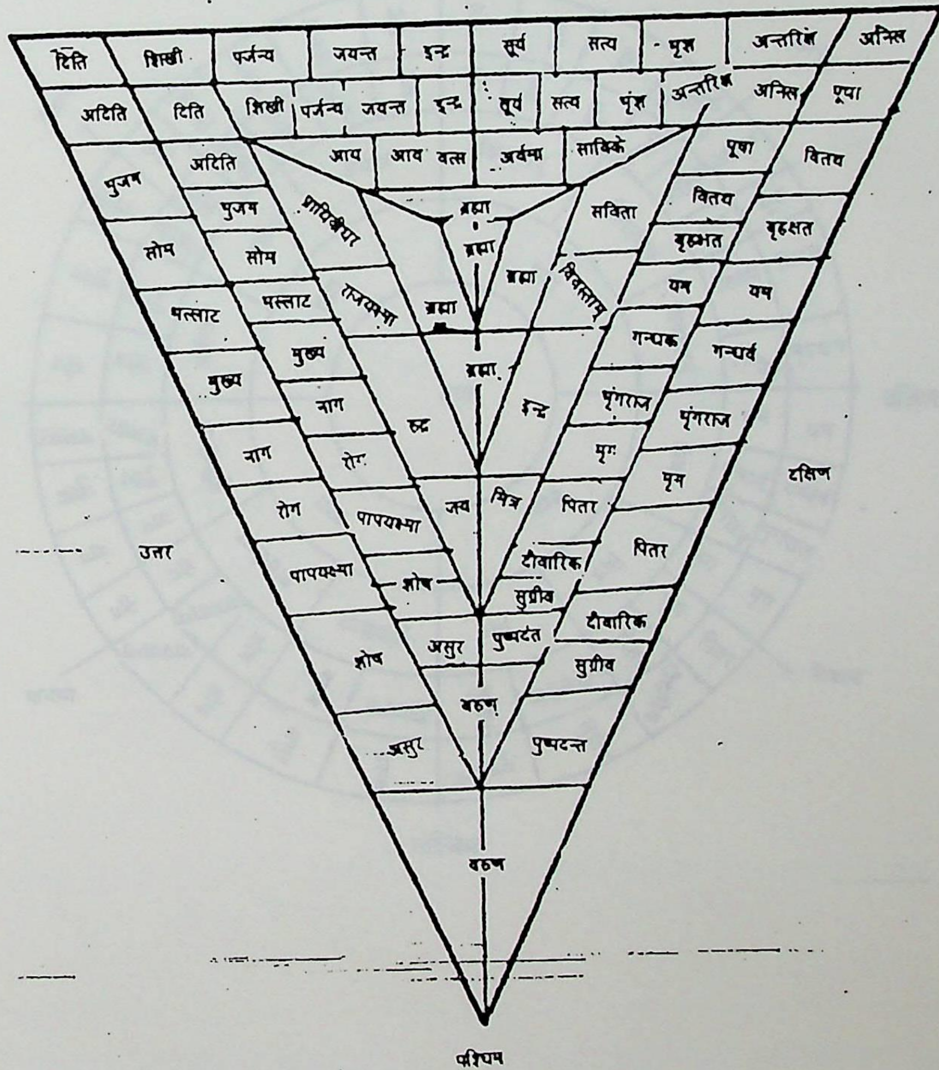
उत्तर

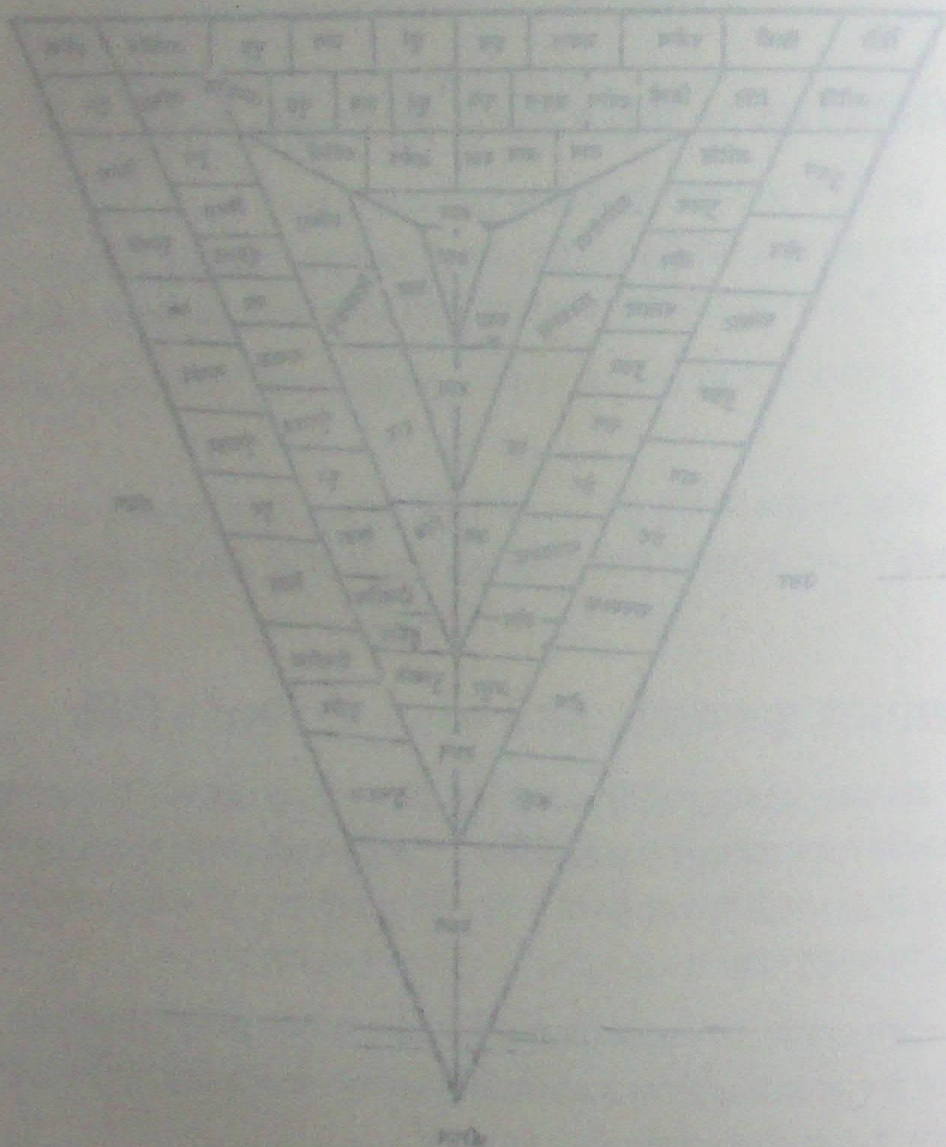
दक्षिण

पश्चिम



वास्तु पदविन्यास
(9.9 = 81)
बृहत्संहिता अध्याय 53





वर्तलाकार चौसंठ पद वास्तु का स्वरूप

बृहत्संहिता अध्याय 53

पूर्व

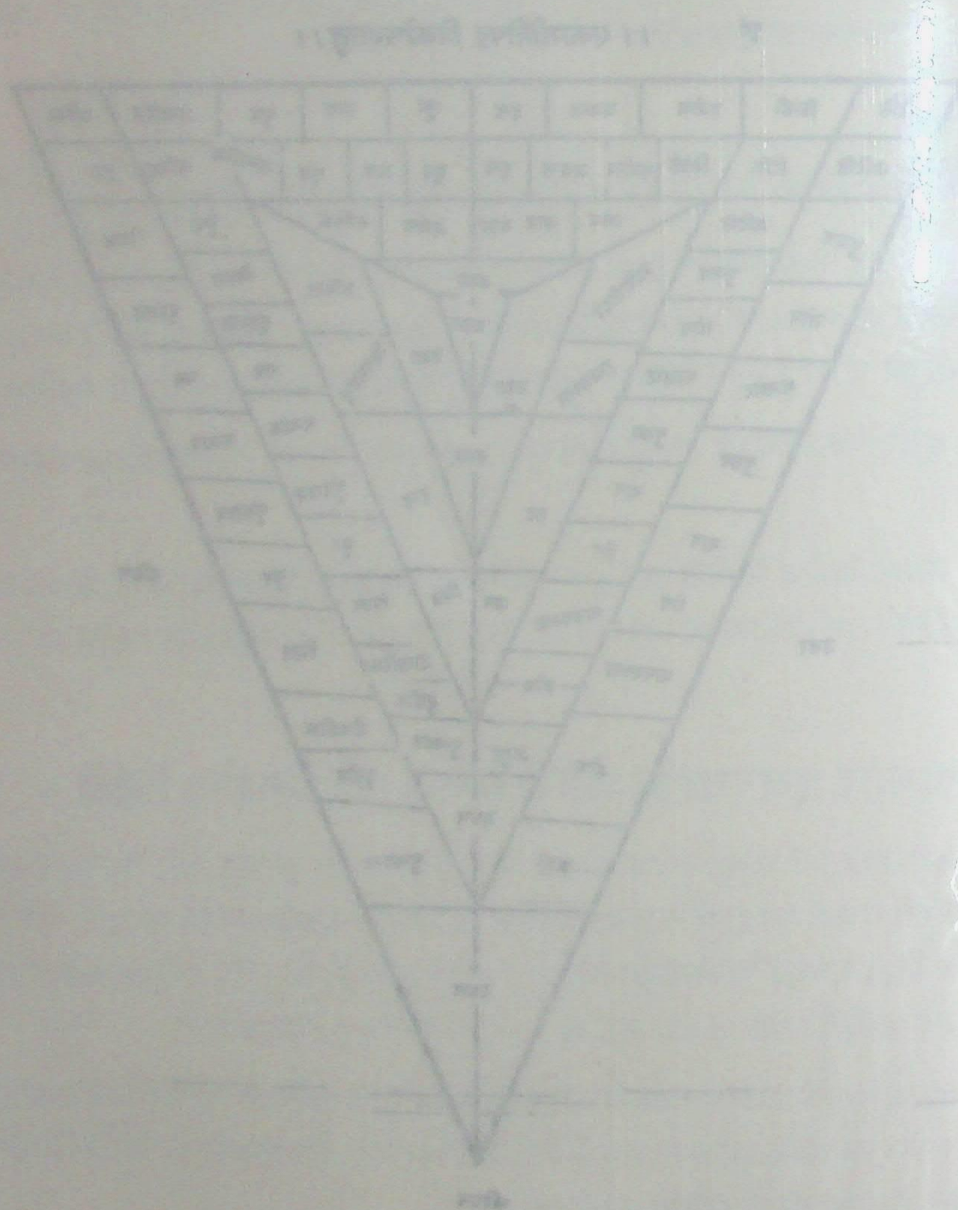
ईशान आग्नेय

उत्तर ब्रह्मा दक्षिण

वायव्य नैऋत्य

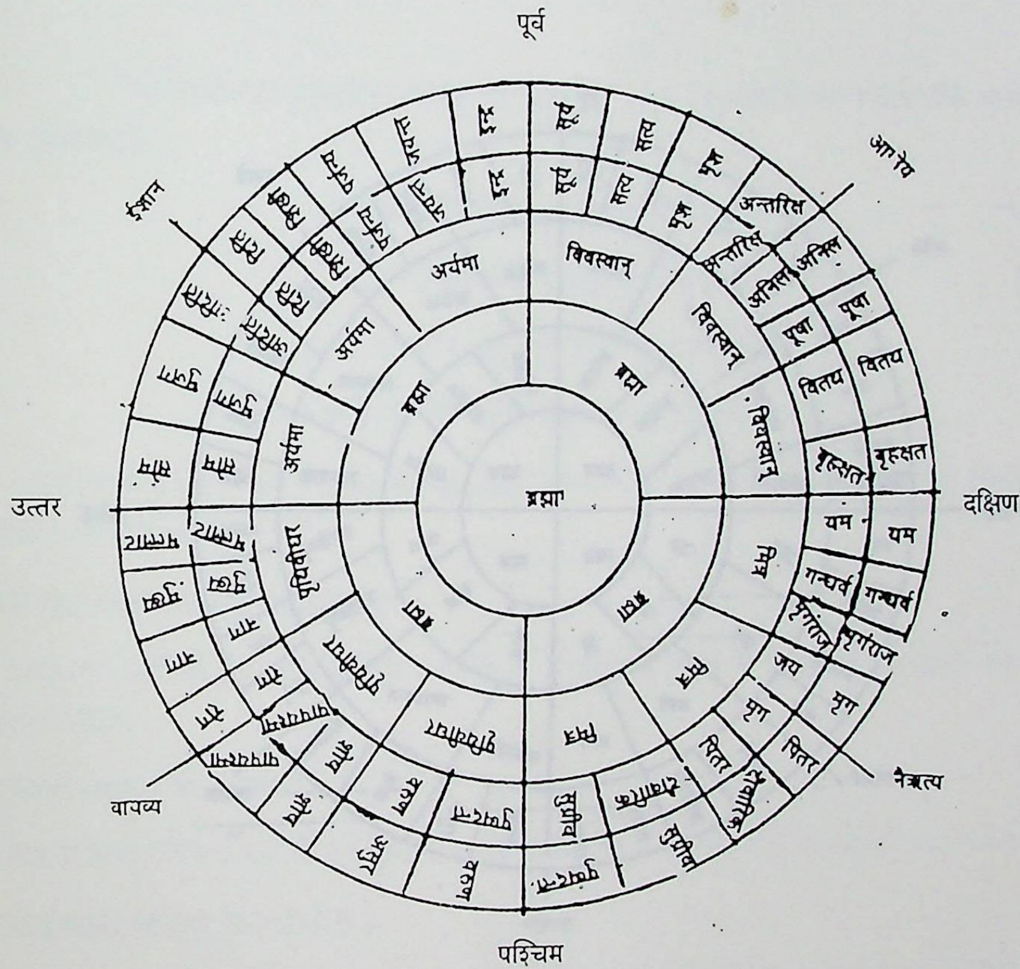
पश्चिम



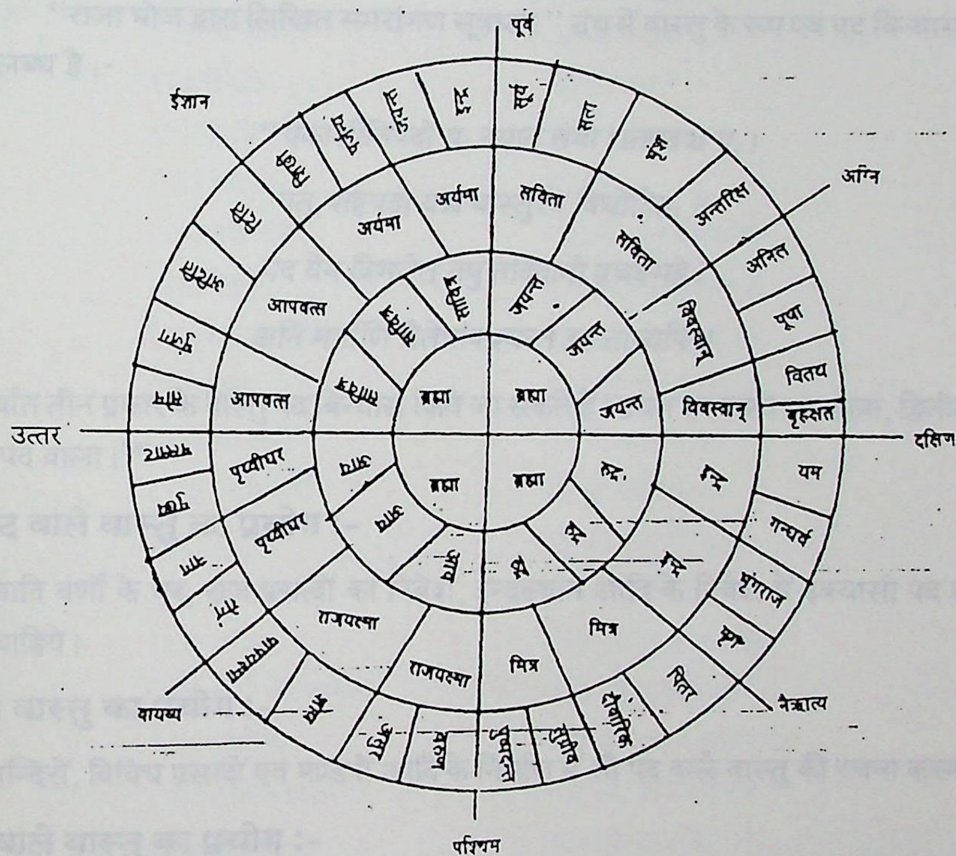


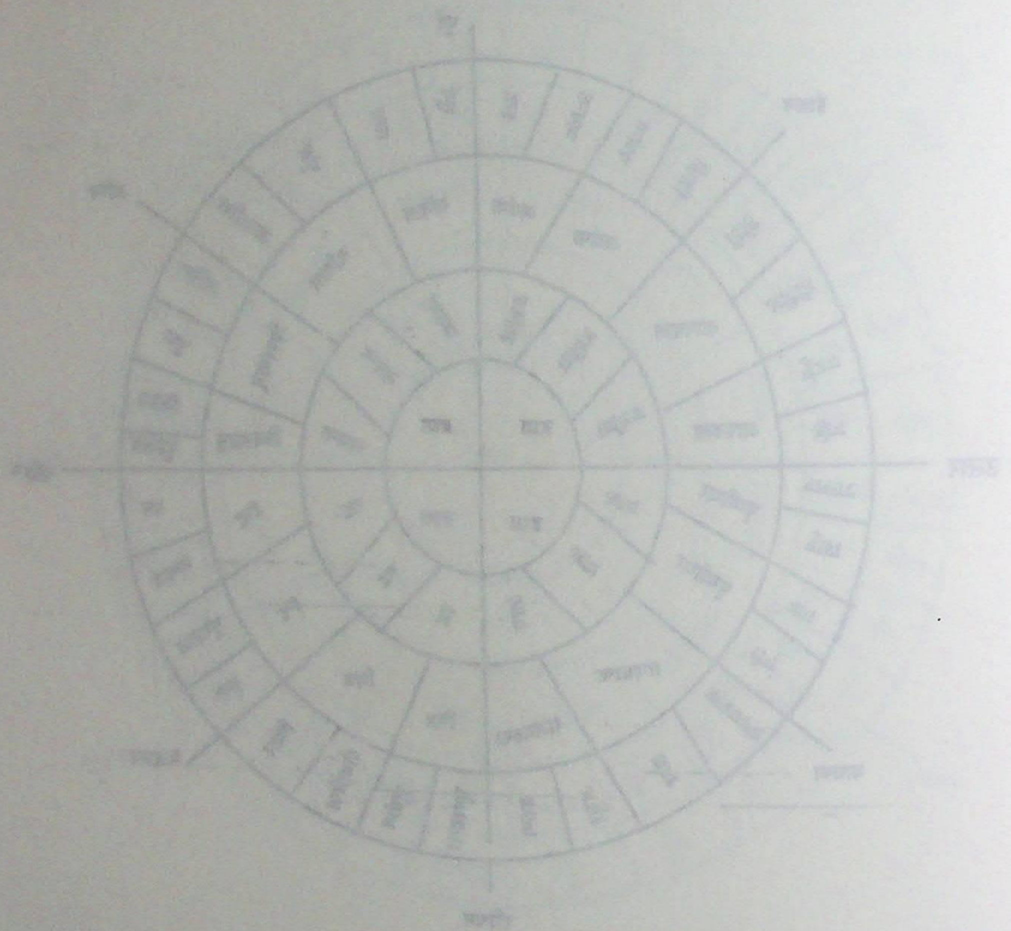
वर्तलाकार चौसंठ पद वास्तु का स्वरूप

बृहत्संहिता अध्याय 53



वर्तलाकार इक्यासी पद वास्तु का स्वरूप
बृहत्संहिता अध्याय 53





2.6.6 वर्तलाकार चौसंठ पद वास्तु का स्वरूप -

वर्तुलाकार वास्तु पद विन्यास हेतु चार समानान्तर संकेन्द्री वृत्तों की रचना करनी चाहिये। बाहरी वृत के 32 भाग, भीतरी के 16 भाग करना चाहिये। तीसरे वृत्त का 12 भाग एवं मध्य के वृत्त का 4 भाग करना युक्ति संगत होता है। केन्द्र में चार पदों में ब्रम्हा जी का स्थान होता है। बाहरी वृत्त में शिखी आदि एक पद के देवता, भीतरी वृत्त में अर्यमा आदि देव जो कि द्विपद में स्थित होते हैं। तीसरे वृत्त में आदि त्रिपद देव रहते हैं।(67)

राजा टोडर मल प्रणीत वास्तु सौख्यम में भी वास्तु पद विन्यास की इसी प्रकार की व्याख्या मिलती है।(68)

''राजा भोज द्वारा लिखित समरांगण सूत्रधार'' ग्रंथ में वास्तु के रूप एवं पद विन्यास पर सारगर्भित जानकारी उपलब्ध है :-

'' एकाशीतिपदो यः स्यात् तथा शतपदश्च यः।

चतुःषष्टिपदो यश्च वास्तुरत्र त्रिधोदितः ॥

पद येन विभजेत् तेषु तदिदानी प्रचक्ष्महे।

अनि मर्माणि चैतेषांकश्यन्त इह तान्यपि ॥

- अर्थात तीन प्रकार के वास्तु पद विन्यास किये जा सकते हैं। प्रथम इक्यासी पद वाला, द्वितीय सौ पद वाला तृतीय चौंसठ पद वाला।(69)

इक्यासी पद वाले वास्तु का प्रयोग :-

ब्रह्मणादि वर्णों के घर, राज प्रसादों का निवेश, इन्द्रस्थान आदि के निवेश में इक्यासी पद वाले वास्तु का प्रयोग करना चाहिये।

सौ पद वाले वास्तु का प्रयोग :-

देव मन्दिरों, विविध प्रसादों एवं मण्डपों आदि के निर्माण में सौ पद वाले वास्तु की रचना करनी चाहिये।

चौंसठ पद वाले वास्तु का प्रयोग :-

राज शिविरों, ग्रामों, खेट, खर्वट एवं नगरों हेतु चौंसठ पदीय वास्तु का प्रयोग करना चाहिये।(70)

---

(67) बृहत्संहिता खण्ड-2/अध्याय 52-श्लोक-49-56 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र /रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(68) वास्तु सौख्यम (राजा टोडर मल्ल विरचित)/अध्याय 1-1/पृ.क्र.3-4/
आचार्य श्री कमलाकान्त शुक्ल/ संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

(69) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम(महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम) /अध्याय 16
श्लोक 1-2 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स , दिल्ली

(70) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम(महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम) /अध्याय 16
श्लोक 1-2 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स , दिल्ली

मानसार के अनुसार 32 प्रकार के वास्तु पद विन्यास का वर्णन किया गया है। बत्तीस प्रकार के वास्तु पुरूष मण्डल क्रमानुसार इस प्रकार हैं।

नाम	वास्तु पद
(1) सकल	एक पद (पद)
(2) पैशाच (पेचक)	चार पद
(3) पीठ	नौ पद
(4) महापीठ	षोडश (सोलह)पद
(5) उपपीठ	पच्चीस पद
(6) उग्रपीठ	छत्तीस पद
(7)स्थण्डिल	उन्चास पद
(8) चंडित	चौंसठ पद
(9) परमशायिका	इक्यासी पद
(10) आसन	सौ पद
(11) स्थानीय	एक सौ इक्कीस पद
(12) देश्य	एक सौ उनहत्तर पद
(13) उभय चंडित	एक सौ उनहत्तर पद
(14) भद्र	एक सौ पच्चीस पद
(15) महासन	दो सौ छप्पन पद
(16) पद्म गर्भ	दो सौ छप्पन पद
(17) त्रियुत	दो सौ नवासी पद
(18) कर्णाष्टक	तीन सौ चौबीस पद
(19) गणित	तीन सौ उनहत्तर पद
(20) सूर्य विशालक	चार सौ पद वाला
(21) सुसंहित	चार सौ इकतालीस पद
(22) सुप्रतिकान्त	चार सौ चौरासी पद
(23) विशालक	पांच सौ उन्तीस पद
(24) विवेश	छः सौ पच्चीस पद
(25)विप्र गर्भ	पांच सौ छिहत्तर पद
(26) विपुल भोग	छः सौ उनतीस पद
(27) विप्र कांत	सात सौ उनतीस पद
(28)विशालाक्ष	सात सौ चौरासी पद
(29) विप्र भक्ति	आठ सौ इकतालीस पद
(30) विश्वेसार	नौ सौ पद

(71) मानसार / अध्याय 7/श्लोक 1 से 25/Architecture Of Mansara By P.K. Acharya / Low Price Publication, Delhi
मानसार (हिन्दी टीका) /शिव वर्मा - शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

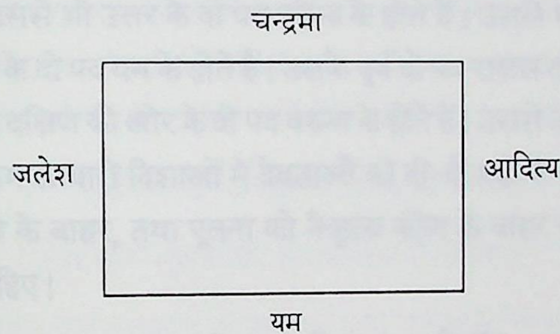
(31) ईश्वरकांत — नौ सौ इकसठ पद
(32) चंद्रकांत — एक हजार चौबीस पद

इस प्रकार 'मानसार' ग्रन्थ में सर्वाधिक बत्तीस प्रकार के वास्तु पद-विन्यास का उल्लेख मिलता है। मानसार की विशेषता यह है कि केवल भवन, शाला ,नगर,मण्डप, ग्राम हेतु ही वास्तु पद विन्यास का विधान नही है अपितु हिन्दू संस्कृति में किये जाने वाले भिन्न-भिन्न आयोजनो में भी किस प्रकार वास्तु पद रचना की जाय इसका भी विधान रखा गया है।[71]

कुछ महत्वपूर्ण पद विन्यासों का विवरण भी उपलब्ध है।

सकल पद विन्यास -

यह एक पद का विन्यास है।



यहां पूर्व दिशा का स्वामी आदित्य है। दक्षिण का स्वामी यम है। पश्चिम दिशा का स्वामी जलेश है एवं उत्तर दिशा का स्वामी चंद्र है।

सकल पद विन्यास का उपयोग देवताओं एवं गुरू की पूजा,हवन व अग्नि कार्य, मतियों के आसन व भोजन हेतु, पितरों की पूजा के लिये सकल पद विन्यास उपयुक्त है।

इसी प्रकार पेचक पद विन्यास गृह पूजा व स्नान के लिये उपयुक्त है।

सारे बत्तीस प्रकार के पद के वास्तु पद विन्यास का वर्णन मानसार में किया गया है। प्रथम (चण्डित) मंडूक एवं द्वितीय परमशायिका। वास्तव में ये दो ही समस्त भवनों के पद विन्यास का आधार है।[72]

मण्डूक पद विन्यास -

मण्डूक पद विन्यास को मेढ़क के आकार का कहा गया है। मण्डूक की रचना के लिये तीस रेखायें अट्ठाईस संधियों से युक्त होती हैं। चारों कोनों को छह और रेखाओं में बांटा जाता है। इस प्रकार तीस संधियां और

---

(72) मानसार / अध्याय 7/ 25 -30/Architecture Of Mansara By P.K. Acharya /
Low Price Publication, Delhi
मानसार (हिन्दी टीका) /शिव वर्मा - शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

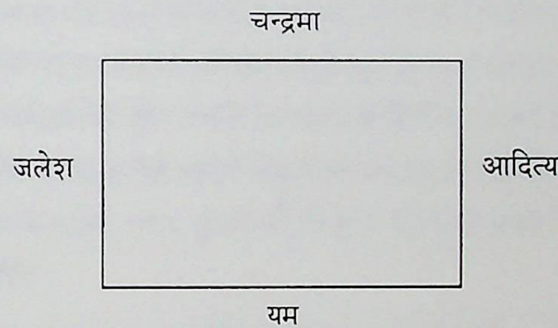
(31) ईश्वरकांत	नौ सौ इकसठ पद
(32) चंद्रकांत	एक हजार चौबीस पद

इस प्रकार 'मानसार' ग्रन्थ में सर्वाधिक बत्तीस प्रकार के वास्तु पद-विन्यास का उल्लेख मिलता है। मानसार की विशेषता यह है कि केवल भवन, शाला ,नगर,मण्डप, ग्राम हेतु ही वास्तु पद विन्यास का विधान नही है अपितु हिन्दू संस्कृति में किये जाने वाले भिन्न-भिन्न आयोजनो में भी किस प्रकार वास्तु पद रचना की जाय इसका भी विधान रखा गया है।[71]

कुछ महत्वपूर्ण पद विन्यासों का विवरण भी उपलब्ध है।

सकल पद विन्यास -

यह एक पद का विन्यास है।



यहां पूर्व दिशा का स्वामी आदित्य है। दक्षिण का स्वामी यम है। पश्चिम दिशा का स्वामी जलेश है एवं उत्तर दिशा का स्वामी चंद्र है।

सकल पद विन्यास का उपयोग देवताओं एवं गुरू की पूजा,हवन व अग्नि कार्य, मतियों के आसन व भोजन हेतु, पितरों की पूजा के लिये सकल पद विन्यास उपयुक्त है।

इसी प्रकार पेचक पद विन्यास गृह पूजा व स्नान के लिये उपयुक्त है।

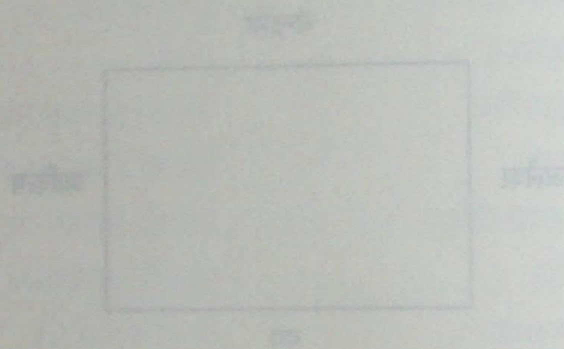
सारे बत्तीस प्रकार के पद के वास्तु पद विन्यास का वर्णन मानसार में किया गया है। प्रथम (चण्डित) मंडूक एवं द्वितीय परमशायिका। वास्तव में ये दो ही समस्त भवनों के पद विन्यास का आधार है।[72]

मण्डूक पद विन्यास -

मण्डूक पद विन्यास को मेढ़क के आकार का कहा गया है। मण्डूक की रचना के लिये तीस रेखायें अठ्ठाईस संधियों से युक्त होती हैं। चारों कोनों को छह और रेखाओं में बांटा जाता है। इस प्रकार तीस संधियां और

---

(72) मानसार / अध्याय 7/ 25 -30/Architecture Of Mansara By P.K. Acharya /
Low Price Publication, Delhi
मानसार (हिन्दी टीका) /शिव वर्मा - शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर



जुड़ जाती हैं। प्रत्येक कोण की चार खूंटियां छह रेखाओं के भागों की बारह संधियों से मिला दी जाती है तथा मध्य का पद आठ संधियों की रेखा से जोड़ दिया जाता है।[73]

देवताओं का विन्यास -

देवताओं के विन्यास के लिये - ईश आदि कोण से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा के क्रम से चार कोण पर अपवत्स, आपवत्स, को आधा-आधा पद, सवित्र, सावित्र को आधा-आधा पद तथा रूद्र-रूद्रजय का आधा-आधा पद होता है। इनके बाहर ईशान कोण में ईशान व पर्जन्य, अग्नि कोण में अग्नि व पूषा, मृश (पितृ) व दौवारिक नैऋत्य कोण में एवं रोग (वायु) व नाग वायव्य कोण में आधा-आधा पद में स्थित होते हैं। जयंत को (उत्तर पूर्व का पार्श्व) का पद,अंतरिक्ष को पूर्व का एक पद, वितथ को पूर्व का एक पद (दक्षिण पूर्व का पार्श्व), मृग को दक्षिण का एक पद, सुग्रीव को दक्षिण का एक पद (दक्षिण पश्चिम दिशा का एक पद)तथा मुख्य को पश्चिम का एक पद (उत्तर-पश्चिम का पार्श्व)तथा उदित को उत्तर दिशा का एक पद देना चाहिये। पूर्वी दिशा में मध्य रेखा के उत्तर के दो पद दिनकर (आदित्य) के होते हैं। उससे भी उत्तर के दो पद महेन्द्र के होते हैं। उससे भी नीचे दो पद भृश के होते हैं। दक्षिण दिशा में मध्य रेखा के पूर्व के दो पद यम के होते हैं। उसके पूर्व दो पद राक्षस तथा पश्चिम के दो पद गन्धर्व के होते हैं। पश्चिम की मध्य रेखा के दक्षिण की ओर के दो पद वरूण के होते हैं। उससे उत्तर के दो पद शोष के तथा रोग के ईश्वर के लिये होते हैं। फिर क्रम से चारो दिशाओं में देवताओं को दो-दो पदों में स्थापित करें। चरकी को ईशान कोण के बाहर, विदारी को अग्नि के बाहर, तथा पूतना को नैऋत्य कोण के बाहर रखना चाहिए। पापराक्षसी को वायव्य कोण के बाहर रखना चाहिए।

इसी प्रकार परमशायिका का पद विन्यास किया जाता है।[74]

मानसार के अध्याय 7 श्लोक 78 से लेकर श्लोक 126 तक समस्त देवताओं के रूप एवं आकृति की विस्तृत विवेचना की गयी है।[75]

मयमतम् ग्रन्थ के अध्याय 7 में वास्तु पद विन्यास का विस्तृत वर्णन है। मानसार के अनुसार ही 32 प्रकार के पद विन्यास यहां भी वर्णित हैं।[76]

2.7 वास्तुशास्त्र एवं ज्योतिष -

---

(73) मानसार / अध्याय 7/ 25 -30/ Architecture Of Mansara By P.K. Acharya / Low Price Publication, Delhi
मानसार (हिन्दी टीका) /शिव वर्मा - शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(74) मानसार / अध्याय 7/ 42 -136/ Architecture Of Mansara By P.K. Acharya / Low Price Publication, Delhi

(75) मानसार / अध्याय 7/ 78 -126/ Architecture Of Mansara By P.K. Acharya / Low Price Publication, Delhi
मानसार (हिन्दी टीका) /शिव वर्मा - शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(76) MAYAMATA / Chap. 7 /Bruno Dagens / SITA RAM BHARTIYA INSTITUTE OF SCIENE & RESEARCH

समस्त विषयों का मूल वेद में समाहित है। वेद पुरूष के छः अंगों में ''ज्योतिष '' को नेत्र का सम्मानित स्थान प्राप्त है। ''वेदाङ्ग ज्यौतिषं चक्षुः''।

वास्तु एवं ज्योतिष का परस्पर सम्बन्ध अन्योनाश्रित है। बिना ज्योतिष का विचार किये कोई भी निर्माण कार्य प्रारम्भ करना सर्वदा अनुचित होता है। वास्तु शास्त्र पर उपलब्ध समस्त प्रामाणिक ग्रन्थों में ज्योतिष पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। मत्स्य पुराण,अग्नि पुराण, समरांगण सूत्रधार मानसार, मयमतम्, विश्वकर्मा प्रकाश आदि ग्रन्थों में गहनता पूर्वक ज्योतिष प्रकरण पर प्रकाश डाला गया है।

2.7.1 गृहारम्भ -

गृहारम्भ हेतु मंगल एवं रविवार रिक्ता (4/9/14),अमावस्या,प्रतिपदा (उपलक्षण से अष्टमी), इनसे रहित तिथि-वारों (2/3/5/6/7/10/11/12/13/15 और चन्द्र,बुध,गुरू,शुक्र,शनि) में चर (1/4/7/10) और सिंह को छोड़ शेष (2/3/6/8/99/11/12) लग्नों में, आठवें तथा 12 वें स्थान को छोड़ अन्य स्थानों में पापग्रहों के रहने पर गृहारम्भ उत्तम होता है। [77]

गृहारम्भ या वास्तुपूजा के विषय में एक बड़ा ही महत्वपूर्ण उद्धारण श्रीमद्बालमीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड के 56 वें.सर्ग में आता है। यह प्रसंग उस समय का है जब भगवान श्री राम लक्ष्मणजी के सहयोग से पर्णशाला का निर्माण करतें हैं। भगवान श्री राम लक्ष्मण जी से कहते हैं :-

''ऐणेयं श्रवयस्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम्।

त्वर सौम्यमुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम्॥

-अर्थात 'लक्ष्मण ! इस गजकन्द को पकाओ। हम पर्णशाला के अधिष्ठाता देवताओं का पूजन करेंगे। जल्दी करो ! यह सौम्य मुहूर्त है और यह दिन भी ध्रुव संज्ञक है अतः इसी में शुभकार्य होना चाहिये। यहां दो बातें महत्व की हैं प्रथम गृहारम्भ के पूर्व अधिष्ठाता देवताओं का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिये। दूसरा पूजन भी सौम्य एवं ध्रुव संज्ञक दिन में ही करना उत्तम होता है।[78]

इस सौम्य मुहूर्त्त एवं ध्रुव संज्ञक दिवस की बड़ी ही अच्छी व्याख्या मुहूर्त्त चिन्तामणी में की गयी है।

उत्तरामय- रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम्।
तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादि सिद्धये॥

अर्थात- उत्तरा नक्षत्र के तीन विभाग उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा,उत्तराभाद्रपद,रोहिणी ये 4 नक्षत्र और रविवार का दिन इन सभी को स्थिर एवं ध्रुव संज्ञक कहा गया है। इनमें स्थिर कार्य यथा जलाशयारम्भ,बीज बोना, गृहारम्भ, शान्तिकर्म, बगीचा लगाना आदि करना सफलतादायक होता है। इस प्रकार यहां श्रीराम का कथन पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। गृहारम्भ हेतु उत्तरा फाल्गुनी,उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद एवं रोहिणी ये चार नक्षत्र तथा रविवार का दिन शुभ होता है।[79]

वास्तु शास्त्र का अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ है मतस्य पुराण। मत्स्य पुराणों में ज्योतिष विषयक मार्गदर्शन किया गया है। मत्स्य पुराण में गृहारम्भ हेतु दिशानिर्देश उपलब्ध हैं। गृहारम्भ हेतु उपयुक्त मासों का वर्णन इस प्रकार है -

---

(77) मुहूर्त चिन्तामणी/अध्याय 12/श्लोक 18 /श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी /चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन वाराणसी
(78) बाल्मीकि रामायण /56 वां सर्ग/श्लोक 25/गीता प्रेस गोरखपुर
(79) मुहूर्त चिन्तामणी/अध्याय 2/श्लोक 2 /श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी /चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन वाराणसी

मास फल गृहारम्भ हेतु :-

(1) चैत्र मास-जो मनुष्य चैत्र के महीने में घर बनवाना प्रारम्भ करता है वह व्यक्ति ग्रस्त होता है।

(2) वैशाख मास - वैशाख मास में गृहारम्भ करने वाले को धेनु एवं रत्न प्राप्त होते हैं।

(3) ज्येष्ठ मास - ज्येष्ठ मास में गृहारम्भ करने वाले गृहस्वामी की मृत्यु हो जाया करती है।

(4) आषाढ़ मास - आषाढ़ मास में गृहारम्भ करने पर नौकार, चाकर एवं रत्नादि की प्राप्ति होती है। पशुओ की भी समृद्धि होती है।

(5) श्रावण मास - इस मास में गृहारम्भ करने पर नौकर - चाकरों की प्राप्ति होती है।

(6) भाद्र पद - भाद्र पक्ष में गृहारम्भ करने पर हानि मिलती है।

(7) आश्विन मास - आश्विन के महीने में गृहारम्भ करने वाले को पत्नी का शोक होता है।

(8) कार्तिक मास :- यह मास उत्तम। इस मास में गृहारम्भ करने वाले को धन-धान्यादि की प्राप्ति होती है।

(9) मार्ग शीर्ष :- इस मास में गृहारम्भ करने पर अन्न की प्राप्ति होती है।

(10) पूस :- पूस मास में गृहारम्भ करने से चोरों का भय सर्वदा लगा रहता है।

(11) माघ :- माघ मास में गृहारम्भ करने से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं, परन्तु अग्नि से भय होता है।

(12) फाल्गुन :- फाल्गुन मास में गृहारम्भ अनेक पुत्रों एवं सुवर्ण की प्राप्ति कराता है।[80]

गृहारम्भ हेतु नक्षत्र विचार -

गृहारम्भ हेतु उत्तम नक्षत्र हैं - '' अश्विनी ,रोहिणी,मूल, तीनों उत्तरा,मृगशिरा, स्वाती,हस्त, और अनुराधा ''।[81]

गृहारम्भ दिवस हैं -

सोमवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्र वार, शनिवार, रविवार,एवं मंगलवार को गृहारम्भ नहीं करना चाहिये।[82]

गृहारम्भ हेतु उत्तम योग -

गृहारम्भ के कार्यो में व्याधात, शूल, व्यतिपात, अतिगण्ड, विष्कम्भ, गण्ड, परिधी एवं वश्र इन योगों में गृहारम्भ वर्जित है।[83]

---

(80) मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अध्याय 253/ श्लोक 1-5/पं. बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(81) मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अध्याय 253 / श्लोक-6 /पं. बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(82) मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अध्याय 253 / श्लोक-7/पं. बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

गृहारम्भ हेतु उचित मुहूर्त -

स्वाती,अनुराधा, ज्येष्ठा, गान्धर्व, अभिजित्, रोहिणी, वैराज और सावित्र इन मुहूर्तों में गृहारम्भ होना चाहिये।[84]

अग्नि पुराण में ज्योतिष मार्गदर्शन एवं ज्योतिष विषय पर चर्चा की गयी है :-

चैत्र,ज्येष्ठ,भाद्रपद, आश्विन, पौष, तथा माघ को छोड़कर अन्य मासों में गृहारम्भ करना शुभ है। उत्तम नक्षत्र यहां भी मत्स्य पुराण की ही भांति वर्णित हैं। बावली खोदवाने तथा मकान बनवाने में रविवार और मंगलवार वर्जित है। सिंह राशि पर गुरू होने पर,धेनु और मीन राशि पर सूर्य, मलमास में और शुक्र के बाल, वृद्ध तथा अस्त होने पर गृह कार्य नहीं करना चाहिये। गृहप्रवेश हेतु उत्तम नक्षत्र हैं ''धनिष्ठा,तीनों उत्तरा तथा शतभिषा।[85]

विश्वकर्मा प्रकाश में गृहारम्भ हेतु उचित मास, नक्षत्र आदि पर मार्गदर्शन किया गया है। भिन्न-भिन्न मासों में गृह निमार्ण के फल इस प्रकार हैं :-

चैत्रः- जो मनुष्य चैत्र में नवीन गृह को बनवाता है वह व्याधि को प्राप्त होता है।

वैशाखः- धन प्राप्ति एवं रत्न प्राप्ति।

ज्येष्ठ :- ज्येष्ठ में गृहारम्भ मृत्यु कारक होता है।

आषाढ़ :- यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि विश्वकर्मा प्रकाश में आषाढ़ में गृहारम्भ भृत्य एवं रत्नों को प्राप्ति बताता है जबकि पशुओं की हानि। इसके विपरीत मत्स्य पुराण में '' नौकर-चाकर एवं रत्न '' की प्राप्ति के साथ ही पशुओं की समृद्धि भी बताया गया है।

श्रावण :- श्रावण मास में गृहारम्भ करने से मित्र को लाभ होता है।

भाद्रपद :- भाद्रपद में गृहारम्भ हानि कारक होता है ।

आश्विन :- मास में गृहारम्भ युद्ध कारक होता है।

कार्तिक :- मास में धनधान्य की प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्ष :- मार्गशीर्ष मास में गृहारम्भ करने से धन की प्राप्ति होती है।

पौष :- पौष मास में गृहारम्भ करने पर चोरों से भय होता है।

माघ :- माघ मास में गृहारम्भ करने से अग्नि का भय होता है।

फाल्गुन :- फाल्गुन मास में गृहारम्भ हर प्रकार से उत्तम कहा गया है। इस मास में गृहारम्भ करने पर लक्ष्मी एवं वंश की वृद्धि होती है।[86]

---

(83) मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अध्याय 253 / श्लोक 7-8/पं. बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(84) मत्स्य पुराण/उत्तर भाग/अध्याय 253 / श्लोक 8-9/पं. बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(85) अग्नि पुराण पूर्वभाग/अध्याय 121/श्लोक 37/अग्नि पुराणम् पूर्व भाग / अध्याय 105 /श्लोक 14-16 / तारिणीश झा / डॉ. घनश्याम त्रिपाठी -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

विश्वकर्मा प्रकाश में भिन्न-भिन्न राशियों पर सूर्य के प्रभाव का फलों का भी वर्णन किया गया है :-

मेष :- मेष राशि पर सूर्य होने पर गृहारम्भ शुभदायी होता है।

मिथुन :- मिथुनराशि पर सूर्य होने से गृहारम्भ मृत्यु कारक होता है।

कर्क :- कर्क राशि पर सूर्य होने से वह सुखकारक होता है।

सिंह :-सिंह राशि का सूर्य होने से भृत्यों की विशेष कर वृद्धि होती है।

कन्या :- कन्या राशि का सूर्य रोग कारक होता है।

तुला :- तुला राशि का सूर्य होने पर गृहारम्भ सुख का दाता होता है।

वृश्चिक :- वृश्चिक राशि पर सूर्य होने से धन धान्य की वृद्धि होती है।

धनु :- धनु राशि का सूर्य महाहानि कारक होता है।

मकर :- मकर राशि पर सूर्य होने से धन का आगमन होता है।

कुम्भ :-कुम्भ राशि का सुर्य रत्नों का लाभ कराता है।

मीनः- मीन राशि पर सूर्य होने से गृहारम्भ करने पर भयानक स्वप्न आते हैं।[87]

ग्रहों की स्थिति के अनुसार भी गृहारम्भ विषय पर विचार किया गया है :-

जब 'गुरू' व 'शुक्र' ग्रह बलवान हों तो ब्राम्हणों को गृहारम्भ करना चाहिये। 'सूर्य' और 'मंगल' ग्रह बलवान हों तो क्षत्रियों को गृहारम्भ करना चाहिये। 'चन्द्र' और 'बुध' के बलवान होने पर वैश्यों को गृहारम्भ करना चाहिये। 'शनि' के बलवती होने पर शूद्रों को गृहारम्भ होना चाहिये। 'सूर्य' और 'चन्द्र' का बलवान होना सभी राशियों के लिये उत्तम होता है। विषम राशि का 'सूर्य' होने से गृहस्वामी को पीड़ा होती है। विषम राशि का 'चन्द्र' होने से स्त्री को पीड़ा होती है। विषम राशि का 'शुक्र' होने से लक्ष्मी का नाश होता है। जबकि विषम राशि का 'बृहस्पति' सुख - सम्पदा का नाश करने वाला होता है। विषम राशि का 'बुध' हो तो पुत्र - पौत्रों का नाश होता है। विषम राशि का 'मंगल' हो तो भाई - बांधवों को पीड़ा होती है। विषम राशि का 'शनि' हो तो दास वर्ग पीड़ित होता है।

अतः'सूर्य' के बलवान होने पर ही गृहारम्भ करना चाहिये। रविवार, मंगलवार, षष्ठी तिथि, भद्रा, व्यतिपात, वैधृति में एवं मास दग्ध, वारदग्ध, नक्षत्र सदैव गृहारम्भ हेतु वर्जित हैं।[88]

समरांगण - सूत्रधार में भी वास्तु विनिवेश में ज्योतिष प्रकरण पर सविस्तार चर्चा की गयी है। गृहारम्भ हेतु शुभ तिथि, वार, लग्न आदि का विवेचन करना आवश्यक है। शुभ मास के शुक्ल पक्ष में शुभ दिन में गृहारम्भ करना चाहिये। भिन्न - भिन्न मासों में गृहारम्भ का फल भी वर्णित है। समरांगण - सूत्रधार के अनुसार गृहारम्भ की शुभ तिथियां हैं - द्वितीया, पंचमी, सप्तमी, नवमीं, त्रयोदशी। सूर्य एवं चन्द्र ग्रहों का बल एवं उनकी

---

(86) विश्वकर्मा प्रकाश/अध्याय-2/श्लोक-17-20 तक/ खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई

(87) विश्वकर्मा प्रकाश/अध्याय 2/श्लोक- 20 से 23 तक / खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई

(88) विश्वकर्मा प्रकाश/अध्याय-2/श्लोक-17-20 तक/ खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई

(89) विश्वकर्मा प्रकाश/अध्याय-2/श्लोक-28-32 तक/ खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई

अनुकूलता गृहारम्भ में विचारणीय विषय हैं। इसी प्रकार भिन्न - भिन्न मास में गृहारम्भ करने पर उसके फलों का वर्णन किया गया है।[90]

विभिन्न दिशाओं में गृहनिर्माण की अनुकूलता -

पश्चिम मुख घर - शुक्ल पक्ष ,शुभ लग्न और कन्या, तुला और वृश्चिक में सूर्य स्थित होने पर पश्चिम मुख घर शुभ होता है। ऐसा नहीं होने पर वह घर शून्य होता है।

दक्षिण मुख घर - कुम्भ, मृग और धनु में सूर्य स्थित होने पर दक्षिण मुख घर का निर्माण नहीं करना चाहिये। इस प्रकार का आवास निश्फल होता है और राजा से दण्ड का भागी होता है।

पूर्वाभिमुख (प्रांगमुख) घर - मीन, वृष और मेष में सूर्य स्थित होने पर प्रांगमुख भवन का निर्माण नहीं करना चाहिये। इस प्रकार का आवास धन का नाश करने वाला होता है और झगड़ा,नृप और चोरों के द्वारा पीड़ादायी होता है।

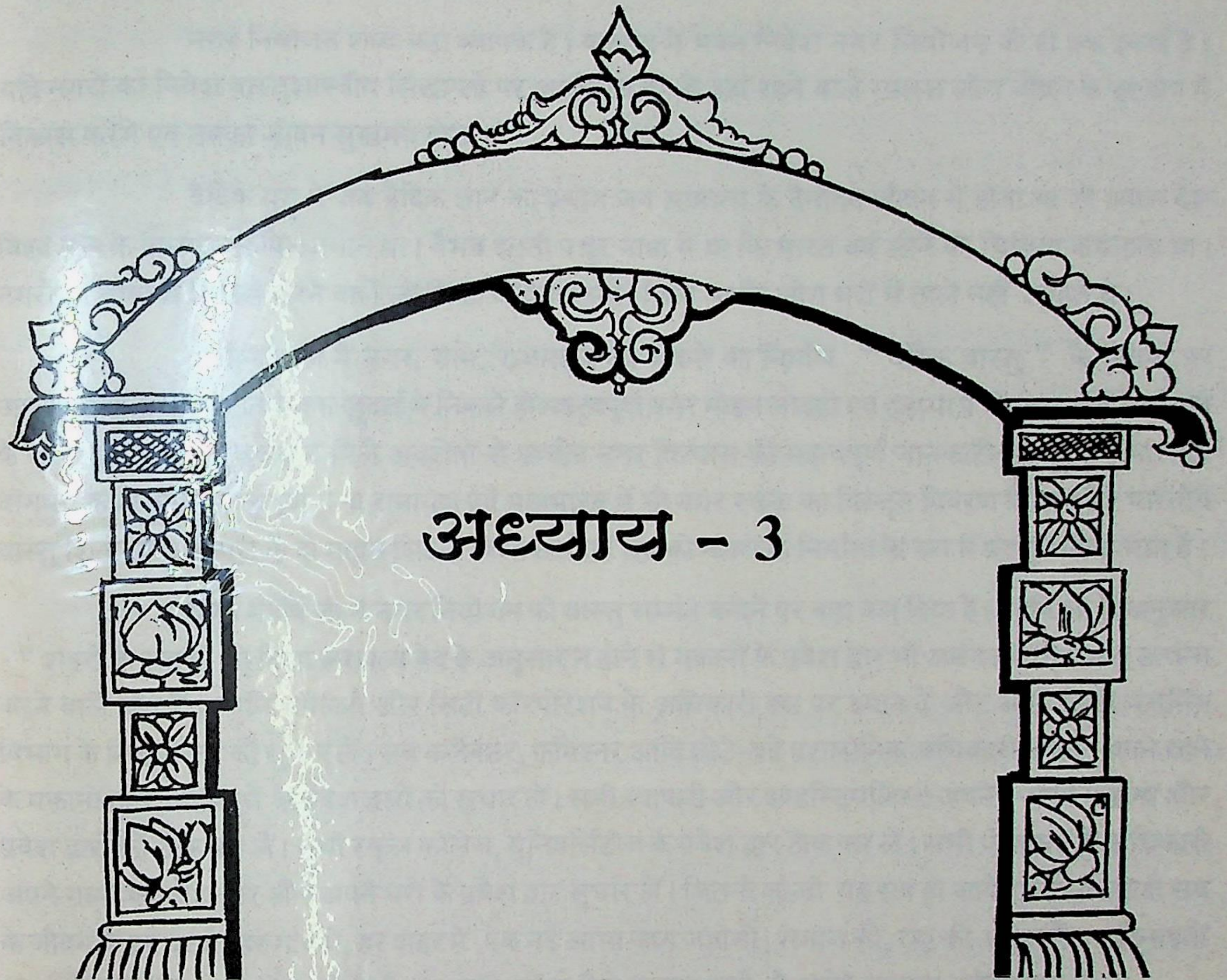
उत्तर मुख भवन - मिथुन, सिंह और कर्क में सूर्य के स्थित होने पर उत्तर मुख भवन का निर्माण नहीं करना चाहिये। इस प्रकार का आवास दरिद्रता और चरणदासता देने वाला होता है।[91]

ज्योतिष एवं वास्तु का अन्योनाश्रित सम्बन्ध है अत: वास्तु - शास्त्र के समस्त ग्रन्थों में विविध प्रयोजनों हेतु ज्योतिष विषयक मार्गदर्शन किया गया है।

---

(90) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम(महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम) /अध्याय 12 श्लोक 1-5 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स , दिल्ली

(91) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम(महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम) /अध्याय 12 श्लोक 1-8 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स , दिल्ली



वैदिक वास्तु शास्त्र और आदर्श नगर नियोजन





वैदिक वास्तु शास्त्र और आदर्श नगर नियोजन



3. वैदिक वास्तु शास्त्र और आदर्श नगर नियोजन

3.1 प्रस्तावना -

नगर नियोजन शब्द बड़ा व्यापक है। वास्तव में भवन निवेश नगर नियोजन की ही एक इकाई है। यदि नगरों का निवेश वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित हो तो वहां रहने वाले समस्त लोग जीवन के हर क्षेत्र में विकास करेंगे एवं उनका जीवन सुखमय होगा।

वैदिक युग में जब वैदिक ज्ञान का प्रयोग जन सामान्य के दैनंदिन जीवन में होता था तो हमारा देश विश्व गुरू के आसन पर विराजमान था। वैभव इतनी प्रचुर मात्रा में था कि भारत वर्ष सोने की चिड़िया कहलाता था। नगरों या ग्रामों में निवास करने वाले लोगों का जीवन इतना संपन्न था कि लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे।

प्राचीन काल में नगर, ग्राम, राजमहल एवं भवनों का निर्माण " वैदिक वास्तु " के नियमों पर आधारित होता था। पुरातात्विक खुदाई में निकले दो महत्वपूर्ण नगर मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा प्रचीनतम नगर नियोजन के ज्वलंत प्रमाण हैं। खुदाई में मिले अवशेषों से प्राचीन नगर विन्यास की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। भारतीय वांगमय के दो अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ रामायण एवं महाभारत में भी नगर रचना का विस्तृत विवरण मिलता है। भारतीय वास्तु शिल्प की परम्परा के दो महान शिल्पी विश्वकर्मा एवं मय को नगरों के निर्माता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

पूज्य महर्षि जी नें नगर नियोजन को वास्तु सम्मत बनाने पर बड़ा बल दिया है। महर्षि जी के अनुसार - " शहरों के सड़कों की दिशा स्थापत्य वेद के अनुसार न होने से मकानों के प्रवेश द्वार भी अमंगलकारी प्रभाव उत्पन्न करने वाले होते हैं। म्युनिसिपैलटी और सिटी कॉरपोरेशन के अधिकारी इस पर ध्यान दें और अपने सिटी प्लानिंग विभाग के सिद्धान्तों को सुधार लें। सब कलेक्टर, कमिश्नर आदि छोटे-बड़े प्रशासनिक अधिकारी अपने -अपने रहने के मकानों और आफिसों के प्रवेश द्वारों को सुधार लें। सभी व्यापारी और इण्डस्ट्रियलिस्ट अपने - अपने मकानों और प्रवेश द्वारों को ठीक कर लें। सभी स्कूल कॉलेज, यूनिवर्सिटीज के प्रवेश द्वार ठीक कर लें। सभी पंचायतों के अधिकारी अपने ग्रामों के प्रवेश द्वार और अपने घरों के प्रवेश द्वार सुधार लें। जितनी जल्दी यह सब हो जायेगा उतनी जल्दी सब के जीवन में,हर घर में, हर गांव में, हर शहर में ,एक नई आभा जाग जायेगी। समाज की, राष्ट्र की अनेकानेक कठिनाइयों का, अनेकानेक समस्याओं का ऐसे ही पता नहीं लगेगा जैसे प्रकाश आने से अंधेरे का पता नहीं लगता।" (1)

अग्नि पुराण में '' नगरादि वास्तु कथनम ''अध्याय क्र.106 में नगर नियोजन पर बड़ी प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध है।

'' नगरादिकवास्तुं च वक्ष्ये राज्यादिवृद्धये। योजनं योजनार्धं वा तदर्थं स्नान काश्रयेत् ॥

अभ्यर्च्य वास्तुनगरं प्राकाराठ्यं तु कारयेत्। ईशादि त्रिशत्पदके पूर्वद्वारं च सूर्यके ॥

गन्धर्वभ्यां दक्षिणे स्याद्वारूणे पश्चिये तथा। सौम्यद्वारं सौम्यपदे कार्या दृटटास्तु विस्तारा: ॥

येनेभादि सुखं गच्छेत्कुर्याद्द्वारं तुषट्करम। छिन्नकर्ण विभिन्नं च चन्द्रार्धाभं पुरंन हि॥ ''

- गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो इन चार श्लोकों में नगर वास्तु पर मान लक्षण, द्वार नियोजन, नगरों का आकार, मार्ग विन्यास आदि सभी पर प्रकाश डाला गया है।

---

(1) महर्षि महेश योगी वैदिक वि.वि.विशेषताएं- पृ. क्र. 116-124.

नगर को बसाने के लिये चार कोस, दो कोस या एक कोस तक का स्थान चुनना चाहिये। वहां नगर वास्तु देव की पूजा करके परकोटा खिचवा देना चाहिये। पूर्व दिशा का द्वार, जिसके साथ ईशादि देवताओं के तीस पद रहेंगे सूर्य पद के सम्मुख होना चाहिये। दक्षिण दिशा का द्वार गन्धर्व पद में रहना चाहिये।

पश्चिम दिशा का द्वार वरूण पद में रहना चाहिये। उत्तर दिशा का द्वार सोम पद में रहना चाहिये। नगर में बड़े-बड़े हाट-बाजार होने चाहिये। नगर में छः हाथ चौड़े तथा इतने बड़े-बड़े द्वार बनवाने चाहिये जिनमें हाथी आदि भी सरलता से प्रवेश कर जायें। नगर को सुचारू रूप से बसाना चाहिये न कि तितर बितर। नगर का आकार अर्धचन्द्र जैसा नहीं होना चाहिये। वह नगर जिसका आकार बज्रसूचि के सदृश हो तथा जिसमें दो तीन मार्गों से आवागमन हो सके, अशुभ माना जाता है। जिस नगर का अग्रभाग धनुष या वज्रवाग के समान हो, वह शान्तिकारक हुआ करता है। यहां यह विचारणीय है कि वैदिक काल में भारत वर्ष में नगर सभ्यता विकास के चर्मोत्कर्ष पर थी। हमारा वैदिक ज्ञान नगर नियोजन के विषय पर सुव्यवस्थित प्रकाश डालता है। [(2)]

इसी प्रकार समरांगण सूत्रधार में उल्लेख है :-

नगरं मन्दिरं दुर्गं पुष्करं साम्परामिकम्। निवासः सदनं सद्मं क्षयःक्षितिलयस्यतथा॥

नगर, मन्दिर, दुर्ग, पुष्कर और साम्परायिक, निवास, सदन, सद्म, क्षय और क्षितिलय- ये सभी नगर के पर्याय हैं, जिनसे नगर का विकास परिलक्षित होता है। [(3)] भारतीय परम्परा में नगर, कस्बा, ग्राम, जनपदों आदि का विन्यास अति प्राचीन है। वास्तु शास्त्र के प्राचीनतम ग्रन्थों यथा अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, भविष्य महापुराण, बृहत्संहिता, समरांगण सूत्रधार, मानसार, मयमतम् आदि में नगर नियोजन के विषय पर प्रमुखता से विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

श्री द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल लिखते हैं :-

It is therefore not very difficult to surmise that the town planning in ancient india is of a hoary antiquity. Our civilization clearly had recognised both the ways of life, the spiritual, realization & the material cultivatian.

अर्थात '' भारत वर्ष में नगर न्यास की परम्परा अति प्राचीन है। भारतीय सभ्यता अति प्राचीन है। भारतीय सभ्यता मनुष्य के जीवन में दोनो ही मार्गों का पथ प्रदर्शन करती है। प्रथम- आध्यात्मिक तथा द्वितीय भौतिक। इस प्रकार नगरों, ग्रामों का निर्माण इस प्रकार होना चाहिये कि वहां रहने वाले लोगों का आध्यात्मिक व भौतिक दोनों प्रकार से विकास हो सके। [(4)]

3.2 नगर नियोजन हेतु वास्तु पद विन्यास -

नगर नियोजन करने हेतु सर्वप्रथम वास्तु पद विन्यास करना चाहिये। इसके उपरांत हर कोष्ट में अवस्थित देवताओं की आराधना करके बलि कर्म करना चाहिये। नगर नियोजन हेतु वास्तुपद विन्यास का विस्तृत

---

(2) अग्नि पुराणम्/पूर्व भाग /अध्याय 106 / श्लोक 1-4-तारिणीश झा / डॉ. घनश्याम त्रिपाठी -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(3) समरांगण सूत्रधार/ अध्याय 22 / श्लोक 1/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली

(4) Hindu Science of Architecture, Part II/ chapter 1/D.N. Shukla/Munshi Ram Manohar Lal, Delhi

वर्णन अग्नि- पुराण के अध्याय 93 मे प्रस्तुत किया गया है। यदि गृह तथा नगर आदि की स्थापना करनी हो तो इक्यासी प्रकोष्ठ वाले वास्तुमण्डप की रचना करनी चाहिये। वहां कोण स्थित तीन कोष्ठों तथा विकोण स्थित छः कोष्ठों में रस्सियां बांधनी चाहिये। ईश आदि देवताओं को एक कोष्ठ, नाग आदि को दो कोष्ठ,मरीची आदि को छः कोष्ठ और ब्रम्हा को नौ कोष्ठ अर्पित करना चाहिये।

यदि नगर (महानगर) ग्राम तथा खेट आदि की प्रतिष्ठा करनी हो तो सौ कोष्ठ वाले वास्तु का विधान करना चाहिये। वहां दुर्जय तथा दुर्धर नामक दो बांसों को कोने में गाड़ना चाहिये।

यहां भी गृहादि वास्तु की तरह न्यास करना चाहिये। वहां ग्रहों तथा स्कन्द आदि राक्षसियों को पांच कोष्ठ प्राप्त होने चाहिये। यदि देश की प्रतिष्ठा करनी हो तो चौंतीस सौ कोष्ठ वाले वास्तु का विधान करना चाहिये। देश के नियोजन में ब्रम्हा को चौंसठ कोष्ठ, मरीचि राक्षसियों को भी स्कन्द आदि के बराबर ही कोष्ठ प्राप्त होने चाहिये। यहां भी पूर्व की ही भांति रस्सी तथा बांस आदि की स्थापना करनी चाहिये। परन्तु यहां नगर नियोजन की अपेक्षा नव गुने बार अधिक न्यास करना चाहिये। चिति की स्थापना में पच्चीस कोष्ठों में विभक्त मण्डल को वैताल कहा जाता है। अन्य प्रकार के मण्डल क्रमशः नौ और सोलह कोष्ठों में विभक्त रहा करते हैं। त्रिकोण, षट्कोण और चक्र के अन्दर चतुष्कोण का निर्माण करना चाहिये। ब्रम्ह शिला की भांति इसके चारो ओर किये गये उत्खनन में भी न्यास करना चाहिये। सभी देवताओं को खीर का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। यदि वास्तु की माप का कोई नियम निर्दिष्ट नहीं किया गया हो तो पांच हाथों का माप रखना चाहिये। गृह और प्रासाद के बराबर का माप रखना वास्तु के लिये सर्वदा उत्तम है। [5]

इस प्रकार ग्राम, नगर, महानगर अथवा देश जिसकी भी रचना करनी हो उसके अनुरूप वास्तु पद विन्यास करके विधिवत् योजना बनानी चाहिये। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ मानसार में भी नगर नियोजन की योजना पर प्रकाश डाला गया है।

" प्रथमं ग्राम मानं च द्वितीयं पद (ढ़ं) विन्यसेत्।

तृतीयं तद्वलिं दत्वा चतुर्थं ग्राम (मं)विन्यसेत॥

पञ्चमं गृह (हं)विन्यस्य तत्र गर्भ विनिक्षियेत्।

षष्टं गृह प्रवेशं च तन्मानमधुनोच्यते॥"

- अर्थात सर्वप्रथम ग्राम / नगर का मापन कर लेना चाहिये, उसके पश्चात् पदविन्यास करना चाहिये,फिर बलि अर्पित करना चाहिये, तदुपरान्त ग्राम अथवा नगर का विन्यास करना चाहिये। अगले क्रम में गृह विन्यास करना चाहिये उसके पश्चात शिलान्यास करना चाहिये। इन सबके उपरान्त अन्तिम चरण में गृह-प्रवेश करना चाहिये। [6]

3.3 नगर नियोजन हेतु उपयुक्त भूमि -

समरांगण सूत्रधार नामक ग्रन्थ में नगर नियोजन किस प्रकार की भूमि में करना उचित होता है इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। पुर (नगर)निर्माण के लिये स्निग्ध ,सार वाली,शुद्ध,दक्षिण की ओर जलाशयों से

---

(5) अग्नि पुराणम् पूर्वभाग / अध्याय 93/श्लोक-36 -42/तारिणीश झा /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(6) मानसार अध्याय 9 / श्लोक 3-4 /मानसार (हिन्दी टीका)शिव वर्मा, शोभा वर्मा /स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

युक्त,पानी की बहुतायत वाला,घने वृक्षों से ढ़का एवं जिसकी ढ़ाल पूर्व की ओर हो ऐसी भूमि नगर नियोजन के लिये उपयुक्त होती है। साथ ही ऐसी भूमि में -दूब,औषधियां,मूंज,कुरून्द,कुश,स्वादु व स्वच्छ जल के जलाशय,वास्तु यज्ञों,देव मंदिरों,बगीचों आदि की बहुतायत होनी चाहिये। भूमि इस प्रकार की होनी चाहिये जहां वाहन आदि सुखपूर्वक चल सकते हों और मिथुनों के लिये जहां रतिप्रद स्थान हों। इस प्रकार की भूमियों पर नगर, ग्राम,पुर आदि का निवेश हर प्रकार से उचित होता है।[7]

3.4 भूमि शोधन

किसी भी विन्यास या नियोजन के पूर्व भूमि की शुद्धि कर लेना चाहिये। नगर, ग्राम, दुर्ग, गृह और प्रासाद के लिये निर्धारित भूमि का संशोधन भूमि को खोदकर,वहां पर गोष्ठ बनाकर तथा बार-बार उसे जोत कर लेना चाहिये। मण्डप में द्वार-पूजा,हवन आदि कर्म करके एक हजार बार अघोरास्न्त्र-मन्त्र का जप करना चाहिये। भूमि को समतल करके,लीप - पोत के दिशा की शुद्धि करनी चाहिये। सोना दही तथा अक्षत से रेखा खींच कर मध्य में ईशान कोण में स्थित पूर्ण कुम्भ के ऊपर शिव का पूजन करना चाहिये।[8]

3.5 विविध वैदिक ग्रन्थों में नगर नियोजन

3.5.1 अग्नि पुराण

अग्नि पुराण में वास्तु शास्त्र के लगभग समस्त विषयों पर सारगर्भित जानकारी सन्निहित है। नगर नियोजन विषय पर भी व्यापक प्रकाश डाला गया है। नगर को बसाने के लिये चार कोस,दो कोस या एक कोस तक का स्थान चुनना चाहिये। नगर निर्माण से पूर्व वास्तुदेव की पूजा करके परकोटा खिंचवा देना चाहिये।

3.5.1.1 नगर में द्वार व्यवस्था

नगर में प्रवेश हेतु चार दिशाओं में चार मुख्य द्वारों का निर्माण होना चाहिये।

पूर्व दिशा का द्वार : पूर्व दिशा का द्वार सूर्य पद के सम्मुख होना चाहिये जिसमें ईशादि देवताओं के तीस पद रहेंगे।

दक्षिण दिशा का द्वार : दक्षिण दिशा का द्वार गन्धर्व पद में रहना चाहिये।

पश्चिम दिशा का द्वार : पश्चिम दिशा का द्वार वरूण पद में होना चाहिये।

उत्तर दिशा का द्वार : उत्तर दिशा का द्वार सोम पद में होना चाहिये।

नगर का नियोजन उचित प्रकार से होना चाहिये। नगर में बड़े - बड़े हाट बाजारों की व्यवस्था होनी चाहिये। नगर के प्रवेश द्वार छः हाथ चौड़े तथा इतने बड़े होने चाहिये ताकि हाथी आदि सुगमता से प्रवेश कर जायें।

---

(7) समरांगण सूत्रधार अध्याय 10 / श्लोक 40-43 /द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली

(8) अग्नि पुराणम्/पूर्व भाग /अध्याय 92 / श्लोक 10-11/तारिणीश झा/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

3.5.1.2 नगर में अशुभ स्थितियाँ

नगर का आकार अर्धचन्द्र जैसा नहीं होना चाहिये। वह नगर जिसमें दो तीन तरफ से आवागमन हो सके तथा जिसका आकार वज्रसूची के समान हो अशुभ होता है।

जिस नगर का अग्रभाग धनुष या वज्रनाग के समान हो वह शान्तिकारक हुआ करता है। नगर निर्माण के पूर्व विष्णु,शंकर तथा सूर्यदेव का पूजन करके बलि अर्पित करनी चाहिये।

3.5.1.3 नगर की वसति योजना

नगर नियोजन से पूर्व सम्पूर्ण क्षेत्र को विविध हिस्सों में विभक्त कर लेना चाहिये। अलग अलग वर्णो के लोगों,विविध व्यवसाय करने वाले लोगों को उनके लिये निर्धारित क्षेत्रों में बसाना चाहिये। नगर में हाट बाजार, आयुध भण्डार,उद्योग - धंधे आदि भी शास्त्रानुसार नियत स्थानों में ही स्थापित करने चाहिये। जब नगर का विन्यास सुव्यवस्थित होता है तो नगर एवं नगर में निवास करने वाले लोगों का चहुंमुखी विकास होता है।

दक्षिण - पूर्व भाग -

नगर के दक्षिण पूर्व भाग में स्वर्णकारों एवं लोहारों को बसाना चाहिये।

दक्षिण भाग -

नगर के दक्षिणी भाग में वैश्यालयों एवं नर्तकियों को बसाना चाहिये।

दक्षिण - पश्चिम भाग -

नगर के दक्षिणी पश्चिमी भाग में नट ,भांट ,मल्लाह आदि जातियों को बसाना चाहिये।

पश्चिम भाग -

रथ,आयुध तथा तलवार चलाने वालों को नगर के पश्चिम भाग में स्थान देना चाहिये।

पश्चिमोत्तर भाग -

कलाकारों,राज्य के कर्मचारियों,अधिकारियों को नगर के पश्चिमोत्तर भाग में बसाना चाहिये।

उत्तर दिशा -

नगर के उत्तरी भाग में ब्राम्हणों,यतियों,सिद्धों एवं तपस्वियों का स्थान होना चाहिये।

पूर्व - उत्तर भाग -

फल तथा अन्य खाद्य पदार्थ बेचने वालों का स्थान नगर के पूर्वोत्तर भाग में होना चाहिये।[9]

पूर्व भाग -

पूर्व दिशा में सेनापतियों एवं गुप्तचरों का वास होना चाहिये।

इसी प्रकार विविध प्रकार की सेना को दक्षिण पूर्व की ओर,अन्तःपुर के अध्यक्षों को दक्षिण दिशा में

(9) अग्नि पुराणम्/पूर्व भाग /अध्याय 106 / श्लोक 1-13/तारिणीश झा/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

तथा *काण्डार नामक जनजाति* को दक्षिण की ओर बसाना चाहिये। प्रधान सचिवों, कोश रक्षकों तथा शिल्पियों को पश्चिम दिशा में बसाना चाहिये। ब्राम्हणों को उत्तर दिशा में बसाना चाहिये। क्षत्रियों को पूर्व दिशा में तथा वैश्यों को दक्षिण दिशा में तथा शूद्रों को पश्चिम दिशा में बसाना चाहिये।

इस तरह वर्णानुसार नगर के विविध क्षेत्रों में लागों को बसाना चाहिये।

श्मशान -

नगर के दक्षिणी भूभाग में श्मशान घाट स्थापित करना चाहिये।

गौशाला -

नगर के पश्चिमी भूभाग में गौशाला का निर्माण करना चाहिये।

किसान -

नगर के उत्तरी भूभाग में किसानों को स्थान देना चाहिये।

म्लेच्छ -

म्लेच्छों को नगर के चारो कोनों पर बसाना चाहिये।[10]

3.5.1.3 नगर में देव प्रतिमाओं एवं देवालयों की स्थिति -

न्यसेन्मूलेच्छांश्च कोणेषु ग्रामादिषु स्थितिम।
श्रियं वैश्रवणं द्वारि पूर्वे तौ पश्यतां श्रियम्॥

देवादीनां पश्चिमतः पूर्वास्यानि ग्रहाणि हि।

पूर्वतः पश्चिमास्यानि दक्षिणे चोत्तराननाम्॥

नाकेशविष्णवादिधामानि रक्षार्थं नगरस्य च।

निर्देवतं तु नगर ग्राम दुर्ग गृहादिकम॥

अर्थात - नगर के पूर्वी द्वार के दोनो ओर लक्ष्मी तथा कुबेर की मूर्तियों को आमने सामने स्थापित करना चाहिये। नगर की रक्षा हेतु ब्रम्हा, विष्णु, महेश की मूर्तियों की भी स्थापना करनी चाहिये।

जिस नगर में देव प्रतिमाओं की स्थापना नहीं की जाती वहां पिशाच आदि निवास करने लगते हैं। ऐसे स्थानों पर रोग आदि का आक्रमण होता रहता है। जिस नगर में विधिपूर्वक देव प्रतिमाओं की स्थापना की जाती है वे नगर विजय, भोग, विलास एवं मोक्षकारक होते हैं।[11]

3.5.2 मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण में नगर नियोजन पर तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध हैं। मनुष्यों ने सर्वप्रथम पर्वतों, गुफाओं, वृक्षों एवं शत्रुओं से रक्षा के लिए दुर्गम स्थानों को अपना आवास बनाया। सभ्यता के विकास क्रम में लोगों

(10) अग्नि पुराणम्/पूर्व भाग /अध्याय 106 / श्लोक 1-13/तारिणीश झा/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(11) अग्नि पुराणम्/पूर्व भाग /अध्याय 106 / श्लोक 14-17/तारिणीश झा/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

ने अपने रहने के लिए पुर, खेट, द्रोणी मुख, शाखा नगर खर्वट, उमी आदि का निर्माण किया। तत्पश्चात् इनमें ग्रामों, गोशाला आदि की व्यवस्था कर पृथक-पृथक निवास बनाये गये। विविध प्रकार के नगरों का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है :

पुर -

वह स्थान जिसके चारों ओर ऊँची चहारदिवारी हो, जो खाइयों से घिरा हो, जिसकी लंबाई दो कोस और चौड़ाई उसका आठवां भाग हो वह पुर कहलाता है। उसके पूर्व व उत्तर में जल का प्रवाह होना अति उत्तम है। पुर से बाहर निकलने के लिए शुद्ध बांस का पुल होना चाहिए।

खेट -

वह नगर जिसकी लंबाई-चौड़ाई पुर की लंबाई-चौड़ाई की आधी हो वह खेट कहलाता है।

खर्वट -

ऐसा नगर जिसका परिमान पुर के चौथाई हिस्से के बराबर हो वह खर्वट कहलाता है।

द्रोणी मुख -

वह नगर जिसकी लंबाई-चौड़ाई पुर के आठवें हिस्से के बराबर हो वह द्रोणी मुख कहलाता है।

वह पुर जिसके चारों ओर चहार दीवारी व खाई नहीं हो उसे खर्वट कहा जाता है।

शाखा नगर खर्वट -

वह नगर जहां भोग विलास के सारे साधन उपस्थित हों एवं जहां मंत्री व सामंत आदि रहते हैं शाखा नगर कहलाता है।

गांव -

वह स्थान जो खेतों एवं उपभोग योग्य भूमि (बाग-बागीचों) के बीच बसा हो, जहां अपनी समृद्धि से मुक्त किसान बसते हों एवं साथ ही साथ शुद्रों का निवास भी हो गांव कहलाता है।

बस्ती -

वह नगर जहां किसी कार्य के लिए मनुष्य अन्य नगरों से आकर बसते हों उसे बस्ती कहा जाता है।

द्रमी -

वह स्थान जहां अधिकांशतः दुष्टों का निवास हो, जहां के रहने वाले दूसरों की भूमियों पर अधिकार जमाते हों एवं भोगते हों द्रमी कहलाता है।

घोष -

वह स्थान जहां इच्छानुसार रहने के लिये भूमि सुलभ हो, जहां गायों का समूह निवास करता हो,बिना बाजार के ही दूध मिलता हो एवं जहां ग्वाले अपने बर्तन , भांड आदि गाड़ियों पर लाद कर रखते हों घोष कहलाता है। इस प्रकार नगरों आदि का निर्माण कर प्रजा ने अपने लिये घरों का निर्माण किया। [12]

---

(12) कल्याण संक्षिप्त/मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (ईक्कीसवें वर्ष का विशेषांक)/कल्याण कार्यालय, गीता प्रेस गोरखपुर



3.5.3 मयमतम -

'मयमतम्' में नगर नियोजन पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

3.5.3.1 नगर का विस्तार :

नगर का विस्तार तीन सौ दण्ड से लेकर आठ हजार दण्ड एवं चौड़ाई अठहत्तर दण्ड तक हो सकता है। छोटे नगर के लिए एक सौ दण्ड से तीन सौ दण्ड तक लम्बाई एवं चौड़ाई इक्कीस दण्ड तक हो सकती है। (क्रमानुसार नगर का विस्तार सौ दण्ड एवं छोटे नगर का दस दण्ड तक बढ़ाया जा सकता है।)

नगर के परकोटे (बाहरी दीवार) की माप सोलह हजार दण्ड से चार हजार दण्ड एवं पांच सौ दण्ड तक हो सकता है।

खेट :

छः प्रकार के खेट (दो उत्तम,दो मध्यम, दो निम्न) का विस्तार तीन सौ दण्ड से चार सौ दण्ड एवं क्रमागत बीस दण्ड तक चौड़ाई हो सकती है।

द्रोण मुखः

चार सौ दण्ड से चार सौ छियानबे तक छः प्रकार की चौड़ाई द्रोण मुख की हो सकती है।

खर्वट :

दो सौ दण्ड से चार सौ दण्ड एवं क्रमशः पचास दण्ड की चौड़ाई पांच प्रकार के खर्वट की हो सकती है।

निगम :

दो सौ दण्ड (Pole) से तीन सौ चालीस एवं क्रम से दण्ड की चौड़ाई पंद्रह प्रकार के निगमों की होती है।

कोट्मकोलका (Kotmakolka) :

एक सौ दण्ड से पांच सौ दण्ड एवं क्रम से बढ़ते हुये सौ दण्ड तक चौड़ाई पांच प्रकार के कोट्मकोलका की होती है।

पुर :

चौड़ाई के लिए जो मान '' कोट्मकोलका '' के लिए हैं वही पुर के लिए भी लागू होते हैं।

विदम्ब :

विदम्ब की चौड़ाई दो सौ दण्ड से पांच सौ दण्ड तक होती है। विदम्ब सात प्रकार के होते हैं। जिनमें प्रत्येक में पचास दण्ड का अंतर होता है।

यहां उल्लिखित विस्तार आनुपातिक हैं। लम्बाई चौड़ाई से दो गुनी होती है अथवा लम्बाई चौड़ाई की चौथाई गुणा होती है।[13]

3.5.3.2 परकोटा :

(13) MAYAMATA /Chapter - 10 /Bruno Dagens /Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research

नगर का परकोटा (Surrounding wall) वर्गाकार, आयताकार, गोल, दीर्घवृत्ताकार या वृत्ताकार हो सकता है।

दीवार की लम्बाई परकोटे के परिवृत्त की सात बटे दस (7/10) छः बटा आठ (6/8), पांच बटा सात (5/7), चार बटा पांच (4/5),या तीन बटा चार (3/4), हो सकती है।

दीवार की मोटाई निचले हिस्से में तीन या चार क्यूबिट , ऊंचाई सात, दस या ग्यारह क्यूबिट तक हो सकती है। दीवार की शीर्ष पर चौड़ाई उसके निचले हिस्से के चौड़ाई के दो तिहाई होती है। नगर की चहारदीवारी के चारो ओर एक खाई खुदी होनी चाहिये।

3.5.3.3 वर्जित स्थान :

नगर नियोजन में '' पेचक '' (चार पदीय वास्तु) एवं '' आसन '' (सौ पदीय वास्तु) के मध्य का पद विन्यास चयनित करना चाहिये। विद्वानों को वर्जित स्थानों एवं पदविन्यास की लाइनों पर निर्माण कार्य नहीं करना चाहिये।

3.5.3.4 मार्ग व्यवस्था :

सड़कों की व्यवस्था जहां भी आवश्यकता हो वहां करना चाहिये। सड़कों का प्रारम्भ उत्तर या पूर्व या नियमानुसार करना चाहिये। सडकों का विस्तार एक दण्ड से सात दण्ड तक एवं क्रम से आधा-आधा दण्ड बढ़ते हुये तेरह प्रकार से हो सकता है।

3.5.3.5 नगरों के प्रकार

राजधानी :

राज्य के मध्य स्थित नगर जिसकी जनसंख्या अधिक हो एवं नदी के किनारे स्थित हो एक '' सामान्य नगर ''(केवल) कहलाता है। यद्यपि जहां राजमहल स्थित हो वह राजधानी कहलाता है।

सामान्य नगर :

सामान्य नगर वह नगर होता है जिसके चारो ओर द्वार होते हैं एवं विस्तृत सुरक्षात्मक दीवार होती है,जिसका शीर्ष चपटा होता है।

नगर में बाजार होने चाहिये साथ ही साथ हर वर्ग के लोगों के निवास करने योग्य स्थान होने चाहिये। नगर में हर देवता का मंदिर होना चाहिये।

राजधानी :

वह नगर ''राजधानी'' कहलाता है जो पूर्व एवं उत्तर से पूर्ण रूपेण बाहरी आक्रमण से सुरक्षित हो। इसके चारो ओर दीवार होती है। दीवार के बाद मिट्टी की ढालदार जमावट होती है। इसके बाद गहरी खाई होती है एवं सबसे बाहरी ओर किलेबंद सैनिकों की टुकड़ी होती है जो कि हर दिशा में चौकसी कर सकें। राज्य की सुरक्षा विशेषकर पूर्व एवं दक्षिण की ओर से की जाती है। इस प्रकार के नगर में विविध प्रकार की ''मलिका '' एवं हर देवी देवताओं के मंदिर होते हैं। नगर में प्रवेश के लिये ऊंचे- ऊंचे प्रवेश द्वार होते हैं। इस प्रकार केनगर में बाग-बगीचे विद्यमान रहते हैं। राजधानी में ''गजरोही ,अश्वरोही,युद्ध वाहन एवं पैदल सैनिक '' पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहते हैं। इस नगर में हर वर्ण के लोग निवास करते हैं। नगर में राजा के निवास के साथ-साथ काफी मात्रा में सामान्यजन के निवास भी होते हैं।[14]

---

[14] MAYAMATA /Chapter - 10 /Bruno Dagens /Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research

पुर अथवा नगर :

जब नगर वन्य प्रान्त में बसा हो एवं हर वर्ण के लोगों का उस में निवास हो साथ ही हाट- बाजार आदि भी ही तो उसे ''पुर ''अथवा ''नगर'' कहा जाता है।

नगरों के प्रकार :

खेट :

वह नगर जहां शू द्रों का निवास हो तथा जो नदी या पर्वत के किनारे बसा हो खेट कहलाता है।

खर्वट :

कोई नगर जब चारों ओर से पर्वतों से घिरा हो एवं जहां हर वर्ग के लोग निवास करतें हों खर्वट कहलाता है।

जनस्थानकुब्ज :

खेट एवं खर्वट के मध्यस्थित ऐसा नगर जहां की जनसंख्या बहुत अधिक हो जनस्थानकुब्ज कहलाता है।

पट्टन:

पट्टन एक ऐसा नगर है जो कि समुद्र के किनारे बसा होता है एवं जिसका विस्तार समुद्रतट के किनारे होता है। यह एक प्रकार का व्यापारिक नगर होता है। यहां हर वर्ण के लोगों का वास होता है। यहां दुकानों एवं व्यापारियों की संख्या अधिक होती हैं। ऐसे नगर में मुख्य व्यापार मूल्यवान रत्नों,अनाज, उत्तम वस्त्र एवं सुगंधित द्रव्यों का होता है।

शिविर :

शिविर का तात्पर्य ऐसे भूभाग से है जो शत्रु राज्य की सीमा से लगा होता है। यहां युद्ध की समस्त सामग्री उपस्थित होती है। शिविर में सेना एवं सेनापति का निवास होता है।

सेनामुख :

सेनामुख में हर वर्ण के लोग सम्मिलित रूप से रहते हैं। यहां राजा का ''राजमहल '' होता है। सेनामुख किलेनुमा संरचना एवं सेना से युक्त होता है।

स्थानीय :

स्थानीय एक ऐसा नगर होता है जिसकी स्थापना राजा द्वारा की जाती है। जो कि किसी नदी के किनारे या पर्वत के समीप होता है। यहां राजमहल एवं विशाल सुरक्षात्मक दीवार होती है।

द्रोणमुख:

जिस नगर का विस्तार नदी के दोनों किनारों (बाएं एवं दाहिने) पर होता है एवं जहां हर प्रकार के व्यापारियों का आनाजाना हो तथा हर प्रकार के लोग निवास करते हों द्रोणमुख कहलाता है।

विदम्ब :

वह नगर जो कि ग्राम के समीप हो विदम्ब कहलाता है।

कोटमकोला :

जंगल के मध्य स्थित नगर कोटमकोला कहलाता है।[15]

(15) MAYAMATA /Chapter - 10 /Bruno Dagens /Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research

दो अन्य नगरों का भी उल्लेख है - निगम् एवं स्कन्धावार।

3.5.3.6 नगर नियोजन :

नगर में पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण सड़कों (गलियों)की संख्या बारह, दस, आठ, छः, चार या दो हो सकती है। विषम संख्याओं में गलियों की संख्या ग्यारह, नौ, सात, पांच, तीन या एक हो सकती है।

नगर नियोजन हेतु विविध प्रकार के नियोजनों का वर्णन किया गया है :-

(1) दण्डक :

ऐसा नियोजन जिसमें केवल एक मार्ग सीधी रेखा में हो तो उसे दण्डक कहते हैं।

(2) कर्त्तरी दण्डक :

जब एक सीधे मार्ग को उसके केन्द्र पर उत्तर से आने वाला मार्ग काटता है तो उसे कर्त्तरी दण्डक कहते हैं।

(3) बाहु दण्डक :

ऐसा नियोजन जिसमें दो पक्की सड़कें पूर्व से प्रारम्भ होती हैं बाहुदण्डक कहलाता है।

(4) कुटिकमुख दण्डक :

जब नगर नियोजन में चार मुख्य स्थानों पर प्रवेश द्वार हों तथा मुख्य मार्ग के दोनों ओर बड़ी संख्या में पक्की सड़कें हो तो ऐसा नियोजन कुटिकमुखदण्डक कहलाता है।

(5) कलकाबन्ध दण्डक :

जब तीन मार्ग पूर्व की ओर एवं तीन उत्तर की ओर हों तो नगर नियोजन कलकाबन्ध दण्डक कहलाता है।

(6) वेदीभद्र :

यदि किसी नगर में तीन मार्ग पूर्व की ओर हों एवं उनके बीच कई गलियों हों तो ऐसा नियोजन '' वेदीभद्र '' कहलाता है। यह नियोजन समस्त प्रकार के नगरों के लिये उपयुक्त होता है।

(7) स्वास्तिक :

स्वास्तिक नियोजन में छः मार्ग पूर्वगामी एवं छः मार्ग उत्तरगामी होते हैं।

(8) भद्रक :

भद्रक नियोजन हर प्रकार के नियोजन के लिये उपयुक्त होता है। इस प्रकार के नियोजन में 4 मार्ग उत्तरगामी होते है। एक केन्द्र में स्थित ब्रम्हा के चारो ओर स्थित होता है। तीन पक्की सड़कें पूर्व की ओर होती हैं।

(9) भद्रमुख :

जब पांच मार्ग पूर्व से जाने वाले एवं पांच उत्तर से जाने वाले हों तथा बहुत सारी गलियां हों तो यह नियोजन भद्रमुख कहलाता है।[16]

---

(16) MAYAMATA /Chapter - 10 /Bruno Dagens /Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research

(10) भद्रकल्याण :

जब पूर्व एवं उत्तर से गुजरने वाले मार्गों की संख्या छः हों एवं गलियों भी संख्या की बहुत अधिक हो तो नगर नियोजन भद्रकल्याण कहलाता है।

(11) महाभद्र :

जब सात मुख्य मार्ग पूर्व से पश्चिम की ओर एवं सात उत्तर से दक्षिण की ओर हों एवं नगर में पर्याप्त मात्रा में गलियाँ हो तो नगर नियोजन महाभद्र प्रकार का होता है।

(12) वास्तु सुभद्र :

जब पूर्व एवं उत्तर से प्रारम्भ होने वाले मार्गों की संख्या आठ हों साथ ही बारह अन्य मार्ग हों तथा गलियों की संख्या भी पर्याप्त हो तो नगर नियोजन वास्तुसुभद्र कहलाता है।

(13) जयंग :

जब मार्गों की संख्या नौ (९),हो नगर में मुख्य द्वार, छोटे द्वार, गलियाँ एवं राजभवन हो तो नियोजन ''जयंग '' कहलाता है।

(14) विजय :

ऐसा नगर जिसमें 10 मार्ग पूर्व व 10 उत्तर से प्रारम्भ होते हों जिसमें राजभवन हो तथा परिस्थितियों के अनुसार पर्याप्त मात्रा में गलियाँ (वीथिका) हों तो ऐसा नगर नियोजन 'विजय' कहलाता है।

(15) सर्वतोभद्र नियोजन :

सर्वतोभद्र नियोजन में (ग्यारह) 11 मुख्य मार्ग होते हैं जो पूर्व से एवं (ग्यारह) 11 उत्तर से प्रारम्भ होते हैं। राजा का राजमहल भी उपस्थित होता है जो 'ब्रम्ह स्थान' के पश्चिम में होता है। राजभवन के सम्मुख एक खुला विस्तृत प्रांगण होता है। अंत:पुर (रानी का निवास) चयनित स्थान पर होना चाहिये एवं अन्य नियोजन उचित रूप से करना चाहिये। ब्रम्ह स्थान (क्रेन्द्र) से पूर्व व उत्तर की ओर जाने वाली सड़के राजमार्ग कहलाती हैं। राजमार्ग के दोनो ओर 'मलिका' निवास बने होते हैं। जिनमें राजपरिवार के परिजन निवास करते हैं। मलिका के बाद दोनों ओर व्यापारियों के निवास होते हैं।

दक्षिण की ओर जुलाहों के निवास, उत्तर की ओर कुम्भकारों का आवास एवं इनके बगल में निम्न वर्णों के लोगों के निवास होते हैं।

इस प्रकार उपरिवर्णित प्रकार से किसी भी नगर का विन्यास किया जा सकता है। नगर नियोजन में यह एक महत्वपूर्ण पहलू है कि किसी भी मार्ग में रूकावट नहीं होनी चाहिये। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिये कि क्रेन्द्र में एक दूसरे को काटती हुई रेखायें नहीं होनी चाहिये।

3.5.3.7 नगर में बाजार व्यवस्था :

नगर की (चारो ओर) परिधि में एक मुख्य मार्ग होता है जो कि मुख्य रथ्या (रथ के लिये) कहलाता है। मुख्य रथ्या के अंदर की ओर व्यापारियों का निवास होता है। दक्षिण की ओर बुनकरों (जुलाहों) के निवास होते हैं।[17]

---

(17) MAYAMATA /Chapter - 10 /Bruno Dagens /Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research

मार्ग के बगल में अन्य कुशल कारीगरों को बसाना चाहिये।

ब्रम्ह स्थान (केन्द्र) चारों ओर से मार्ग से घिरा होना चाहिये। यहां पान की दुकान होनी चाहिये। साथ ही पान सुपारी एवं अन्य समकक्ष सामानों की दुकाने भी हो सकती हैं। फल- फूल एवं मूल्यवान वस्तुओं की दुकाने भी यहां हो सकती हैं। अन्य बाजारों की व्यवस्था निम्न प्रकार करनी चाहिये :

(1) मांस,मछली,सूखे पदार्थ एवं साग सब्जियाँ : यह बाजार ईशवर्ग एवं महेन्द्र द्वार के मध्य होना चाहिये।

(2) ठोस एवं द्रव खाद्य पदार्थ : इन वस्तुओं की दुकाने महेन्द्रद्वार एवं अग्नि वर्ग के मध्य स्थित होनी चाहिये।

(3) लोहे के सामानों (लोहार) की दुकानें : अग्नि एवं ग्रहक्षत के मध्य लोहारों को बसाना चाहिये।

(4) ताम्रकार : ग्रहक्षत एवं निऋति के मध्य ताम्रकारों को बसाना चाहिये।

(5) कपड़ों का बाजार : पित्र एवं पुष्पदन्त के मध्य कपड़ों का बाजार होना चाहिये।

(6) अनाज,चावल एवं चारा : पुष्पदन्त एवं समिरन वर्ग के मध्य अनाज,चावल एवं चारे का बाजार होना चाहिये।

(7) वस्त्र एवं वस्त्रों से जुड़ी सामग्री : वायु एवं भल्लाट वर्ग के मध्य वस्त्र एवं हर प्रकार के ओढ़ने,बिछाने के वस्त्र एवं सम्बन्धित सामग्री का बाजार नियोजित करना चाहिये।

(8) भोज्य पदार्थ तेल एवं नमक : इन सामग्रियों का बाजार भी वायु एवं भल्लाट के मध्य होना चाहिये।

(9) सुगंधित द्रव्य एवं पुष्प : भल्लाट एवं ईश के मध्य सुगंधित द्रव्य एवं फूलों का बाजार होना चाहिये।

इस प्रकार ये नौ प्रकार के बाजार हैं जो कि केन्द्र एवं परिधि (बाहरी ओर) पर स्थित होते हैं। केन्द्र से क्रमश: बढ़ते हुये मार्गों पर भी बाजार स्थित होते हैं जहां मूल्यावान रत्न, स्वर्ण, वस्त्र साथ ही साथ शहद,घी,तेल एवं आदि की दुकाने होती हैं।

3.5.3.8 नगर नियोजन में देवालयों का विन्यास :

शस्त्र, दुर्गा एवं लक्ष्मी जी का पूजन क्रमश: 'आर्य' 'विवस्वन्त' 'मित्र' एवं 'पृथ्वीधर' के स्थान पर होना चाहिये।

शिवमंदिर :

नगर केन्द्र (हृदय स्थल) में ब्राम्हणों द्वारा प्रतिष्ठित मंदिर होता है। शिव मंदिर इस स्थान पर हो सकता है अथवा नगर के बाहर भी शिवमंदिर स्थित हो सकता है।

विनायक :

'विनायक ' जी का मंदिर 'भृंगराज' या 'पावक' के वर्ग में स्थित होना चाहिये।

शिव मंदिर :

शिव जी का मंदिर 'ईश', 'सोम' या किसी अन्य वर्ग में विर्निदिष्ट प्रकार से स्थित हो सकता है।

सूर्य मंदिर :

सूर्य मंदिर 'सूय' वर्ग में स्थित होना चाहिये।[18]

---

(18) MAYAMATA /Chapter - 10 /Bruno Dagens /Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research

कालिका :

कालिका का मंदिर 'अग्नि' वर्ग में स्थित होना चाहिये।

विष्णु :

विष्णु जी का मंदिर 'भृश' वर्ग में होना चाहिये।

सम्मुख :

सम्मुख का मंदिर 'यम' वर्ग में होना चाहिये।(1)

कैशव (विष्णु):

'केशव ' का मंदिर 'भृश' 'मृग' या 'निरिति' के वर्ग में होना चाहिये।

गणेश :

'गणेश' जी का मंदिर 'सुग्रीव' या 'पुष्पदन्त' के वर्ग में होना चाहिये।

आर्यक :

'निरिति' के वर्ग में 'आर्यक' का मंदिर होना चाहिये।

विष्णु का तीर्थ मंदिर (Shrine):

विष्णु जी का तीर्थ मंदिर 'वरूण' के अंतर्गत होना चाहिये। इस तीर्थमंदिर में विष्णु जी की स्थिति खड़े हुये, बैठे हुये या लेटे हुये हो सकती है। (ऊपरी मंजिल से प्रारम्भ करते हुये) या निचली मंजिल बृहत् हो सकती है एवं विष्णु जी ऊपरी मंजिल पर खड़ी मुद्रा में हो सकते हैं।

सुघट :

'सुघट' का मंदिर 'सुगल' वर्ग में होना चाहिये।

जिन:

जिन का मंदिर भृंगराज वर्ग से हो सकता है।

मदिर:

मदिर का मंदिर वायु वर्ग मे होना चाहिये।

कात्यायनी :

'कात्यायनी' का मंदिर 'मुख्य' वर्ग में होना चाहिये।

धंड :

'धंड' एवं 'मातृगण' का मंदिर 'सोम' वर्ग में होना चाहिये।

शंकर :

'शंकर' जी का मंदिर 'ईश', 'पर्जन्य' या 'जयन्त' वर्ग में होना चाहिये।[19]

(19) MAYAMATA /Chapter - 10 /Bruno Dagens /Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research

विष्णु मंदिर :

विष्णु मंदिर केन्द्र में होना चाहिये जहां सभाकक्ष भी होना चाहिये। यह सभाकक्ष ब्रम्ह स्थान के उत्तर पूर्व या दक्षिण पूर्व में होना चाहिये।

हरी :

हरी का मंदिर ब्रम्ह स्थान के उत्तर पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम वर्ग में होना चाहिये।

ब्रम्ह स्थान के शेष पांच वर्गों में निर्माण हर प्रकार से विनाशकारी होता है।

आवास व्यवस्था :

हर वर्ण के लोगों का निवास देव स्थानों से कुछ दूर हटकर बनाना चाहिये।

पट्टन :

पट्टन (पत्तन) में एक सीधी सड़क होती है जहां कोई भी बाजार नहीं होते हैं।[20]

3.5.4 समरांगण सूत्रधार –

वास्तुशास्त्र के प्रतिष्ठित ग्रन्थ ''समरांगण सूत्रधार'' के अध्याय 22 एवं 23 में नगर नियोजन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। अध्याय 22 में नगरादि संज्ञा है एवं 23 में नगर नियोजन पर प्रकाश डाला गया है।

नगरं मंदिरं दुर्गं पुष्करं साम्परापिकम्।
निवासः सदनं सद्म क्षयः क्षितिलयस्तथा॥

अर्थात - नगर,मंदिर,दुर्ग,पुष्कर, साम्परायिक,सदन,निवास,सद्म,क्षय तथा क्षितिलय ये सब नगर के पर्याय हैं। इनसे नगर का विकास सूचित होता है। [21]

नगर से सम्बधित संज्ञायें इस प्रकार हैं :-

राजधानी :

जिस नगर में राजा रहता है उसे राजधानी कहते हैं।

शाखा नगर :

अन्य नगर शाखा नगर कहलाते हैं।

कर्वट :-

शाखा नगर को ही नगरोपम 'कर्वट' कहा जाता है।

निगम :

कर्वट से छोटा नगर 'निगम' कहलाता है।

---

(20) MAYAMATA /Chapter - 10 /Bruno Dagens /Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research

(21) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 22/1/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

ग्राम :

निगम से छोटा ग्राम होता है।

गृह :

ग्राम से छोटा गृह कहलाता है।

गोष्ठ :

गोकुलों का निवास गोष्ठ कहलाता है।

गोष्ठक :

छोटे गोष्ठ 'गोष्ठक' कहलाते हैं।

पत्तन :

राजाओं के उपस्थान को पत्तन कहा जाता है।

पुटभेदन :

जिस पत्तन का विस्तार अधिक हो एवं जो वैश्व (व्यापारियों) से युक्त हो पुटभेदन कहलाता है।

पल्ली :

वह स्थान जहां पर पत्तों,शाखाओं,घास, फूस एवं उपलों से कुटिया बनाकर पुलिन्द (एक प्रकार की असभ्य जाति) लोग निवास करतें हैं पल्ली कहलाता है।

पल्लिका :

छोटी पल्ली पल्लिका कहलाती है।

जनपद :

नगर को छोड़कर अन्य सब जनपद कहलाता है।

देश या मंडल :

जनपद एवं नगरों को मिलाकर सम्पूर्ण राष्ट्र को देश अथवा मंडल कहते हैं।

भवन के पर्याय :

आवास,सदन, सद्म, निकेत,मंदिर, संस्थान, निधन,धिष्ठय, भवन, वसति, क्षय, आगार या अगार, संश्रय,नीड़, दोह, शरण,आलय,निलय,लयन,वेश्म, गृह, ओक,प्रतिश्रय ये सब भवन के पर्याय हैं।

गृह के ऊपर (छत) की भूमि को हर्म्य कहतें हैं, उसके ऊपर चढ़ने के मार्ग को सोपान कहतें हैं।

दो खम्बों पर लकड़ियों के द्वारा बनाये गये मार्ग को निःश्रेणी (सीढ़ी) कहा जाता है। इसमें बड़े-बड़े पदों को सोपान कहा जाता है।[22]

---

(22) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 22/1/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

3.5.4.1 पुर निवेश :

'' पुरस्य त्रिविधस्यायि प्रमाणमय कथ्यते।
प्राकार परिखाट्टालद्वाररथ्याध्वभिः सह॥
ज्येष्ठं तत्र चतुश्चापसहस्त्रं पुराभिष्यते।
मध्यं द्वाम्यां सहस्त्रभ्यामेकेन व्यासतोऽधमम्॥
साष्टमांशं सपादं वा सार्ध वा व्यासमायतम्।
कुर्यादकैकभायामं चतुर श्रीकृतं शुभम्॥
चतु :षष्टि पदाख्येन पुरं सर्व प्रकल्पयेत्।
द्विरष्टकोष्ठं तत् कुर्यात् षट्पयं नवचत्वरम्॥

- अर्थात पुर (नगर) तीन प्रकार के होते हैं। जिनके नाम हैं ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ। इनके प्राकार, परिखा, अटारी, द्वार, गली एवं मार्ग तथा उनके प्रमाण का वर्णन किया जाता है।

ज्येष्ठ नामक पुर चार हजार चाप के व्यास का होता है, मध्यम पुर दो हजारचाप के व्यास का एवं अधमपुर एक हजार चाप के व्यास का होता है। नगर के व्यास के आठवें, चौथे अथवा आधे भाग के साथ प्रत्येक विस्तार क्रमशः करना चाहिये। नगर का आकार चौकोर होना चाहिये तथा नगर का नियोजन चौंसठ पद वाले वास्तु पद से करना चाहिये। नगर में सोलह कोष्ठ, छः मुख्य मार्ग एवं नौ चबूतरे होने चाहिये।

क्षेत्र के चौकोर होने पर पूर्व से उत्तर तक चार-चार भाग के छः वंश स्थापित करने चाहिये। इन छः वंशों में पुर-पद के विभक्त हो जाने पर मध्यम वंश का अनुसरण कर शुभ राजमार्ग का निमार्ण करना चाहिये। चौबीस हस्तो (करों) के प्रमाण से ज्येष्ठपुर में यह राजमार्ग उत्तम होता है। मध्यम पुर में बीस हस्त प्रमाण का यह राजमार्ग मध्यम मार्ग कहलाता है। ठीक इसी प्रकार अधम पुर में सोलह हस्त का राजमार्ग अधम कहलाता है। राजा , प्रजा , एवं चतुरंगिणी सेना के लिये यह मार्ग पक्का होना चाहिये तथा आवागमन की पूरी सुविधा होनी चाहिये।

उस मार्ग के निकट दोनों वंशों पर दो महारभ्याओं का निर्माण करना चाहिये। ये दोनों महारभ्यायें तीनों पूरों में क्रमशः बारह, दस और आठ हस्तों के प्रमाण की होती हैं।

पद के मध्य में चार यान मार्गों का निर्माण करना चाहिये। यान मार्ग चार हस्त प्रमाण के होते हैं। महामार्ग की आधी उपरथ्या का प्रमाण होता है एवं उपरथ्या से आधा प्रमाण रथ्याओं का होता है। चारों पान मार्गो के दोनों ओर पैदल पारपथ (फुटपाथ) का निर्माण करना चाहिये।

ज्येष्ठपुर में फुटपाथ का प्रमाण तीन हाथ,मध्यम में ढ़ाई हाथ एवं अधमपुर में दो हाथ विस्तार का होना चाहिये। पुर के बीच में दो और मार्ग जिन्हें घंटामार्ग कहा जाता है का निर्माण करना चाहिये। पूर्व से पश्चिम तक सत्रह मार्गों का निर्माण किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर तक उसी प्रमाण से उतने ही मार्ग बनाने चाहिये।

प्राचीर (वप्रः) एवं खन्दक/खाई (परिखा) निर्माण :

घंटामार्ग के बाहर चारो तरफ विशेषज्ञों के परामर्श के अनुसार चाहारदीवारी का निर्माण करना चाहिये। तत् पश्चात उस भूमि के बाहर महारथ्या के प्रमाण से तीन खाइयों (परिखा) का निर्माण कराना चाहिये।[23]

---

(23) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 23/1-4/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

खोदी हुई मिट्टी बाहर कर व्यास और मूल के प्रमाण से आधा अथवा व्यास के ही परिमाण में चहारदीवारी का निर्माण करना चाहिये। खोदी हुई मिट्टी से दीवार बनाने का कार्य पूर्ण होने के उपरान्त बची मिट्टी से तल को सम्पूरित करके बराबर कर लेना चाहिये। तीनों खाइयों (परिखाओं) के चारों ओर संशोधन करके तल को ईटों अथवा पत्थर से दृढ़ बनाना चाहिये। फिर उन्हें पानी से भरकर कमल के पौधों का विकास करना चाहिये। साथ ही संग्रहित जल के निकलने का भी मार्ग होना चाहिये।

इन इकाइयों (परिखाओं) के सब तरफ फूलों के पौधों और सुन्दर-सुगन्धित बगीचों का निर्माण करना चाहिये। सब दिशाओं के बाहरी भागों को पेड़ो, लताओं एवं कांटों ढक देना चाहिये।

प्राकार :

प्राचीर (वप्र) के उध्र्व भाग में स्थित मध्य भाग पर बड़े-बड़े पत्थरों अथवा पकी ईटों से 'प्राकार' का निर्माण करना चाहिये। प्राकार तीन प्रकार के होते हैं श्रेष्ठ,मध्यम और अधम। श्रेष्ठ का विस्तार बारह हाथ एवं ऊंचाई संग्रह हस्त प्रमाण की होती है। अधम का विस्तार आठ व ऊंचाई तेरह हस्त प्रमाण होती है।

प्राकार सज्जा :

चार हस्त की ऊंचाई एवं दस हस्तों के विस्तार से प्राकार के शिखर का निर्माण होता है। कंगूरा (कपिशीर्ष)एक हाथ ऊंचा एवं छाल दीवारी (कांड वारिणी) दो हाथ ऊंची होती है। प्राकार के ऊपर चारो तरफ प्रत्येक दिशाओं में कोनों में आक्षित एवं द्वार के कोनों में स्थित अट्टालिकाओं का निर्माण करना चाहिये। प्राकार की ऊंचाई से उसके विस्तार के अनुसार आकाश पथ बनता है। दीवारों एवं अट्टालिकाओं सहित निर्गम का निर्माण करना चाहिये। अट्टालिकाओं का सौ-सौ हस्त प्रमाण से अंतर रखना चाहिये। इस प्रकार निर्मित होने वाला नगर पैदल,हाथी,घोड़ा एवं रथों से अगम्य हो जाता है।

चारिका या आकाश पथ इस प्रकार बनाना चाहिये कि जिसमें द्वारों का संचार हो, सफलतापूर्वक आरोहण हो, सीढियाँ हों एवं कंगूरे भी हों।

नगर की द्वार योजना :

द्वार विशेषज्ञों के परामर्श से चारो दिशाओं में राजमार्गों,महारथ्याओं से युक्त तीन-तीन दरवाजे बनाने चाहिये। राजमार्ग के चारों महाद्वारों का विस्तार नौ, आठ,सात हस्त प्रमाण का होना चाहिये। यह विस्तार भूमि से दुगना नहीं होना चाहिये साथ ही तीन हाथ भूमि साथ-साथ छोड़ देनी चाहिये। महारथ्या द्वार का विस्तार छः, पांच,चार हाथ के प्रमाण का विहित है तथा द्वार का विस्तार उसकी ऊंचाई से डेढ़ हाथ कम होना चाहिये।

प्रतोली :

सभी महाद्वारों में अनिवार्यतः मजबूत प्रतोलियों का निर्माण करना चाहिये। प्रतोलियों के द्वार इन्द्रकीलों एवं अर्गलाओं से मजबूत किये जाने चाहिये।

पक्षद्वार :

नदियों, पर्वतों, जलाशयों को देखने के लिये सुविधानुसार पक्षद्वारों का निर्माण करना चाहिये।[24]

---

(24) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 23/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

नालियाँ (जल भ्रम) :

नगर में पत्थरों या लकड़ियों से निर्मित नालियों का निर्माण कराना चाहिये। इन नालियों का परिमाण दो हस्त या एक हस्त होना चाहिये।

नगर एवं उपनगरों का विस्तार :

नगर के आधे विस्तार का खेट और खेट के आधे विस्तार का ग्राम होता है। नगर से खेट के बीच की दूरी एक योजन,खेट से ग्राम की दूरी एक योजन एवं एक गांव से दूसरे ग्राम की दूरी दो कोस होनी चाहिये।

जनपद की सीमा दो कोस से होनी चाहिये। उसके आधे से नगर की और नगर की सीमा के आधे गांव से खेटक की और खेटक की सीमा के आधे गांव की सीमा कही गयी है।

बड़े राष्ट्र में नौ हजार नौ सौ नब्बे ग्राम होने चाहिये। मध्यम राष्ट्र में पांच हजार तीन सौ चौरासी ग्राम होते हैं। छोटे राष्ट्र में एक हजार पांच सौ अड़तालीस ग्राम होते हैं।

3.5.4.2 नगर में विविध वर्णों के लोगों की आवास योजना :

बुद्धिमान स्थपति को दिशानुसार विविध वर्ण के लोगों को बसाना चाहिये।

आग्नेय दिशा -

इस दिशा में अग्नि से जीविका प्राप्त करने वाले सुवर्णकारों, लोहारों आदि को बसाना चाहिये।

दक्षिण दिशा :

दक्षिण में वैश्यों,जुवारियों,गाड़ी वालों, नटों तथा नाच गान करने वालों के घर बसाने चाहिये।

नैऋृत्य दिशा :

इस ओर गड़ेरिया, बहेलिया,केवट,सूअर से जीविका चलाने वाले, दमनाधिकारी गण को बसाना चाहिये।

वारूणी दिशा :

शस्त्रों, रथों आदि के कारीगरों को वारूणी दिशा में बसाना चाहिये।

वायव्य कोण :

भृत्यों एवं शराब बेचने वालों को वायव्य कोण में स्थापित करना चाहिये।

कुबेर (उत्तर)दिशा :

नगर के उत्तर भाग में सन्यासियों,ब्रम्ह ज्ञानियों की सभा को, प्याउ,धर्म शाला आदि को बसाना चाहिये।

ईशान दिशा :

ईशान में घी तथा फल बेचने वालों का स्थान उत्तम कहा गया है।

बुद्धिमान स्थपति को सेनाध्यक्षों,राजा के प्रमुख व्यक्तियों ,सेनाओं को आग्नेय दिशा में बसाना चाहिए। श्रेष्ठियों ,देश के उच्च सम्मानित (देश महत्तर) व्यक्तियों को दक्षिण दिशा में स्थापित करना चाहिये।[25]

---

(25) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 23/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

नैऋत्य कोण में याम्मेंकहारों को बसाना चाहिये। वरूण दिशा में कोषाध्यक्षों ,महामात्र,आदेशिकों ,नियामकों तथा कलाकारों(शिल्पियों) को स्थापित करना चाहिये। वायव्य दिशा में नायकों तथा दण्डनायकों को नियोजित करना चाहिए। उत्तर की दिशा में पुरोहितों एवं ज्योतिषियों को विन्यसित करना चाहिये। सौम्य (चन्द्र सम्बन्धी) दिशा में ब्राम्हणों को, इन्द्र की दिशा में क्षत्रियों को ,दक्षिण दिशा में वैश्य तथा शूद्रों को बसाना चाहिये। व्यापारियों, वैश्यों व सेनाओं को नगर के चारो ओर विन्यसित करना चाहिये। नगर के बाहर पूर्व दिशा में लिगों का नियोजन करना चाहिये। दक्षिण दिशा में शमशान का निवेश करना चाहिये। इस प्रकार नगर का चर्तुवर्ण विन्यास करना युक्ति संगत होता है। नगर की ही भांति खेट तथा ग्रामों का भी न्यास होना चाहिये।

लक्ष्मी एवं कुबेर की अनिवार्य स्थापना :

नगर के प्रत्येक द्वार पर नगर के अभिमुख समस्त अंगों से विभूषित पूर्व मुख कल्याणकारी लक्ष्मी एवं कुबेर की अनिवार्यतः स्थापना करनी चाहिये। लक्ष्मी एवं कुबेर जब राष्ट्र, खेट, ग्राम और पुर आदि को जब ये दोनो देखते रहते हैं तो वहां पर आरोग्य,अर्थ सिद्धि एवं प्रजा की विजय होती रहती है।

इसके विपरीत जिस भी ग्राम,खेट,नगर या राष्ट्र पर लक्ष्मी एवं कुबेर की दृष्टि नहीं पड़ती है तो बड़े-बड़े अनर्थ पैदा होते रहते हैं। क्लेश,बन्धनि वध आदि के अनर्थों से लोग आक्रान्त रहते हैं।

नगर में विविध देव मंदिरों का नियोजन (बाह्य मंदिर) :

चारों दिशाओं से लेकर प्राकार और परिखा तक बाहर सौ-सौ,डेढ़ सौ,दो सौ चापों के परिणाम से शुद्ध अनिन्द्य धरणीतल वाले अपने-अपने विभिन्न मंदिरों के साथ क्रमशः देवताओं के अपने-अपने प्रसादों तथा परिवार देवताओं के भवनों से युक्त नगराभिमुख निवेश करना चाहिये। पूर्व में पश्चिमाभिमुख,पश्चिम में पूर्वाभिमुख, दक्षिण और उत्तर में क्रमशः एक दूसरे के विपरीत प्रदक्षिण द्वारा स्थापित करना चाहिये। उत्तर मुख वाले देवों को भी दक्षिणाभिमुख नहीं करना चाहिये। चैत्य, शांति सभाएं,यक्षो,माताओं तथा प्रमथों के मंदिर तथा प्रमथाधीश्वर के निकेतन भी दक्षिणाभिमुख नहीं होने चाहिये।

पूर्व दिशा के मंदिर :

विष्णु, सूर्य, इन्द्र तथा धर्मराज के मंदिर पूर्व दिशा में स्थापित करने चाहिये।

पूर्व-दक्षिण दिशा :

इस दिशा में सनत्कुमार, सावित्री, मरूत तथा मारूत आदि देवगणों का मंदिर बनाना चाहिये।

दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम भाग :

नगर के दक्षिणी भाग में गणेश, माताओं तथा भूतों एवं प्रतपति यमराज का मंदिर बनाना चाहिये। पितरों के चैत्य दक्षिण-पश्चिम भूभाग में बनाना चाहिये।

पश्चिम दिशा :

सागर नदियों, शिल्पिराज विश्वकर्मा, प्रजापति ब्रम्हा तथा वरूण के मंदिर पश्चिम दिशा में बनाने चाहीये।

पश्चिमोत्तर :

नागों, शनैश्चर, कात्यायनी के मंदिर पश्चिमोत्तर में बनाने चाहिये।[26]

---

(26) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 23/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

सौम्य दिशा :

सौम्य दिशा में विशाखा और कार्तिकेय, चन्द्रमा तथा कुबेर के प्रासाद अलग-अलग बनाने चाहिये।

पूर्वोत्तर दिशा :

जगतगुरू महेश, लक्ष्मी और अग्नि देवता के मंदिर पूर्वोत्तर दिशा में बनाने चाहिये।

नगर में चारो ओर विविध नदियों एवं सागरों के मंदिर का निर्माण करना चाहिये। जंगलों और पहाड़ों के साथ-साथ सभी जगह भगवान शंकर का स्थान नियत होना चाहिये। जिस नगर में समस्त देवों का मंदिर अपने निर्धारित स्थानों पर होता है वहां सुख समृद्धि एवं ऐश्वर्य व्याप्त रहता है। नगर से बाहर स्थित समस्त देवगण यदि अभिमुख हों तभी कल्याणकारी होती हैं। यदि किसी स्थान पर देवगण पराङ्.गमुख हो जायें तो विद्वान स्थपति को उस देवता का अपने वेश, वर्ण, अलंकार, वस्त्र और वाहन से युक्त चित्र बनाकर मंदिर की दीवार पर नगर के सम्मुख चित्रत करना चाहिये।

नगर के अंदर देवताओं के मंदिर का विन्यास :

मध्य भाग :

मध्य भाग में ब्रम्हा, इन्द्र, बलराम तथा कृष्ण के मंदिरों का निर्माण करना चाहिये। नगर के अंदर माताओं, यक्षों, गणाधीशों, रूद्रों, भूतसंघों को बिना उनके मंदिर बनवाये चबूतरों एवं मार्गो पर भी स्थापित किया जा सकता है।

मंदिरों के निर्माण से होने वाले दोष (व्याधि):

जहां एक ओर मंदिरों का निर्माण कराना कल्याणकारी है वहीं दूसरी ओर मंदिरों के निर्माण से पीड़ा भी उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी विशेष देवता का प्रासाद पहले से ही नगर में हो एवं कोई व्यक्ति पुनः उस देव प्रासाद का निर्माण पूर्व दिशा में करवाता है तो वह कल्याणकारी है। यदि घर, नगर व ग्राम में प्रसाद के प्रमाण एवं गुण से अधिक दुसरे मन्दिर का निर्माण नहीं करना चाहिए। रूद्र, चन्द्रमा एवं ब्रम्हा के मन्दिरों के होने पर भी यदि उनका दूसरा मन्दिर निर्माण करया जाय तो ब्राम्हणों के लिए कष्ट कारक होता है। ठीक इसी प्रकार अग्नि एंव बृहस्पति के एक से अधिक मन्दिर निर्माण कराने पर पुरोहितों एवं ज्योतिषियों के कष्ट(भय) का कारण बनता हे। कुबेर, इन्द्र, यम,और वरूण के एक से अधिक मन्दिर बनाने पर राजा के लिये भय का कारण बनता है।

स्वामी कार्तिकेय के एक से अधिक मन्दिर बनवाने पर सेनाध्यक्ष और सेनाओं को पीड़ा होती है। ब्रम्हा और विष्णु के दूसरे मन्दिर निर्माण करने एवं करवाने वाले दोनो विनाश और बन्धन के भागी होते हैं।

गणेश, यक्ष एवं नागों के मन्दिर यदि एक से अधिक बनाये जायें तो सेना के अंगों के लिए नित्य भयकारक होता है। ज्येष्ठ, मध्य तथा कनिष्ठ देव मंदिरों के बीच का अन्तर नौ, छै तथा तीन पदों का होना चाहिए।

निन्दित पुर एवं उसके दोषः-

छिन्नकर्ण, विकर्ण, वज्र, सूची, मुख, वर्तुल, व्यजनाकार, धनुषाकृति, विस्तार से द्विगुणायत दो गाड़ियों के आकार के समान शक्रट द्विसवाकार, कुदिशा में स्थित कुदिशस्थ तथा सर्पचक्र ऐसे पुरों को निन्दित कहा गया है।[27]

---

(27) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 23/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

छिन्नकर्णः-

पुर में बसने वाले लोगों को व्याधि, शत्रुओं एवं चोरों से भय होता है।

विकर्णः-

विकर्ण पुर में रहने वाले भद्र मनुष्यों को दुष्ट राजा, अल्पायु एवं सन्तानहीनता (अनपव्यता) के दोष प्राप्त होते हैं।

वज्राकृतिः-

वज्राकृति पुर में रहने वालों को स्त्री से पराजय, विष रोग और अनेक प्रकार के भेदों का भय होता है।

सूचिमुखाकारः-

इस प्रकार के पुर के निवासी भूख एवं कष्टों को प्राप्त होते हुए नाश को प्राप्त होते हैं।

वर्तुल पुरः-

वर्तुल पुर में मनुष्य अल्पायु वाले होते हैं तथा वहां रहने वाले लोग अपने राजा के साथ नष्ट हो जाते हैं।

व्यजनाकारः-

व्यजनाकार वाले नगर में मनुष्य असत्यवादी, रोग से ग्रस्त, कम आयु वाले, आंधी तूफानों से भयग्रस्त, एवं चंचल चित्त वाले होते हैं।

चावाकारः-

चावाकार पुर में रहने वाले लोग चरित्रहीन स्त्रियों से युक्त एवं नपुंसक भी होते हैं।

शकटद्विसवाकरः-

यदि शकटद्विसवाकार नगर का निवेश होता है तो वहां अग्नि, रोग, शोक एवं चोरी का भय होता है।

द्विगुणायत संस्थानः-

यदि किसी पुर का द्विगुणायत संस्थान किया जाता है तो प्रारम्भ से ही असिद्धि प्राप्त होती है। ऐसा नगर ब्राम्हणों के लिए भयदायक होता है। यहां निवास करने वाले लोगों के कुटम्बियों में कलह बना रहता है। यहां घोड़ों एवं हाथियों का नाश हो जाता है। ऐसा नगर बलशाली शत्रुओं के द्वारा पराजित होता है।[28]

3.5.4.3 विविध वास्तु संस्थानों के अनुसार अवास योजनाः-

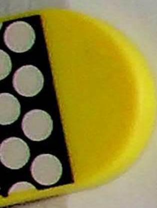
समरांगण सूत्रधार के अध्याय 19 में हर प्रकार के लोगों के आवास हेतु उत्तम भूमि का वर्णन किया गया है। चालीस प्रकार के वास्तु संस्थान के क्षेत्र कहे गये हैं।

(1) सम [29]

---

(28) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 23/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

(29) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 19/2-7 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली



(2) चतुरश्र

(3) सायि

(4) दीर्घ

(5) वृत्त

(6) शम्बुक

(7) शकटा क्षाकृति

(8) भगाकृति

(9) आदर्शाकृति

(10)वश्राकृति

(11) कन्याकृति

(12) छिन्नकर्ण

(13) विकर्ण

(14) शंख सदृश

(15) क्षुर-सन्निभ

(16) शक्ति मुख

(17) कूर्म पृष्ठ

(18) सदंश

(19) व्यजना कृति

(20) शरावा कृति

(21) स्वस्तिका कृति

(22) पणवाकार

(23) मृदङ्गाकार

(24) विशर्कर

(25) कबंधाकृति

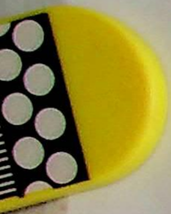
(26) मवमध्य-समकृति

(27) उत्सङ्गाकार

(28) गजदंताकार [30]

---

(30) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 19/2-7 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली



(29) परशु-सदृश विश्रावित

(30) श्वभ्र

(31) प्रलम्ब

(32) विवाहिक

(33) त्रिकुष्ट

(34) पञ्चकुष्ट

(35) परिच्छिन्न

(36) दिकस्वस्तिकाभ

(37) श्री वृक्ष

(38) वर्धमान समानन

(39) एणीपद

(40) नरपद

इन वास्तु संस्थान क्षेत्रों में निम्न प्रकार से विन्यास करना चाहिए।

चौकोर तथा सम में राजा का निवास होना चाहिए। शप्याकार में पुरोहित वर्ग का वास उचित है। दीर्घ में छोटे राजकुमार और वृतायात में सेवा पतिका निवास योग्य है। शम्बुक आकार में हर प्रकार के वाहन (गज, अश्व, रथादि) का स्थान होना चाहिए। सम में अन्त:पुर होना चाहिए शकराकृति में बनियां लोगों को बसाना चाहिए।

वेश्याओं का स्थान भगसंस्थान में होना चाहिए दर्पणाभ संस्थान में सुनार तथा वज्र-सदृश संस्थान में सुनार तथा वज्र-सदृश संस्थान में नगर गोष्ठिक लोग रहें। पुत्र की कामना करने वाले लोग शंख-संस्थान-क्षेत्र में निवास करें। छिन्नकर्ण में महापात्र लोग तथा विकर्ण में बहेलिये निवास करें।

शंखाभ क्षेत्र में काने तथा क्षुरोपम् संस्थान में गणाचार्य, शक्तिमुख में व्रजाध्यक्ष तथा कूर्मपृष्ठ-संस्थान में माली लोग बसें। संदश में दर्जी और व्यजनोपम-संस्थान में साईस लोग, इराककृति में बढ़ई लोग और स्वस्तिकाकृति में बन्दी और मगध लोगों का निवास उचित है।

पणाव सदृश एवं मृगङ्गसदृश संस्थान में वेणु, तूर्य आदि बाजा बजाने वाले लोगों को और विशर्कर में रथ को हांकने वालों का स्थान विहित है। कबंध प्रतिम संस्थान में नीचों और चाण्डालों, यव-प्रतिमा संस्थान में खेतिहारों, उत्संग में श्रमक लोगों तथा गजदंतक में हाथी के वाहनों (महावत) के निवास उचित होते हैं।

परशु की प्रतिमा वाले क्षेत्रों में कैदी लोग, विश्रावित में शराब बनाने वाले लोग, श्वभ्राभ्र में मजदूर, प्रलम्ब (युगल)नाई लोग और वैवाहिक में खजाने की रक्षा करने वाले लोग और, त्रिकुष्ट और पंचकुष्ट में वद्धिजीवी लोगों का निवास होना चाहिए।

परिच्छिन्न संस्थान में मानोपजीवी लोगों को बसाना चाहिए।[31]

---

(31) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 19/8-21 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

दिक्स्वस्तिक संस्थान में हर प्रकारके चैत्यों एवं घरों का निर्माण करना चाहिए। श्री-वृक्ष-प्रतिम संस्थान में यज्ञकरों तथा वृक्षों का रोपण करना चाहिए।

एणी पद संस्थान में गणिकाओं तथा नरपद में चोरों का आवास होना चाहिए। इस प्रकार इस अध्याय में समाज के हर जाति, वर्ण विविध प्रकार की जीविका पार्जन करने वाले लोगों के सुखपूर्वक आवास जीवन यापन करने हेतु मार्ग दर्शन किया गया है।[32]

3.5.5 मानसार

वास्तु शास्त्र के सुपसिद्ध ग्रन्थ मानसार में नगर नियोजन पर तात्विक विश्लेषण किया गया है।मानसार में राजाओं के प्रकार बनाये गयें हैं। इन राजाओं के अनुसार नगर का विन्यास किया जाता है।

3.5.5.1 नगरों के प्रकार :-

(1) अस्त्रग्राही:-

अस्त्रग्राही राजा का नगर एक सौ दंड से प्रारंभ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए तीन सौ दण्ड तक होता है। दूसरा दो सौ दण्ड से प्रारंभ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए चार सौ दण्ड तक होता है। तीसरा तीन सौ दण्ड से प्रारम्भ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए पांच सौ दण्ड तक होता है। ये तीन प्रकार के नगर सबसे छोटे, मध्यम व सबसे बड़े हैं। इनकी चौड़ाई एक हजार दण्ड तक होती है। इस प्रकार के नगर इक्कीस प्रकार के होते हैं।

(2) प्रहारक:-

प्रहारक राजा के लिए पहले नगर की चौड़ाई चार सौ दण्ड से प्रारंभ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए, दुसरी पांच सौ, तीसरी छ:सौ दण्ड से प्रारम्भ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए, इक्कीस प्रकार के होते हैं। इनकी चौड़ाई एक हजार दो सौ दण्ड तक हो सकती है।

(3) पट्टभाक:-

पट्टभाग राजा के लिए तिरसठ प्रकार की नगर की चौड़ाई सात सौ, आठ सौ, नौ सौ आदि दण्ड से प्रारंभ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए चार हजार आठ सौ दण्ड तक करना चाहिए।

(4) मण्डलेश:-

मण्डलेश राजा के लिए तिरसठ प्रकार की नगर की चौड़ाई एक हजार एक सौ, एक हजार दो सौ, एक हजार तीन सौ आदि दण्ड से प्रारम्भ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए तीन हजार एक सौ दण्ड तक होती है।

(5) पट्टधर:-

पट्टधर राजा के लिए विद्वान तिरसठ प्रकार की नगर की चौड़ाई का प्रावधान करें। यह चौड़ाई दो हजार छ:सौ दण्ड से प्रारम्भ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए चार हजार आठ सौ दण्ड तक हो सकती है।[33]

---

(32) समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम/अध्याय 19/2-7 / द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

(33) मानसार (हिन्दी टीका)/अध्याय 10/1-11 /शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(6)पार्ष्णिकः-

पार्ष्णिक के लिए नगर की चौड़ाई तीन हजार तीन सौ दण्ड से प्रारम्भ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए पाँच हजार पाँच सौ दण्ड तक हो सकती है। जहां व्यपार होता हो तथा जो सात देवताओं से समायुक्त हो वह पुर कहलाता है।

(7) नरेन्द्रः-

नरेन्द्र राजा के लिए विद्वान तिरसठ प्रकार की नगर की चौड़ाई चार हजार चार सौ दण्ड से प्रारम्भ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए छः हजार छः सौ दण्ड तक का प्रावधान कर सकते हैं।

(8) महाराजाः-

महाराजा के नगर हेतु चौड़ाई चार हजार सात सौ दण्ड से प्रारम्भ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए छः हजार नौ सौ दण्ड तक कुल तिरसठ प्रकार की हो सकती है।

(9) चक्रवर्तीः-

चक्रवर्ती राजा के लिए नगर की चौड़ाई पाँच हजार छः सौ दण्ड से प्रारम्भ होकर सौ-सौ दण्ड बढ़ाते हुए सात हजार सात सौ दण्ड तक कुल तिरसठ प्रकार की हो सकती है।

सबसे बड़े नगर की चौड़ाई दस हजार दण्ड तक हो सकती है।

नगर की लम्बाई चौड़ाई से समानयतया डेढ़, पौने दो या दोगुनी होती है।

3.5.5.2 नगर के लक्षण:-

राजधानी नगर, केवल नगर, पुर, नगरी, खेट, खर्वट, कुब्जक, पत्तन ये आठ नगर हैं। शिविर, वाहिनी मुख, स्थानीय, द्राणक, संविद्ध, रोलक, निगम तथा स्कन्धावार में आठ दुर्ग हैं। नगर आदि संग्राम में दुर्ग कहलाते हैं।

नगरः-

वह स्थान जो राष्ट्र के मध्य में हो एवं नदीके किनारे स्थित हो, जहां बहुत से पुण्यजन निवास करते हों तथा जिसके बीच में राजमहल हो उसे नगर कहा जाता है।

राजधानीः-

यदि उपरोक्त वर्णित नगर के प्रवेश या मध्य में विष्णु का मंदिर हो तो इसे राजधानी कहा गया है।

केवलः-

चारों दिशाओं में गोपुरों से युक्त चार द्वारों से युक्त, रक्षागृह से आवीर्ण, सेना की छावनी से समन्वित, व्यापारियों से भरी हुयी, बाजारों से युक्त, अंदर एवं बाहर देवालयों से परिपूर्ण नगर केवल कहलाता है।

पुरः-

वह नगर जो जंगलों उद्यानों से सुशोभित हो, अनेकानेक लोगों के घरों से समन्वित हो, क्रय-विक्रय के लिये जाना जाता हो, वैश्यों की वाणी से संयुक्त हो एवं सप्त देवताओं के मन्दिरों से युक्त हो पुर कहलाता है।[34]

---

(34) मानसार (हिन्दी टीका)/अध्याय 10/1-11 /शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

नागरीः-

पुर यदि राज निलय से युक्त हो तो नागरी कहलाता है।

खेटः-

यदि कोई स्थान ऊँची दीवारों से युक्त हो, जहां शूद्रों के गृह हों तथा जो नदी या पर्वत के किनारे पर हो खेट कहलाता है।

खर्वटः-

चारो ओर पर्वतों से युक्त, नाना जाति के ग्रहों से समन्वित सब ओर गोचर भूमि से संयुक्त होने पर वह खर्वट कहलाता है।

कुब्जकः

वह भू-भाग जो खेट व खर्वट के बीच का हो, जो कि सभी प्रकार घरों से संयुक्त हो परन्तु वप्र से रहित हो कुब्जक कहलाता है।

पत्तनः-

वह नगर जो बंदरगाह के किनारे हो, विविध प्रकार की जातियों के घरों से युक्त हो, जहां व्यापारी वर्ग की अधिकता हो, लम्बाई में वप्र से समन्वित हो, रत्न, कर्पूर आदि का जहां अंतर्द्वीपीय क्रय-विक्रय केन्द्र हो पत्तन कहलाता है।

शिविरः-

जहां प्रत्येक सेना दस हजार सैनियों से समन्वित हो तथा अन्य राज्य की सीमा पर युद्ध की क्रिया में संलग्न हो ऐसे किले को शिविर कहा जाता है।

सेनामुखः-

वह नगर जहां बहुत सी सेनायें हों, विविध प्रकार के लोगों से युक्त हो तथा जहां राजमहल हो सेनामुख कहलाता है।

स्थानीयः-

ऐसा नगर जिसका राजमहल नदी के किनारे स्थित हो जो पर्वत से संयुक्त हो, बहुत सी रक्षा व्यवस्था से समायुक्त हो एवं जो हर प्रकार के सुख को देने वाला हो उसे स्थानीय कहा जाता है।

द्रोणः-

वह नगर जिसके उत्तर व दक्षिण में समुद्र से जुड़ी नदियां हो, जहां व्यापारी वर्ग के साथ-साथ अन्य लोगों का वास हो एवं जहां क्रय विक्रय के लिए नगर के तट पर ग्राहक आते हों वह द्रोण कहलाता है।

संविद्धाः-

वह नगर जो माहा ग्राम के निकट तथा क्षुद्रग्राम से संयुक्त हो तथा जिसमें उपजीवी ब्राम्हण रहते हों वह संविद्ध कहलाता है।[35]

(35) मानसार (हिन्दी टीका)/अध्याय 10/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

कोलकः-

यदि संविद्ध नगर महाराजा के गृह से युक्त हो तो कोलक कहलाता है।

निगमः-

ऐसा नगर जो द्विज आदि चारो वर्णो से तथा बहुकर्म करने वालों से युक्त हो निगम कहलाता है।

स्कंधावारः-

स्कंधावार वह स्थान है जहां राजाओं के लिए मंदिर होते हैं। जहां नदी के किनारे सुंदर बगीचे हों एवं नदी के तट पर बहुत से निवास गृह हों स्कंधावार कहलाता है।

चेरीः-

जब स्कंधावार में राजमहलों के पार्श्व में द्विजों (ब्राम्हणों एवं वैश्य) के निवास गृह हों तो वह चेरी कहलाता है।

3.5.5.3 नगर नियोजन का क्रमः-

मानसार के अनुसार सबसे पहले ग्राम या नगर का मान (Measurment) करना चाहिए। उसके पश्चात् वास्तु पद विन्यास करना चाहिए। इसके उपरान्त बलि कर्म करना चाहिए। तदुपरान्त ग्राम विन्यास करना चाहिए। फिर गृह-विन्यास करना चाहिए। इसके पश्चात् नींव रखना चाहिए एवं अन्त में गृह प्रवेश करना चाहिए।

3.5.5.4 नगर की अंर्त व्यस्था :-

नगरों की रथ्या एक से बारह तक एक-एक बढ़ाते हुए पूर्व से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण सम या विषम होनी चाहिए।

नगर नियोजन के विषय में मानसार के अध्याय 10/श्लोक - 57 में उल्लेख है कि ग्राम नियोजन के अनुसार ही नगर नियोजन किया जाना चाहिए। अतः अध्याय 9 में वर्णित नन्धावर्त ग्राम के आधार पर निगर नियोजन का विश्लेषण यहां किया गया है।

3.5.5.5 वास्तु पद विन्यास :-

जब ग्राम/नगर की लम्बाई के बराबर चौड़ाई हो तो पण्डित (64 पदीय) या मंडूक पद विन्यास करना चाहिए। जब लम्बाई चौड़ाई से अधिक हो तो परमशामिका(81 पदीप) पद विन्यास करना चाहिए। बराबर होने पर स्थण्डिल (49 पदीप) पदीप विन्यास करना चाहिए।

चंडित पद विन्यासः-

पंडित में मध्य के चार पद ब्रम्ह के कहलाते हैं। उसके बाहर क बारह पद दैवक, उसके भी बाहर के बीस पद मनुष्य कहलाते हैं। उसके बाहर के अठ्ठाइस पद पैशाच के कहलात हैं।[36]

---

(36) मानसार (हिन्दी टीका)/अध्याय 10/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

परमशायिका पद विन्यासः-

परमाशायिका में मध्य के 9 पद ब्रम्ह के, उसके बाहर के सोलह पद दैवक के, उसके बाहर के चौबीस पद मनुष्य, उसके बाहर के बत्तीस पद पैशाच कहे गये हैं।

स्थण्डिल पद विन्यासः-

स्थण्डिल में मध्य में एक पद ब्रम्हा का, उसके बाहर के आठ पद दैवक उसके बाहर के सोलह पद मनुष्य तथा बाहर के चौबीस पद पैशाच कहलाते हैं।

नगर का मार्ग विन्यासः-

पूर्व की रथ्या या मार्ग का उत्तर से प्रारम्भ य ा प्रवेश होना चाहिए तथा दक्षिण से निर्गम होना चाहिए।

दक्षिण के मार्ग का प्रवेश या प्रारम्भ पूर्व से तथा निर्गम पश्चिम से होना चाहिए।

पश्चिम की रथ्या का प्रवेश य ा प्रारम्भ दक्षिण से होना चाहिए तथा निर्गम उत्तर से होना चाहिए।

उत्तर की रथ्या का प्रारम्भ पश्चिम से तथा निर्गम पूर्व से होना चाहिए।

3.5.5.6 नगर में वीथियों (गलियों) की व्यवस्था:-

नगर में दो वीथियों जो कि दक्षिण से उत्तर की ओर जाती हैं या पूर्व से पश्चिम की ओर जाती हैं से नगर के दोनो पक्ष जो कि मूल से अग्र तक होते हैं, जुड़े रहते हैं। लम्बाई व चौड़ाई में दीर्ध रभ्या (मार्ग) होनी चाहिए।

महामार्ग तथा वीथी (गली) कंकर से युक्त होना चाहिए। कुछ रभ्या बड़ी या सभी रभ्या समान हो सकती है। वीथी की चौड़ाई तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, या बारह दण्ड होनी चाहिए। महामार्ग की चौड़ाई वीथी के मध्य का विस्तार महा रभ्या के समान होना चाहिए।[37]

3.5.5.7 नगर की वसति व्यवस्था:-

वैश्यों का निवास दक्षिण के प्रथम मार्ग पर होना चाहिए। चक्रवर्ती राजा का निवास (पश्चिम) वरूण पद में राजगृह मित्र,(पश्चिम) जयंत (ईशान) रूद्रणाय(उत्तर पश्चिम) के पद में होना उचित है। योद्धाओं का निवास भी यहीं होना चाहिए। उत्तर पश्चिम दिशा में क्लर्को (श्रीकरास) को बसाना चाहिए। असुर और शोष पद(पश्चिम) में मुख्य (सामंतो), मंत्रीगण एवं स्वामी भक्तों के निवास होने चाहिए। पश्चिम की ओर के पद सुग्रीव एवं पुष्पदन्त में पुरोहितों का निवास होना चाहिए। दौवारिक एवं सुग्रीव पद में रक्षकों या चौकीदार (Police) के घर होने चाहिए। गन्धर्व, रोग का शोष पद में वाद्य यंत्र बजाने वालों के घर होने चाहिए साथ ही नृत्य संगीत आदि के लिए हाल भी होना चाहिए।

वायु या नाग (उत्तर-पश्चिम) भाग में वास्तुकारों (स्थपतियों) के निवास होने चाहिए। नाग एवं मुख्य पद में नेत्र सज्जा एवं नेत्र अलंकरण का कार्य करने वाले (नेत्र रत्नकारों) लोगों का आवास होना चाहिए। उत्तर दिशा में कवच (Armor) बनाने वाले लोग रहने चाहिए।

अदिति एवं उदित भाग में चिकित्सकों या वैद्यौ आदि के निवास रखने चाहिए।[38]

---

(37) मानसार (हिन्दी टीका)/अध्याय 10/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

ईशान (उत्तर-पूर्व) या जयन्त पद में नगर के चौकीदार का घर होना चाहिए। (पूर्व) महेन्द्र पद में या सत्यक में कर्णिकारों का कहारों के निवास होने चाहिए। अतिथि शाला का स्थान म्रिश या अंतरिक्ष पद में होना चाहिए।

पूर्व के ओर की गलियों पर तेल का व्यवसाय करने वाले (तेलियों) के घरों की श्रृंखला होनी चाहिए। इसी ओर अन्य भवन भी होने चाहिए। पश्चिम की दिशा में मछुआरों के निवास की पंक्ति होनी चाहिए साथ ही मांस का कार्य करने वाले लोगों के आवास भी होने चाहिए। शिकारियों के घर दक्षिण की ओर होने चाहिए।

दक्षिण पूर्व (आग्नेय) या उत्तर पश्चिम (वायव्य) कोण में वस्त्र धोन वाले (धोबियों) के आवास होने चाहिए। दक्षिण या पूर्व के में नृत्य करने वाले लोगों के घर होने चाहिए।

उतर या दक्षिण पश्चिम में दर्जियों के घर होने चाहिए। यह योजना दूसरे आवरण की आवास योजना हुइ। तत्पश्चात वसति योजना के तृतीय आवरण (चक्र) का वर्णन किया गया है। दक्षिण में कर्मवारों के घरों की पंक्ति होनी चाहिए। उतर या दक्षिण में टोकरी निर्माण करने वाले लोगों के घर होने चहिये। पशिचम या पूर्व में हथियार बनाने वाले लोगों के घर होने चाहिये। उतर की ओर चर्मकारों के घरों की श्रंखला होनी चाहिये। शेष आवरणों में अन्य पकार से जीविका चलाने वाले लोगों की बसाहट होनी चाहिये।

3.5.5.7 देवालयों की स्थिति:-

विष्णु का मंदिर आर्य आदि चार पदों में नगर के चारों दिशाओं में अन्य आवशयक जगहों पर निर्मित करना चाहिए। अन्यथा विष्णु का मंदिर नगर के बाहर की ओर वांछित दिशा में बनाना चाहिये। विष्णु का मंदिर इन्द्र आदि चार पदों एवं राक्षस पद में भी बनाया जा सकता हैं। पूर्व में श्रीधर का मंदिर, दक्षिण में वामन देव का, पश्चिम में वासुदेव आदि, विष्णु या जर्नादन का उत्तर में, केशव या नारायण ग्राम के अंदर उत्तर पूर्व दिशा में, इच्छानुसार विष्णु की प्रतिमा, दक्षिण-पश्चिम या उत्तर पूर्व कोने पर नृसिंह एवं दक्षिण पूर्व कोने पर राम या गोपाल के मन्दिरों के निर्माण करने चाहिए। मित्र पद में विष्णु का मन्दिर तीन तल (मंजिल) का बनाना चाहिए। प्रथम तल (Ground Floor) पर विष्णु की प्रतिमा खड़ी अवस्था में होनी चाहिए। द्वतीय तल (First Floor) में प्रतिमा बैठी हुई अवस्था में होनी चाहिए। तृतीय तल (Second Floor) पर विष्णु की प्रतिमा लेटी हुई अवस्था में होनी चाहिए। दूसरे प्रकार के मंदिर निर्माण में ऊपरी मंजिल पर खड़ी अवस्था एवं निचले तल पर लेटी हुई अवस्था प्रतिमा की हो सकती है।

विद्वानों को विष्णु मंदिर का मुख्य द्वार वांछित दिशा में बनाना चाहिए। विष्णु मंदिर का मुख ग्राम की ओर होना चाहिए। नरसिंह मंदिर की पीठ ग्राम की ओर होनी चाहिए। जबकी नर सिंह लक्ष्मी के साथ हों तो मुख ग्राम की ओर ही होना चाहिए।

शिव का मंदिर ग्राम की विपरीत दिशा में रूद्र, रूद्रजय, इन्द्र, इन्द्रजय, आपवत्स, अपवत्स, सवित्र, सावित्र, ईश, जयंत, पर्जन्य आदि पदों में बनाना चाहिए। परन्तु जब पूर्व या पशिचम में शिव के मंदिर का निर्माण हो तो वह ग्राम की ओर मुख वाला होना चाहिए। अन्य मंदिरों के द्वार किसी भी दिशा में हो सकते हैं।

दौवारिक पद में अथवा कहीं अन्य स्थान पर समान कोण में (दक्षिण-पश्चिम) सुब्रहमण्य का मंदिर, जैनों एवं बौद्धों के मंदिर बनाने चाहिए।[38]

गणेश(विनायक) का मंदिर चारो दिशाओं के मध्य भाग में होना चाहिए। मार्गक (शिव का रूप) का

(38) मानसार (हिन्दी टीका)/अध्याय 9/82-157/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

मंदिर गंधर्व अथवा भृंगराज पद में बनाना चाहिए।

सरस्वती का मंदिर मुख्य अथवा भल्लाट पद में बनाना चाहिए।

लक्ष्मी का मंदिर अदिति या मृग पद में बनाना चाहिए। इसी भाग में भुवन देवी (पृथ्वी की देवी) का मंदिर बनाना चाहिए।

भैरव की प्रतिषण नगर की सुरक्षा के लिये नगर के द्वार के बाहर करनी चाहिए।

दुर्गा का मंदिर राक्षस या पुष्पदन्त में होना चाहिए

काली का मंदिर ग्राम के बाहर उत्तर की ओर होना चाहिए।

ग्राम/नगर से पूर्व या उत्तर में एक कोस दूर चंडालो (Under Takers) की बस्ती होनी चाहिए। इसके उत्तर में श्मशान (Cremation Ground) होना चाहिए।

नगर के बाहर उत्तर की ओर बुरी आत्माओं या प्रेत, भूत, अंश व दंडकों का वास होता है।

नगर ,ग्राम की सुरक्षा के लिए बाहर की ओर एक दीवार का निर्माण करना चाहिए। दीवार के बाद एक खाई का निर्माण करना चाहिए जिसे बाड़ या अहाता से घेर देना चाहिए।

3.5.5.8 नगर के महाद्वारः-

चारों दिशाओं के मध्य भाग में एवं चारों कोनो पर बड़े द्वारों का निर्माण करना चाहिए। ये द्वार नगर नियोजन के अनुसार बृत्तानुसार अथवा चौकोर हो सकतें हैं। ये सभी द्वार परकोटे के द्वार जुड़े होने चाहिए। ये बड़े द्वार पूर्व, उत्तर-पूर्व, दक्षिण-पूर्व, दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम, उत्तर-पश्चिम, एवं ठीक इसी प्रकार उत्तर में भी होना चाहिए।

पूर्व एवं पश्चिम के मुख्य द्वारों के ठीक बीचों बीच एक सीधी रेखा, खींचनी चाहिए ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि दोनो द्वार एक दूसरे के ठीक विपरीत हैं।

दक्षिण एवं उत्तर के द्वार विशेषत: एक ही स्थान पर होना चाहिए। विद्वान स्थपति को दक्षिण से उत्तर की ओर ठीक बीचो बीच एक सरल रेखा खींचनी चाहिए। इस रेखा के अंत में पूर्व की ओर एक हाथ छोड़कर दक्षिण मुख्य द्वार का निर्माण करना चाहिए उत्तर द्वार सरल रेखा के पश्चिम में एक हाथ छोड़कर बनाना चाहिए।

चारों दिशाओं में चार द्वारों का नर्माण अनिवार्य नहीं है, परन्तु पूर्व व पश्चिम में एक या दो द्वारों का निर्माण करना चाहिए। ग्राम या नगर की सबसे बाहर की चहारदीवारी में चारों कोनो पर द्वार का निर्माणा करना चाहिए।

3.5.5.9 नगर के उपद्वारः-

उपद्वार का लघु द्वारों का निर्माण नाग, मृग,अदिति, उदित पर्जन्य, अंतरिक्ष, पुषाण वितथ, गंधर्व, भृंगराज, सुग्रीव अथवा असुर पद में करना चाहिए। इन द्वारों का निर्माण विशिष्ट लक्षणों से युक्त होना चाहिए।

जल द्वार (Drains) -

जल द्वारों का निर्माण मुख्य, मल्लाट, मृग, उदित, जयन्त, महेन्द्र सत्य, या मृश पदों में करना चाहिए।[39]

---

(39) मानसार (हिन्दी टीका)/अध्याय 9/82-157 /शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

मण्डप (Tample Pavilion) -

मण्डप का निर्माण ब्रम्हा अग्नि या मित्र पद में करना चाहिए।

सभा स्थल (Public Hall) -

सभागृह का निर्माण भूधर या असुर में करना चाहिए।

इस प्रकार सम्पूर्ण नगर की वसति योजना पर बृहत् प्रकाश डाला गया है।[40]

3.6 राजमहल का वास्तु विन्यासः-

अग्नि पुराण के पूर्व भाग के अध्याय 106 में राजमहल के वास्तु विन्यास का वर्णन किया गया है।

पूर्व में:-

पूर्व दिशा में कोषागार होना चाहिए।

दक्षिण पूर्वः-

दक्षिण पूर्व में पाकशाला (रसोई) का निर्माण करना चाहिए।

दक्षिण पश्चिमः-

दक्षिण पश्चिम की ओर अस्त्रागार कराना चाहिए।

पश्चिमः-

पश्चिम दिशा में भोजनालय का निर्माण कराना चाहिए।

पश्चिमोत्तरः-

पश्चिमोत्तर दिशा में धन्यागार होना चाहिए।

उत्तरः-

उत्तर दिशा में द्रव्यागार होना चाहिए।

पूर्वोत्तरः-

पूर्वोत्तर का ईशान कोण में देवालय का निर्माण कराना चाहिए।

राजमहल को चतुःशाल, त्रिशाल, द्विशाल या एक शाल बनाना चाहिए।[41]

सार रूप में अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि भारत वर्ष में नगर नियोजन की परम्परा अति प्राचीन है। कालानुक्रम के अनुसार नगरों के विन्यास का विकास भी होता गया। नगर कई प्रकार के होने लगे। विविध प्रकार के प्रयोजनों से भी नगरों का निर्माण होने लगा - जैसे पत्तन (जहां समुद्र किनारे लोग व्यापार व्यवसाय के लिये आते हों) आदि।

---

(40) मानसार (हिन्दी टीका)/अध्याय 10/82-157/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर
(41) अग्नि पुराणम् /अध्याय 106/तारिणीश झा /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

3.7 अम्बिकापुर नगर का नगर नियोजन की दृष्टि से वास्तु - शास्त्रीय विश्लेषण

अम्बिकापुर नगर सरगुजा जिले का मुख्यालय है। अम्बिकापुर छत्तीसगढ़ प्रांत के उत्तरी छोर पर स्थित सरगुजा जिले का केन्द्र है।

3.7 .1 नगर की भौगोलिक स्थिति -

नगर का ईशान कोण (उत्तर-पूर्वी) नगर में अनुपातिक रूप से नीचे हैं। नगर के उत्तर-पूर्वी भाग से एक नदी प्रवाहित होती है। जल का प्रवाह पश्चिम से उत्तर की तरफ है। ये समस्त लक्षण वास्तु शास्त्र के मूल नियमों के अनुसार हैं। नगर के पूर्वी भाग में पर्वत श्रृंखला स्थित है।

किसी भी नगर या भू-भाग के पूर्व या उत्तर में पर्वत या उंचा भाग होना वास्तु सम्मत नहीं है। नगर का दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) भू-भाग खुला है। जहां अधिकांशतः कृषि योग्य भूमि है। आबादी या बड़े भवनों का निर्माण इसी ओर होना चाहिए। वास्तु के नियमों के अनुसार नैऋत्य भारी होना चाहिए। इस प्रकार भारी उद्योग इसी ओर स्थापित किये जाने चाहिए। नगर का उत्तर-पश्चिम (वायव्य) कोण वायु तत्व का होना चाहिए अर्थात इस भू-भाग में खुला स्थान, अतिथि गृह, बाग-बगीचे आदि होने चाहिए। दुर्भाग्य से वायव्य कोण में ही भारी उद्योग स्थापित किये गये हैं।

3.7 .2 नगर की मार्ग व्यवस्था -

नगर में मुख्य रूप से एक-दूसरे को समकोण पर विभक्त करते हुए दो मुख्य मार्ग हैं। इन्हीं दोनों मार्गों के दोनों ओर मुख्य बाजार भी अवस्थित हैं। प्रथम मुख्य मार्ग उत्तर-पूर्व से प्रारंभ होता है एवं दक्षिण-पश्चिम में जाकर समाप्त होता है। दूसरा मुख्य मार्ग पूर्व से प्रारम्भ होकर प्रथम मार्ग से गुजरते हुये उत्तर पश्चिम की ओर जाकर समाप्त होता है। अन्य मार्ग (उपरथ्याएं) भी महत्वपूर्ण हैं। एक मार्ग उत्तर से प्रारंभ होकर नगर के मध्य में स्थित चौक तक आता है। दूसरा मार्ग दक्षिण-पूर्व से प्रारंभ होकर मध्य चौक से जाकर मिलता है। अन्य अनेक मार्ग भी नगर में सुविधानुसार स्थित हैं।

3.7 .3 बाजार व्यवस्था -

नगर के दो मुख्य मार्ग जो कि पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण की ओर एक-दूसरे को प्रतिच्छेदित करते हुए गुजरते हैं के दोनों ओर हाट बाजार की व्यवस्था है। मुख्य बाजार में दुकानों का प्रवेश द्वार उत्तर एवं दक्षिण की ओर तथा पूर्व एवं पश्चिम की ओर है। वास्तु शास्त्रीय नियमों के अनुसार दक्षिण व पश्चिम का प्रवेश शुभ नहीं है। शोधार्थी द्वारा तैयार किये गये सर्वेक्षण प्रपत्र के आधार पर इनका विश्लेषण किया गया। निष्कर्ष रूप में यह प्रतीत होता है कि विशेषकर दक्षिण की ओर प्रवेश वाली दुकानों की स्थिति कुछ को छोड़कर अच्छी नहीं है। कतिपय ग्रंथों में यह उल्लेख है कि हाट बाजार में यदि प्रवेश द्वार एक-दूसरे के सम्मुख हों तो प्रवेश द्वार का दोष मुक्त हो जाता है।

नगर का नियोजन वास्तु शास्त्रीय ढंग से नहीं होने के कारण अलग-अलग प्रकार के व्यवसाय में लगे लोगों को उनके यथोचित स्थान पर नहीं बसाया गया है।

3.7 .3 नगर में उद्योगों का विन्यास -

नगर के उत्तरी-पश्चिमी (वायव्य) भू-भाग में भारी उद्योग परिसर का निर्माण शासन द्वारा कराया

गया है। तत्कालीन समय में काफी व्यवसायियों ने उद्योग-धंधे स्थापित किये। शोध सर्वेक्षण के निष्कर्षों से पता चलता है कि कुछ को छोड़कर अधिकांश उद्योग सुचारू रूप से नहीं चल पा रहे हैं। अधिकांश बंद हैं एवं घाटे में चल रहे हैं। नगर के नैऋत्य कोण (दक्षिण-पश्चिम) भाग में उद्योगों के लिए स्थान होना चाहिए। नगर का नैऋत्य खुला है जहां कृषि कार्य होता है। इस भाग में एक उद्योग लगाया गया है जिसकी प्रगति उल्लेखनीय है।

3.7 .5 नगर की वसति योजना -

1. राज्य के अधिकारियों-कर्मचारियों का निवास :

वैदिक वास्तु शास्त्र के अनुसार राज्य के कर्मचारियों-अधिकारियों हेतु नियत स्थान उत्तर-पश्चिम है। संदर्भित नगर में भी प्रशासनिक अधिकारियों का आवास इसी दिशा में है।

2. न्यायलयों/प्रधान सचिवों/दंडाध्यक्षों/कोष रक्षकों को स्थान :

इनका स्थान नियमानुसार पश्चिम दिशा में होना चाहिए। प्रतिदर्श के रूप में चयनित नगर में न्यायालय राज्य सरकार के प्रतिनिधि (कलेक्टर), कोषालय आदि सभी पश्चिम दिशा में ही स्थित हैं।

3. सेनाध्यक्षों का स्थान :

वैदिक वास्तु शास्त्र के अनुसार सेनाध्यक्षों का स्थान पूर्व दिशा में होना चाहिए। वर्तमान परिपेक्ष्य में सेनाध्यक्ष का अभिप्राय पुलिस कप्तान/उपकप्तान से लेना चाहिए। संबंधित नगर में इनका स्थान नियम से विरूद्ध पश्चिम में है।

4.स्वर्णकारों एवं लोहारों के स्थान :-

वास्तु के सिद्धांतों के अनुसार नगर के दक्षिण-पूर्व प्रदेश मूं स्वर्णकारों एवं लोहारों को बसाना चाहिए। संबिंधित नगर में भी स्वर्णकारों की दुकाने दक्षिण पूर्व भाग में ही हैं।

5.मनोरंजन से संबंधित लोग:-

नगर में वैश्या, नर्तकियों आदि का स्थान दक्षिण की ओर होना चाहिए। वर्तमान समय में इनका अभिप्राय थियेटर, छविगृहों आदि से लेना उचित होगा।अम्बिकापुर नगर के दक्षिणी भाग में दो प्रमुख छवि गृह आवस्थित हैं।

6.खाद्य पदार्थ बेचने वालों की स्थिति:-

वैदिक वास्तु के अनुसार नगर के उत्तरी-पूर्वी भाग में फल-खाद्य पदार्थ बेचने वालों का स्थान होना चाहिए। प्रतिदर्श के रूप में लिए गये नगर में सप्ताहिक एवं नित्य बाजार जहां अधिकांश खाद्य पदार्थ (फल,सब्जियां अनाज आदि)उपलब्ध रहते हैं उत्तर-पूर्व भाग में ही स्थित हैं।

7. विविध प्रकार की सेना, पुलिस हेतु स्थान:-

नगर के दक्षिण पूर्व में विविध प्रकार की सेनाओं हेतु स्थान होना चाहिए। आज के संदर्भ में जहां पुलिस लाइन(मुख्यालय) हो उसे ही तात्पर्यरूप में लेना उचित होगा। प्रतिदर्श के रूप में चयनित नगर मेंयह व्यवस्था विपरीत दिशा में अर्थात उत्तर पूर्व में है।

8. विद्या अध्ययन केन्द्र (कॉलेज, स्कूल आदि):-

नगर में दक्षिण पूर्व में विद्या अध्ययन का स्थान बताया गया है। संबंधित नगर में उत्तर-पश्चिम में

महाविद्यालय, विद्यालय अधिकाशत: विद्यमान हैं।

9. नगर में देवालायों की स्थिति:-

वास्तु शात्रानुसार नगर के पूर्वी दिशा में लक्ष्मी व कुबेर की अनिवार्य स्थापना करनी चाहिए। नगर की रक्षा के लिए ब्रम्हा , विष्णु व महेश आदि की भी स्थापना करनी चाहिए।

संदर्भित नगर में पूर्व दिशा में नगर की आराध्य देवी मां महामाया स्थित हैं। नगर के ब्रम्ह स्थान(मध्य) में ब्रम्ह मंदिर है वहीं पर थोड़ा उत्तर की ओर राम जानकी का मंदिर है। नगर के उत्तरी पश्चिम भाग में दुर्गा एवं गायत्री मंदिर हैं नगर में पूर्व की ओर गौरी एवं शंकर के मंदिर हैं।

10. श्मशान:-

नगर में श्मशान का स्थान दक्षिण की ओर बताया गया है दुर्भाग्य वशा नगर के ईशान कोण जहां देव तत्व(वास्तु पुरूष का सिर) होना चाहिए वहीं श्मशान की व्यवस्था की गयी है।

प्रतिदर्श के रूप में चयनित नगर में विपरीत परिस्थितियां:-

1. नगर में श्मशान गलत स्थान:-

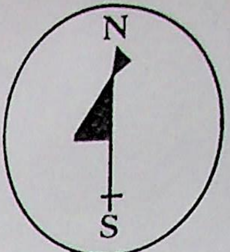
ईशान कोण में स्थित है जिसे दक्षिणा दिशा में स्थापित किया जाना चाहिए।

यहां यह उल्लेखनीय हे कि दक्षिण भारतीय परम्परा के मूल ग्रन्थ मानसार में श्मशान हेतु उपयुक्त स्थान उत्तर के पूर्व में बताया गया है।

2. नगर का मध्य भाग :-

ब्रम्ह स्थान में जल प्रदाय करने हेतु ओवर हेड टैंक निर्मित है। जबकी ब्रम्ह स्थान साफ सुथरा व बाधा मुक्त होना चाहिए। जल प्रदाय टैंक का स्थान दक्षिण या पश्चिम में होना चाहिए। ब्रम्ह स्थान साफ सुंदर एवं प्रदूषणा या गंदगी से रहित होना चाहिए जिसका सर्वथा अभाव है।

AMBIKAPUR TOWN MAP



To Pratappur
To Ramanujganj
Phoondurdihary
To Pratapur
Govt. Degree College
To Manendragarh
Namana Kala
To Bilaspur
Mission School
Church
Nawapara
Mission Chowk
School
Forest Colony
Irrigation Colony
P.H.E. Division
Marine Drive Tank
P.H.E. Store
P.W.D. Division
Forest Depot
Home Gaurd
D.J. Banglow
Veterinary Hospital
Police line Hospital
Shiv Temple
Control Room
Police Line
Bouri Bandh
Mission Hospital
Cultivated Field
Bhatti para
Collector Banglow
Weekly Market
Boy's H.S. School
Mayapur
Chandani Chowk
Girls College
Circuit House
Doordarshan
Petrol Pump
I.T.I.
A.J.K. Colony
Chopda para Block Office
Poly. Hostel
S.P. Banglow
Stadium
Gandhi Chowk
Civil Court
I.T.I. Hostel
Polytechnic
Press
Kali Kendr
Kedarpur
Collectrate
Jilla Panchayat
Sattipara
Church
Thana
M.P.E.B.
Gurudhuara
Mahamaya Chowk
Tank
L.I.C.
Maulvi Tank
S.B.I.
Bank
Mosque
Samlaya Mandir
Juna Bandh
Tank
Mahamaya Mandir
Hillock
Bus Stand
Post Office
Palace
Telecom Office
Koti-Ghar
Babupara
P.W.D. Division
Jail
Mission
Rani Tank
Basant Talkies
Agrasen Bhawan
Manipur
P.W.D. Rest House
District Hospital
Lady Hospital
Darripara
Bhathupara
Bilaspur Chowk
Kharsiya Naka
Ring Road

LEGEND

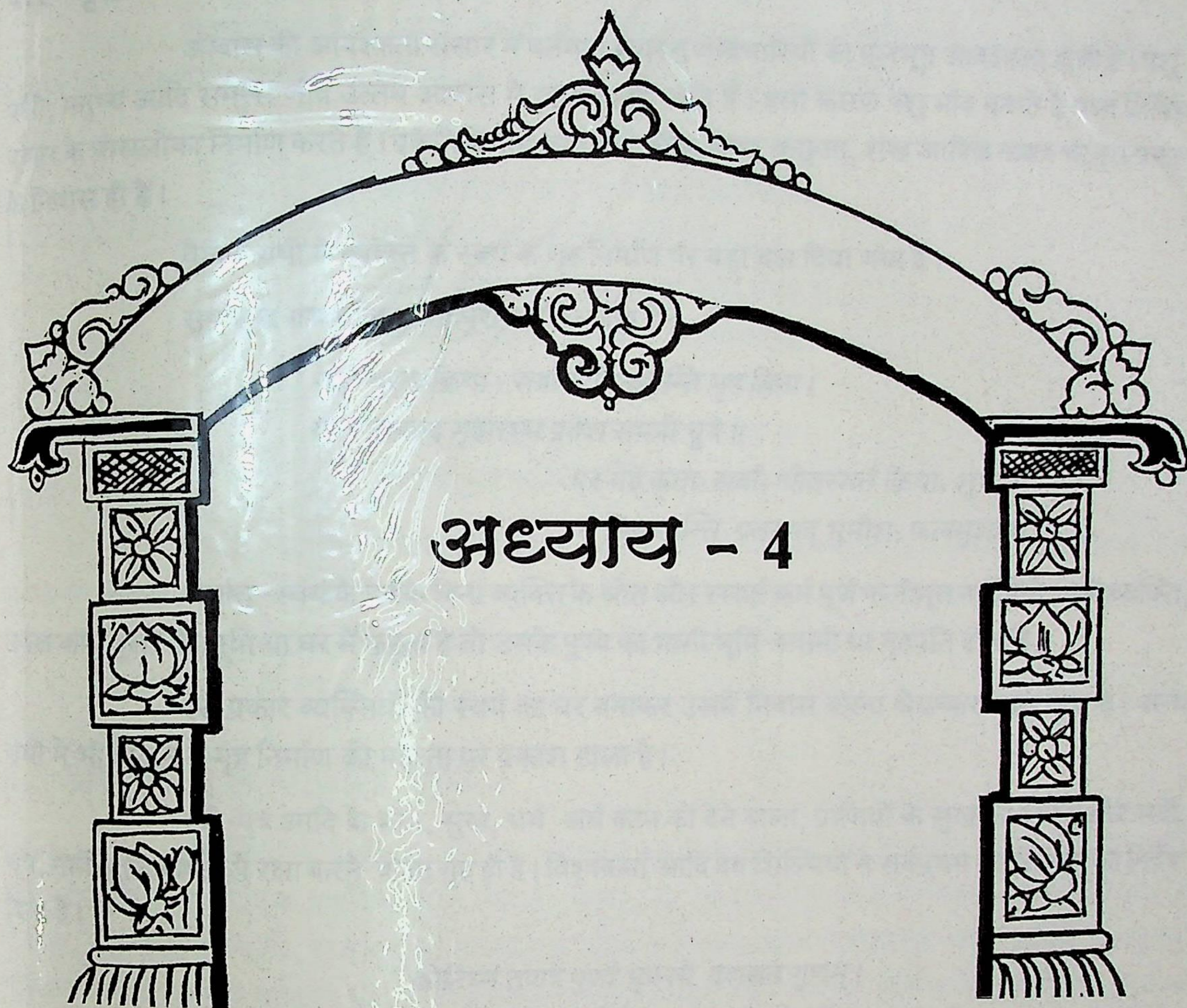
1- Town Road	═══
2- Municipal Boundary	– – –
3- Habitation	ΔΔΔΔ
4- Market	□□□□
5- Tank	▭
6- Zone-1	[ ]
7- Zone-2	[ ]
8- Zone-3	[ ]

REVISED AUGMENTATION OF AMBIKAPUR WATER SUPPLY SCHEME
PUBLIC HEALTH ENGINEERING DEPARTMENT
DIVISION - AMBIKAPUR

AMBIKAPUR TOWN MAP			SCALE 1:8000
A.E.	E.E.	S.E.	DRG.NO. 3

अम्बिकापुर नगर का नगर नियोजन की दृष्टि से मान - चित्र

A



वैदिक वास्तु शास्त्र और आदर्श गृह निर्माण



वैदिक वास्तु शास्त्र और आदर्श गृह निर्माण

4. वास्तु शास्त्र और गृहनिर्माण

4.1 गृह निर्माण की आवश्यकता -

आवास की आवश्कता संसार में वर्तमान समस्त जीवधारियों की मूलभूत आवश्कता होती है। पशु-पक्षी, मनुष्य आदि समस्त जीव उत्तम आवास में रहना पसंद करते हैं। इसी कारण पशु मांद बनाते हैं पक्षी विविध प्रकार के घोसलोंका निर्माण करते हैं। प्रकृति में पाये जाने वाले सीप, घेंघा, कछुआ, शंख आदिके कवच भी इस प्रकार के निवास ही हैं।

वैदिक ग्रथों में व्यक्ति के स्वयं के गृह निर्माण पर बड़ा बल दिया गया है।

सुप्रसिद्ध ग्रंथ भविष्य महापुराण में उल्लेख है-

" गृहस्थस्य क्रिया : सर्वा न सिद्धयन्ति गृह बिना।
यतस्तस्माद् गृहारम्भ प्रवेश समपौ ध्रुवे ॥
पर गेहे कृता: सर्वा: श्रौतस्मर्त क्रिया: शुभ: ।
न सिद्ध्यन्ति यतस्मद भुमीश: फलमुशनते ॥"

अर्थात् -स्वयं के घर के बिना व्यक्ति के श्रोत और स्मार्त कर्म पूर्ण फलीभूत नहीं होते। यदि व्यक्ति, उक्त कार्य दूसरे की भूमि या घर में करता है तो उसके पुण्य का भागी भूमि-स्वामी या गृहपति होता है।

इस प्रकार व्यक्तियों की स्वयं का घर बनाकर उसमें निवास करना श्रेयष्कर कहा गया है। अन्य ग्रंथों में भी विद्धान ने गृह निर्माण की महत्ता पर प्रकाश डाला है।

स्त्री-पुत्र आदि के भोग, सुख, धर्म, अर्थ काम को देने वाला, प्राणियों के सुख का स्थान और सर्दी, धूप, गर्मी आदि कष्टों से रक्षा करने वाला गृह ही है। विश्वकर्मा आदि देव शिल्पियों ने सर्वप्रथम गृह निर्माण का निर्देश दिया है। [1]

" कोटिघ्नं तृणत्रे पुण्यं भृण्नये दशसड गुणम्।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्त्यं फलं गृहे ॥"

अर्थात् - पर्णशाला बनाने से कोटि गुण, मिट्टी का घर बनाने से दस करोड़ गुण, ईंटका घर बनाने से सौ करोड़ गुण, और पत्थरों द्वारा घर बनाने से अनन्त गुण पुण्य लाभ होता है। [2]

नूतन गृह निमार्ण ही नहीं अपितु पुराने भवनों के जीर्णोद्धार से भी व्यक्ति पुण्य लाभ प्राप्त करता है। चाणक्य ने भी स्वयं का निवास गृह होने की आवश्यकता पर बल दिया है। वास्तव में पर गृह निवास स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान की दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है।

" पर सदननिविष्ट: को लघुत्व न याति "

इस प्रकार संतो विद्धानों ने मनुष्यों को स्वयं का गृह निर्माण कर उसमें धर्मयुक्त जीवन जीने का

---

(1) बृहत् वास्तुमालायाम / श्लोक 4/डॉ. ब्रम्हानंद त्रिपाठी/चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी
(2) बृहत् वास्तुमालायाम / श्लोक 5/डॉ. ब्रम्हानंद त्रिपाठी/चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी

उपदेश किया है।

4.2 भवन हेतु उपयुक्त स्थान और दिशा का चयन -

किसी भी स्थान पर गृह निर्माण प्रारंभ करने से पूर्व उस स्थान का विधिवत मूल्यांकन कर लेना चाहिए। भवन या प्रासाद हेतु स्थान के चयन में भविष्य महापुराण में विस्तृत वर्णन उपलब्ध है।

'' नगरे खर्वटे खेटे ग्रामे चापि क्रमागते।
यात्रावशाद्वा निवसे द्धार्मिकाधजनान्विते ॥
गरूणानुमतस्तत्र ग्रामण्यादिजनेन वा ।
प्रतिवेश्माद्य बाधेन शुद्धं कुर्या न्निवेशनम् ॥
द्वारचत्व शालानां सर्वकारूकवेश्मनाम्।
द्यूतसूना सुरावेशनटराजानुजा विनाम् ॥
पाखण्ड देव वीथीनां राजमार्ग कुलस्य च।
दूरात्सुगुप्तं कर्तव्य जीविका विभवाचिता ॥''

अर्थात् - धार्मिक जनों से युक्त खर्वट कस्क , खेट एवं ग्राम क्रमशः इन्ही में से किसी को निवास योग्य समझना चाहिए। इन स्थानों में से किसी एक में गुरूजनों की अनुमति तथा प्रमुख लोगों की सहायता से, पड़ोसियों को किसी भी प्रकार की असुविधा न देते हुए निर्दोष आवास का निर्माण करना चाहिए।(3)

4.3 आवास हेतु वर्जित भूमि -

व्यक्तियों को प्रवेशद्वार, चौराहा, राजभवन, सभी प्रकार के करीगरों के मकान , द्यूतकर्म में निरत रहने वाले लोगों के मकान, हिंसक प्रवृति वालों के निवास , वेश्या , नट एवं राजकर्मचारियों के निवास ,पाखण्डी लोगों के निवास , देव मंदिर की गली , राजमार्ग एवं राजकुल के लोगों के निवास स्थल से बहुत दूर अपनी शक्ति के अनुसार सुरक्षित जीविका बनानी चाहिये। गृहस्थ को छाजयुक्त, एक प्रवेशद्वार वाले भवन का निर्माण करना चाहिये। स्थल का चयन करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि चारों ओर सच्चरित्र लोगों का आवास हो विशेषकर पड़ोसी दुष्ट स्वभाव वाले न हों।(3)

4.4 उत्तम आवास हेतु उपयुक्त भूमि -

उत्तम भूमि की पहचान किस प्रकार की जाए इस हेतु भी वैदिक ग्रंथों में मार्गदर्शन किया गया है।

'' शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा स्निग्धा समा न सुषिरा च महीनराणाम् ।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुकगतानां धत्ते श्रियं किमुत शाश्वत मन्दिरेषु ॥''

अर्थात् - उत्तम जड़ी बूटियों से मुक्त , ढाक, पीपल आदि वृक्ष जहां पर हों, उत्तम बेलें जिस मिट्टी में उगती

(3) भविष्य महापुराण / खण्ड 1 / अध्याय 8 / श्लोक 8-11 / पं बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

हों, मिट्टी का स्वाद खारापन या लवण स्वाद न हो, थोड़ा मिठास हो, खुशबू आती हो, चिकनी मिट्टी हो।

भूमि ऊंची-नीची न हो तथा ठोस हो तो ऐसी भूमि यात्रियों तक को शान्ति देती है, तब ऐसी भूमि पर स्थिर गृह निर्माण करने वाले लोगों का तो निश्चित कल्याण होता है।[4]

समरांगण सूत्रधार के अनुसार - जो भूमि उपजाऊ हो, बहुतृण बहुत प्रकार के घास वाली हो,जो स्निग्धा हो तथा जिसका झुकाव उत्तर पूर्व या चारो ओर हो, जिसका उदर दर्पण के समान हो ऐसी भूमि प्रशंसनीय है।[5]

4.5 गृह निर्माण हेतुं वर्जित भूमि एवं फल -

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत्संहितानुसार यदि व्यक्ति के आवास के समीप मन्त्रालय या मन्त्रियों का निवास हो तो धन नाश । पड़ोसी यदि ठग या चालबाज हो तो पुत्र वध, मन्दिरके निकट घर हो तो मन में उद्‌विग्नता। चौराहे पर घर हो तो अपयश या बदनामी होती है ।

घर के निकट चैत्य वृक्ष हो तो ग्रहों का प्रकोप। वल्मीकी बांबी हो तो विपत्तियां। गड्ढा हो तो प्यास की अधिकता। यदि घर के पास कछुवे की पीठ के समान भूमि हो तो धननाश। चैत्य वृक्षों से तात्पर्य पीपल व बरगद से है ।[6]

" नदी श्रोत्रियों राजा दैवज्ञो न चिकित्सकः, तत्र वासो न कर्तव्य : ।।"

अर्थात् - वह स्थान जहां पर नदी, जलाशय , कूप आदि कर्मकाण्डी विद्वान, ज्योतिषी, गायक और चिकित्सक नहीं हो वहां आवास नहीं होना चाहिए।[7]

आज के संदर्भ में वह स्थान जहां वर्ष भर जल की उपलब्धता बनी रहे वैसे स्थान पर आवास करना चाहिए। इसी प्रकार -

" दुष्ट भार्या शठं मित्रं भृत्यश्योत्तर रूपकः ।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ।।"

दुःशीला पत्नी, मूर्ख मित्र, प्रत्युत्तरदायक सेवक और सर्प जिस घर में रहता हो वहां प्राणी अथवा गृहस्वामी की मृत्यु में कोई शंका नहीं होती।[8]

इसी विषय पर मानसार में भी चर्चा की गई है :

नृपप्रसाद संयुक्त सभा चैत्य समीपगा।
सकण्टतरोर (तरूणा) युक्ता द्रुमशाला संकुला।।

---

(4) बृहत्संहिता भाग-2 / अध्याय 5 / श्लोक - 86/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
(5) समरांगण सूत्रधार / अध्याय 20 / श्लोक 66-67/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली
(6) बृहत्संहिता भाग-2 / अध्याय 52/ श्लोक - 87-88/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
(7) भारतीय वास्तुज्ञान / पं जगदीश शर्मा / पृ.क्र. 2
(8) भारतीय वास्तुज्ञान / पं जगदीश शर्मा / पृ.क्र. 2

अर्थात् - राजा के महल से लगी हुई, सभा ,दैत्य के समीप , कांटे वाले वृक्षो से युक्त शाल वृक्षों से भरी हुई, कुर्म के समान वर्तुल, त्रिकोण वज्र के समान ,धुएं से अच्छादित कर्मशाला से घिरी हुईं भूमि का त्याग कर देना चाहिए। चौराहे की , दोराहे की, तिराहे की, नगर मार्ग की मृदंग के समान, झण(बड़ी मछली के समान) प्रभा (बिजली) के वृक्ष से युक्त चारो कोणो में साल वृक्षों से युक्त भूमि भी त्याज्य है।

इसी प्रकार जिस स्थान पर समाधि वृक्ष बहुतायात में हो , जहां सर्पो का आश्रय हो , साल वृक्ष के उद्यान वाली वराह , बंदर, गीदड़, जहां यदा कदा आते हों, जिसमें उल्लू ,सर्प, मछली आदि जीव पक्षी विशेष , बिल्ली , बड़े जानवर तथा क्षुद्र जंतु का निवास हो ऐसी सभी भूमि वास योग्य नहीं है। मधु , तेल, घी, जलने, के समान गंध वाली, दुर्गंध युक्त, अण्ड से उत्पन्न प्राणी, मछली, शव के गंध वाली भूमि त्याज्य है। इसी प्रकार बहु द्वार प्रवेश व वर्म विद्ध भूमि वर्जित है। यदि कोई व्यक्ति मोह के वशीभूत होकर ऐसी भूमि पर निर्माण कार्य करे तो ऐसे स्थान पर बुरी शक्तियों का प्रभाव हो जाता है। अतः भूमि चयन को प्राथमिकता देनी चाहिए।

इस प्रकार गृह निर्माण करने के लिए जो पहली आवश्यकता है वह है भूमि चयन उसके लिये उक्त समस्त परिस्थितियों पर भली प्रकार विचार विमर्श कर लेना चाहिए। भूमि क्रय करने के पूर्व उक्त स्थान पर जाकर पूर्व वर्जित परिस्थितयों के अनुसार भूमि का चयन करना चाहिए। क्योंकि यदि किसी स्थानपर वास्तु सम्मत निर्माण कराया जाये परन्तु वहां की परिस्थितियां विपरीत हों वहां निवास करने वाले लोग अनुकूल न हों तो वहां सुखपूर्वक निवास करना दुभर हो जाएगा।[9]

समरांगण सूत्रधार में भी उन भूमियों के विषय में चर्चा की गयी है जो पुर आदि के सन्निवेश हेतु व्याज्य है या अधम है।

इदानीमप्रशस्तानां भुवां लक्ष्माभिदध्महे।
पुरादिसन्निवेशार्थं परित्याज्य भवन्तिकः॥

जो भूमि भस्म, अंगार, कपाल एवं हड्डियों तुष, बाल, विष, चूहों के बिल, बांबियों एवं पत्थरों से भरी हुई हो वह त्याज्य है। इसी प्रकार रूक्ष (सूखी), नीची उपजाऊ, कटी-फटी, ऊसर उल्टे जल के प्रवाह वाली, कम वर्षा वाली, उबड़-खाबड़, बिना फल वाले पेड़ों से युक्त, हिंसक पक्षियों से व्याप्त तथा कीड़े-मकोड़े वाली भूमि नगर आदि के निवेश के लिए वर्जित है। ये भूमियां अधम भूमि कहलाती है।

जिस भूमि पर सरिताएं पूर्व की ओर बहती है वह भूमि भी पुर आदि के निवेश के लिए त्याज्य है। चर्बी, रक्त, मज्जा, पुरीष, मुत्र, मल, कोश, तेल एवं शव के समान वाली पृथ्वी भी वर्जित है। जो भूमि सदैव धूम्रवर्ण अथवा मिश्रवर्ण या विवर्ण या रूक्षवर्ण की हो वह भी कल्याण कारक नहीं है। जो पृथ्वी कडवी, कसैली, नमकीन, या पसीने जैसे स्वाद वाली हो उसको लोक कल्याण कारक नहीं समझकर पुरादि सन्निवेश में त्याग देना चाहिए। जो भूमि सदैव रूखे, तीखे, स्पर्श वाली , सदैव गर्म अथवा ठंडी हो ऐसी भूमि भी उपयुक्त नहीं है। स्यार , ऊंट , कुत्ता ,गद्दा, निर्झर के सदृश्य या टूटे बर्तनों के समान ध्वनी वाली भूमि भी कल्याणकारक नहीं है।[10]

4.6 हल कर्षण के द्वारा निकली वस्तुओं से शुभाशुभ परीक्षा -

---

(9) मानसार अध्याय 4/ श्लोक - 12/मानसार (हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(10) समरांगण सूत्रधार / अध्याय 10 / श्लोक 52-62/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली

हल कर्षण के दौरान यदि -

लकड़ी निकले तो -		अग्नि से भय
ईंट निकले तो	-	धनागमन
कंकड़ निकले तो	-	कल्याण
हड्डियां निकले तो	-	कुल का नाश
सर्प निकले तो	-	चोर का भय

समझना चाहिए।[11]

4.7 मृदा (भूमी) परीक्षण -

किसी भी स्थान पर निर्माण कार्य प्रारंभ करने व उस स्थान पर वास करने से पूर्व भूमि की भली प्रकार परीक्षण कर लेनी चाहिए। मत्स्य पुराण के अनुसार -

पूर्व भूमिं परीक्षेत पश्चवास्तुं प्रवल्पयेत्।
श्वेता, रक्ता, तथा पीता कृषवा चैवानुपूर्वशः ॥
विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्यं परीक्षण।
विप्राणां मधुरास्क्रज कटुका क्षत्रियस्य तु ॥
तित्तण कषाअ च तथा वैश्यशुद्रेषु शस्यते।
अरतनि भागे वै गर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः ॥

अर्थात् - सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा कर लेनी चाहिए। पश्चात् वास्तु की परिकल्पना करनी चाहिए। मुख्यतः तीन प्रकार से मिट्टी की परीक्षा करनी चाहिये।

4.7.1 रंग परीक्षणः -

चार प्रकार की मिट्टी उत्तम कही गयी है।

(1) स्वेत वर्ण की मिट्टी
(2) लाल वर्ण की मिट्टी
(3) पीले रंग की मिट्टी
(4) काले रंग की मिट्टी

ब्राम्हणों के लिए	-	स्वेत
क्षत्रिय के लिए	-	रक्त
वैश्य के लिए	-	पीत
शुद्र के लिए	-	काली

भूमि प्रशंसित कही गयी है।[12]

(11) समरांगण सूत्रधार / अध्याय 10 / श्लोक 52-62/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली

(12) मत्स्य पुराणम्/अध्याय 254 / श्लोक 11-13/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

4.7.2 स्वाद परीक्षण -

मिट्टी का परीक्षण स्वाद के अनुसार भी करना चाहिए

(1)	ब्राम्हणों के लिए	-	मधुर स्वाद
(2)	क्षत्रिय के लिए	-	कड़वे स्वाद
(3)	वैश्य के लिए	-	तिक्त स्वाद
(4)	शुद्र के लिए	-	कसैले स्वाद

वाले भूमि की प्रशंसा की गयी है।[13]

विश्वकर्मा प्रकाश नामक ग्रंथ में भी मृदा परीक्षण पर वर्णन किया गया है। विश्वकर्मा प्रकाश में भी मिट्टी के वर्ण के विषय में पूर्वानुसार ही वर्णन है।

स्वादानुसार भूमि के निम्न प्रकार है :-

ब्राम्हणी	-	मधुर
क्षत्रिय	-	कषैली
वैश्य	-	अम्ल (खट्टा)
शुद्र	-	तिक्त (चरपरी)

विश्वकर्मा प्रकाश में भूमि परीक्षा की एक अन्य विधि भी बतायी गयी है।

4.7.3 गन्ध परीक्षा -

ब्राम्हणी	-	सुंदर या सुवासित
क्षत्रिय	-	रक्त के समान गन्ध
वैश्य	-	सहत के सदृश्य गन्ध
शुद्र	-	मदिरा के समान गन्ध[14]

समरांगण सूत्रधार के अध्याय 10 में भूमि परीक्षा पर व्यापक चर्चा की गयी है।

देशश्च देशभूम्यश्च समासात तव सम्प्रति।
तत्संख्या तद्विभागश्च प्रोच्यन्ते ऽवहितः श्रृणु ॥

- देश और देश की भूमियां एवं उनकी संख्या और उनके विभाग का वर्णन किया गया है। जांगल, अनू, साधारण इन तीनो भेदों से देश - भेद कहलाता है।[15]

जांगल -

वह देश जहां पानी दूर हो, जहां रेत बहुतायत में हो जहां छोटे - छोटे कांटेदार पेड़ हो। जहां की वायु खुश्क गर्म और तेज चलती हो तथा मिट्टी काली हो उसे जांगल कहते हैं।

---

(13) मत्स्य पुराणम्/अध्याय 254 / श्लोक 11-13/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(14) विश्वकर्मा प्रकाश /अध्याय 1/ श्लोक 24-26 /खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई

(15) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 10/ श्लोक 1/द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/ मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली

अनूप -

जिस देश में पानी निकट हो, जो स्निग्ध हो, निम्न हो, शीतल हो और जहां मछलियां, मांस , नदियां, सुन्दर चिकने और ऊंचे वृक्ष हो वह अनुप कहलाता है।

साधारण -

जिस देश में जांगल व अनूप दोनो के लक्षण मिलतें हों और जो न अधिक ठंडा हो न गर्म उसे साधारण देश कहा जाता है।

इसके पश्चात् जांगल, अनूप एवं साधारण में विविध लक्षणों से युक्त सोलह प्रकार की भूमियों का वर्णन मिलता है। इन सोलह भूमियों का वर्णन इस प्रकार है।

(1) बालिश स्वामिनी -

जिस भूमि पर मद पुरूषों का निवास हो तथा जो भूमि बालिश राजा के द्वारा शासित हो उसे बालिश-स्वामिनी भूमि कहते है।

(2) भोग्या भूमि -

जहां सुन्दर कांति वाले पुरूष निवास करते हों तथा जहां के पुरूष अपनी पैदाकर का भाग भोग करने के बाद) अधिकतम दे देते हों उसे भोग्य भूमि कहते हैं।

(3) सीता - गोचर - रक्षिणी -

जिस भूमि पर पर्वत के मध्य में अथवा नदियां और नद पाये जाते हैं और जिसकी सीमा और क्षेत्रादि विभक्त हैं।

(4) अपश्रयवती -

जिस भूमि की सरिताओं, पर्वतों एवं वनों के मध्य मनुष्य बड़े भय से प्रवेश करते है और जो मनुष्यों के आश्रम के उपयुक्त न हो।

(5) कान्ता -

जहां पर्वत सरिताओं और कुन्जों से भूमि अच्छादित हो एवं जहां निवास करने के लिए मनुष्य लालायित रहते हों।

(6) खनिमती -

जिस स्थान पर सोना, चांदी आदि धातुएं सदैव पैदा होती हों, जहां नमक बहुतायत में मिलता हो उसे खनिमति भूमि कहते हैं।

(7) आत्मधारिणी -

वह भूमि जहां के लोग ठंड के भय, धन और नौकरी के प्रलोभन द्वारा भी वश में न किये जा सकें एवं जहां पर लोगों का निवास अत्यन्त कम हो आत्मधारिणी भूमि कहलाती है।[16]

(16) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 10/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

(8) वणिक- प्रसाधिता -

वह भूमि जहां पर वाणिक वर्ग की प्रधानता हो एवं बाजार में बेचने - खरीदने योग्य वस्तुएं निरन्तर प्रसिद्ध हों वणिक - प्रसाधिता भूमि कहलाती है।

(9) द्रव्यमति -

जिस भूमि पर शाक, अश्वकर्ण, खदिर (खैर), श्रीपर्णी, स्यन्दन, आसन, बांस, वेत्र, शर आदि वृक्ष पाये जाते हों द्रव्यमती कहलाती है।

(10) अमित्र - घातनी -

जिस स्थान पर जनपद ठीक प्रकार से विभक्त हैं तथा परस्पर लड़ाई - झगड़ा नहीं करते और जहां पर मित्र लोग परस्पर स्नेह रखते हैं ऐसी भूमि अमित्र- घातनी कहलाती है।

(11) अश्रेणी पुरूषा -

जो भूमि विनीत पुरूषों के द्वारा पूरित हो तथा जहां किले में बंद क्षुद्र कैदी न हों उसे अश्रेणी पुरूष कहा जाता है।

(12) देव मातृका -

जिस प्रदेश में लोग मेघादि की प्रतीक्षा न कर नदी आदि के जल से खेती करके निर्वाह करते हों उसे देव मातृका कहते हैं।

(14) धान्य -

जिस भूमि पर बीज बोने पर बिना प्रयास ही अधिक पैदा होते है तथा जहां जुते हुए खेत कभी बाढ़ आदि से नष्ट नहीं होते हैं उसे धान्य भूमि कहते हैं।

(15) हस्तिवनोपेता -

जिस भूमि पर हाथियों के वन पाये जाते हों और जो राजा की सैन्य क्षमता में वृद्धि करने वाले हों उसको हस्तिवनोपेता पृथ्वी कहते हैं।

(16) सुरक्षा भूमि -

जो भूमि विषम होने के कारण शत्रुओं के द्वारा काबू में न की जा सके और जो विषम पहाड़ों और नदियों के द्वारा रक्षित हो उसको सुरक्षा भूमि कहते हैं।

4.8 जनपद, खेटक, ग्राम एवं पुरों के विनिवेश हेतु उपयुक्त

4.8.1 भूमि के लक्षण -

जो भूमि शिलाओं एवं पर्वतों से घिरी हो तथा जो कुंओं, लताओं, गुल्मों, वृक्षों से ढ़की हो, जहां धातुओं के स्पन्दन हों ऐसी भूमि उत्तम कही गयी है। भूमि पर पवित्र मीठे जल कली नदियां हो जिनके किनारे चित्र विचित्र वृक्ष पाये जाते हों, जहां सुन्दर पक्षी, भौरें आदि गुंजायमान हो, जिस देश में पानी का अधिक्यि हो, जहां धान्य का उत्पादन करने वाली उत्तम भूमि हो, जो प्रदेश चारागाहों से सुशोभित हो।[17]

---

(17) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 10/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

जिनकी क्षेत्र सीमा विभक्त हो ऐसा प्रदेश की भूमि अत्यंत उपयुक्त मानी गयी है।

जो भूमि दुष्टों के द्वारा सतापी न जा सकती हो, जहां अनेक घरों का निर्माण हुआ हो, जहां किसी भी प्रकार का भय न हो, जहां मन खूब रमता हो ऐसी गुणों से युक्त भूमि पर या स्थान जनपद खेटक, ग्राम, पुरादि का विनिवेश करना श्रेयस्कर होता है।

4.8.2 दुर्ग के लिए उपयुक्त भूमि एवं दुर्ग के प्रकार -

दुर्ग के लायक चार प्रकार की भूमि प्रशस्त कही गयी है:-

(1) पर्वत (2) वन (3) जल (4) प्राकार

दुर्ग के मुख्य तीन प्रकार वर्णित हैं।

(1) गिरि दुर्गावनि -

पर्वतों पर स्थित भूमि जिस पर दुर्ग का निर्माण कराया जाता है।

(2) मूल दुर्गावनि -

जंगलों में दुर्ग का निर्माण करने के लिए भूमि ऐसी होनी चाहिए जिसका रास्ता गूढ़ हो, जहां पर कांटे वाले पेड़ हों और जलाशय पाये जाते हों।

(3) जल दुर्ग -

वह स्थान जाहां पर स्वादु जल वाले हाथों में अगाध जल भरा हो तथा जल के बाहर रमणीक प्रान्त - भूमियां दिखाई पड़ती हों।

4.8.3 ब्राम्हणादि वर्णों के लिए प्रशंसनीय भूमि -

जो भूमि चन्दन, इलायची, अगरू, कुंकुम, कपूर के मिश्रित रूप में अथक अलग-अलग सुगन्धित हो। जो कमल, रक्त कमल, मालती आदि स्थल व जल में पैदा होने वाले पुष्पों से सुगन्धित हो। जो गो मूत्र, गोमप, दूध, दही शहद आज्प (यज्ञ-सामग्री), आदि की गन्ध धारण करने वाली हो। जो मदिरा माध्वीक (एक प्रकार की अंगूरी सुरा), गजमद एवं आसवों के समान गन्ध वाली हो तथा जो धान के सुगन्धों से सुगन्धित भूमियां हैं वे ब्राम्हणादि आदि सभी वर्णों के लिए निवेश्य हैं।

भूमि परीक्षा के मापदण्ड:-

(1) वर्णानुसार :-

सफेद	-	ब्राम्हण
लाल	-	क्षत्रिय
पीली	-	शूद्र
काली	-	वैश्य [18]

(18) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 10/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स, दिल्ली

(2) स्वादानुरूपः-

मीठी	-	ब्राम्हण
कसैली	-	क्षत्रिय
तीखी	-	वैश्य
कड़वी	-	शूद्र

अन्यथा मीठी सबके लिए उपयुक्त है।

(3) स्पर्शानुसार :-

जो भूमि ग्रीष्म ऋतु में ठंडी महसूस हो एवं शीत ऋतु में गर्म मालूम हो और वर्षा ऋतु में गर्म एवं ठंडी दोनो मालूम पड़े वह भूमि प्रशस्त कही गयी है।

(4) शब्दानुरूप :-

जो भूमि मृदंग, वल्लकी(वीणा),वेणु, डुन्दुनि की ध्वनी का आभास देती है एवं जिसकी ध्वनी हाथी, घोड़े या समुद्र के समान होती है उपयुक्त कही जाती है।[19]

मानसार के अनुसार भिन्न - भिन्न जातियों के लिये भूमि परीक्षण अलग - अलग होता है।

ब्राम्हणों के लिए :-

ब्राम्हणों के लिए वर्गाकार, सफेद रंग, गूलर के वृक्षोंसे युक्त, उत्तर की ओर झुकी हुई , मधुर गंध तथा कषाप स्वाद वाली भूमि श्रेष्ठ है।

राजा (क्षत्रिय)के लिए :-

राजा के लिए चौड़ाई से आठ अंश अधिक लंबाई वाली, लाल रंग युक्त, पीपल के वृक्षों वाली, पूर्व की ओर ढ़ाल वाली, तिक्त स्वाद वाली भूमि श्रेष्ठ होती है। तथा भूमि संपत्ति देने वाली होती है।

वैश्यों के लिए :-

वैश्यों के लिए भूमि की लंबाई, चौड़ाई से कम से कम षष्ठांश अधिक होनी चाहिए, पीले रंग वाली प्लाक्ष (पाकड़) वृक्षों से युक्त, पूर्व की ओर ढ़ाल वाली स्वाद में खट्टी (अम्लीय) भूमि शुभ है। ऐसी भूमि सभी सिद्धियों की प्रदाता होती है।

शूद्रों के लिए :-

वह भूमि जिसकी लंबाई चौड़ाई से चतुर्यांश अधिक हो, वह वृक्ष से युक्त, काले रंग की , स्वाद में कड़वी, पूर्व में प्लव वाली भूमि शुद्रों के लिए शुभ है।

भूमि के इन चार प्रकारों में प्रथम दो उत्तम तथा शेष दो मध्यम है।[20]

---

(19) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 10/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

(20) मानसार /अध्याय 3/श्लोक - 9 -17/मानसार (हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

दक्षिण व पश्चिम में ऊंची भूमि जो वर्गाकार हो देवताओं व मनुष्यों के लिए शुभ है। तुरंग (अश्व), हाथी, वेणु (बांस), साक, दुंदुभि, गाय, अभि (नाग जाति), कमल के बीज पाटली पुष्प के सुगंध वाली, सर्व बीज को उपजने वाली एक वर्णवाली बहुत कोमल स्निग्ध एवं स्पर्श में सुख देने वाली , श्री वृक्ष , नीम, अशोक, सप्तपर्णीका आम , विकवृक्ष समतल श्वेत लाल पीली (सुनहरी) काली का कबूतर के रंग वाली षट्कोण आकार वाली भूमि सभी संपत्ति को देने वाली होती। दक्षिण की ओर जल निधि से घिरी हुई, देखने में नीली व मनोहर तथा कृमि, दीमक, चूहे, कपाल , अस्थि, छिलके, रेत, रंध्र से रहित भूमि शुभ है। जो भूमि तुषा रहित राख रहित, पत्थर व रेत से रहित तथा शूल और स्थाणुओं से धारण की हुई हो वह ब्राम्हणादि वर्णो के लिए संपदा देने वाली होती।[21]

4.8.4 मृतिका परीक्षण -

भूमि परीक्षण के बाद मृतिका का परीक्षण भली प्रकार करना चाहिए। शुभ दिन तय कर, स्वेत माला एवं वस्त्र धारण कर ब्राम्हणों से स्वस्ति वाचन कराके साथ ही वास्तुदेव की पूजाकर भूमि के मध्य भाग में एक हाथ नापकर गड्ढ़ा खोदना चाहिए फिर इस मिट्टी को निकालकर इसी मिट्टी से उस गड्ढ़े को भरना चाहिए। इस प्रकार यदि मिट्टी गड्ढ़े के भरने से अधिक रहजाये तो भूमि उत्तम यदि बराबर हो तो मध्यम और यदि गड्ढ़े से मिट्टी कम हो जाए तो अधम भूमि कहलाती है।

यदि खुदाई करने पर (गड्ढ़े को) मिट्टी के अंदर यदि मणि, शंख, प्रवाल आदि हों तो पृथ्वी को अत्यंत प्रशस्त समझना चाहिए यदि खोदने पर मिट्टी में रंच मात्र भी भूसी , बाल, कंकड़ , अंगार भस्म , हड्यिांनहीं दिखलाई पड़ती तो ऐसी भूमि श्रेयस्कर कही गई है। मृतिका परीक्षण की अगली प्रक्रिया में भूमि के मध्य में एक हाथ प्रमाण का गड्ढ़ा खोद कर उसे पानी से भर के सौ कदम चल कर लौट आना चाहिए।यदि पानी यथावत रहे तो उस भूमि को सार्वकामिकी आर्थात् समस्त इच्छओं को पूर्ण करने वाली कहा गया है। यदि पानी कम हो जाए तो उसे मध्यम श्रेणी की भूमि कहा गया है। यदि पानी अत्यंत न्यून हो जाये तो उसे अधम भूमि कहा गया है।

मृतिका परीक्षण की अगली विधि के अनुसार गड्ढ़े की उत्तरादि दिशाओं में दीपों को जलाकर रखना चाहिए जिस दिशा का दीपक अधिक समय तक जलता रहे उस दिशा के वर्ण के लिए वह भूमि सुखप्रद मानी गयी है।

इसी प्रकार एक अन्य विधि में यदि गड्ढ़े में ब्राम्णादि वर्णानुसार क्रमशः सफेद, लाल , पीली वाली मालायें यदि रखी जायें एवं जिस वर्ण की माला न मुर्झाये उस वर्ण के लिए वह भूमि लाभदायक होती है। उक्त वर्णित जो शुभ भूमि है वह खर्वट, ग्राम तथा खेट , ब्राम्हादि वर्णो के भवनों के लिए राजाओं के शिविरों के लिए, देव मंदिरों के लिए तथा यज्ञ वाटों के लिए भी शुभप्रद मानी गयी है।[22]

इसी प्रकार मानसार में भी मृतिका परीक्षण पर प्रकाश डाला गया है। भूमि पर प्रवेश करते समय योग्य शिल्पी शुभ मुहूर्त में निम्न मन्त्र का वाचन करवाये।

गच्छन्तु सर्वभूतानि राक्षसा देवता अपि।
अस्मत्स्यानातरं मनात्कुर्मात्पृथ्वी परिग्रहम् ॥

---

(21) मानसार/अध्याय 4/ श्लोक 1 - 21./(हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(22) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 10/66-70/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

अर्थात् - इस जगह रहने वाले सभी जीव राक्षस तथा देवता भी अन्यत्र चले जाएं और वहां अपना निवास बनायें। तत्पश्चात् कुंभ का परिग्रह कर, उसे मिट्टी से भरके उसमें सर्व बीज डाल कर उपर से गोबर की खाद डाल कर अंकुरण देखना चाहिए।उस भूमि पर गाय, बैल तथा नया बछड़ा भी लाना चाहिए। शुभ दिन व शुभ मुहूर्त देखकर विद्वान ब्राम्हण से सर्व मंगल हेतु द्रव्याह वाचन करवाना चाहिए।[23]

मृदा परीक्षण हेतु एक हाथ का वर्गाकार गड्ढ़ा खोदना चाहिए। तत्पश्चात् उसे समान रूप से जल से भर देना चाहिए। इसके पश्चात् रूपवती अंबिका की पूजा अर्चना करके वापी के समीप पवित्र मन से आसन पर बैठ के श्रद्धा पूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये।

महाक्षोणि विवर्धस्व धान्यैश्च साधनैरपि।
उत्तमं शुष्कमास्आय मंगल भवते (त्वै) नमः ॥

अर्थात् - महान पृथ्वी धान्य व साधन की वृद्धि करे वह उत्तम व शुष्क रह कर हमारे लिए मंगलमय हो मैं उसे नमन करता हूँ। इस प्रकार मंत्र जप कर क्रमपूवंक उपवास करना चाहिए।

प्रातः स्थापित के समय गड्ढ़े का परीक्षण करना चाहिए। यदि उसमें कुछ जंल शेष रहता है तो वह भूमि मंगलमय है। जल यदि शोषित हो जाये तो धन-धान्य का क्षय करने वाली होती है। यदि कुछ गीली हो तो विनाशकारी होती है। यदि गड्ढ़े से निकली मिट्टी को वापस गड्ढ़े में डाला जाय तो गड्ढ़ा बराबर भर जाय तो भूमि मध्यम होती है। यदि मिट्टी कम पड़ जाये तो भूमि अधम और यदि मिट्टी अधिक हो जाये तो भूमि को उत्तम समझना चाहिए।[24]

मत्स्य पुराण में भी मृतिका परीक्षण पर प्रकाश डाला गया है।

भूमि की परीक्षण हो जाने के बाद एक हाथ का विस्तृत एक गड्ढ़ा खोद कर उसे चारो ओर से भली भांति लीपपोतकर स्वच्छ कर दें। इसके बाद एक मिट्टी का नया दीपक घृत से भर के उसमें चार बत्तियां जलाकर रखनी चाहिए। बत्तियां इस प्रकार की हों कि वे चारो दिशाओं में इंगित करें।

यदि पूर्व दिशा की बत्ती अधिक काल तक जलती रहे तो वह ब्राम्हणों के लिए श्रेष्ठ होती है यदि दक्षिण दिशा की बत्ती अधिक समय तक जलती रहे तो क्षत्रियों के लिये शुभ है। इसी प्रकार यदि पश्चिम की ओर की बत्ती अधिक देर तक जलती रहे तो वैश्यों के लिए शुभदायक है। यदि उत्तर दिशा की बत्ती अधिक समय तक जलती रहे तो शुद्रों के लिए कल्याणकारक होती है। यदि सामूहिक रूप से दीपक की चारों बत्तियां बराबरसमय तक जलती रहे तो प्रसाद एवं साधारण गृह दोनों के निर्माण के लिये वहां की भूमि चारों वर्णो के लिये कल्याणकारक है।

अगले विधि में मिट्टी को गड्ढ़े में भर कर परीक्षण की जाती है जिसका परिणाम पूर्व में वर्णित ग्रंथो के सदृश ही हैं।

मृदा परीक्षण की अगली विधि में भूमि की हल द्वारा जुताई करके उसमें सभी प्रकार के बीजों को बो देना चाहिए। यदि वे बीज तीन दिन में उग आतेहै तो वह भूमि उत्तम है। यदि पांच दिन में उग आये तो मध्यम यदि सात दिन में उग आये तो भूमि कनिष्ठ होती है। कनिष्ठ भूमि निर्माण कार्यों हेतु सर्वथा वर्जित है।[25]

---

(23) मानसार/अध्याय 5/ श्लोक 3./(हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(24) मानसार/अध्याय 5/ श्लोक 15-16/(हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान

(25) मत्स्यपुराण। अध्याय 253 श्लोक 11-18 तक/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

4.9 भूमि में शल्य विचार :-

शल्य ज्ञान वास्तु का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी क्षेत्र है।

गृहारम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते।
शल्यं व्वपनयेत्तत्र प्रसादे भवने तथा।।
सशल्यं भयदं पस्मादशल्यं शुभादयवम्।

अर्थात् ग्रहारम्भ के अवसर पर गृहपति के जिय अंग में खुजली उठे वास्तु के उसी अंग के स्थान पर गड़ी हुई शल्य अथवा कील आदि को निकाल देना चाहिए। क्यों कि - शल्य समेत वास्तु की पूजा अनिष्टकारी मानी गई है। जबकी अशल्य वास्तु की पूजा कल्याण कारिणी है। इस प्रकार शल्य को बाहर निकालकर भूमि की शुद्धि करके निर्माण प्रक्रिया को आगे बढ़ाना चाहिए। जिस देवता को आहुति देते समय अपशकुन का अग्नि में विकार उत्पन्न हो उस देवता के पद में शल्य उपस्थित होता है भूमि के अन्दर बाल, कोयला , अस्थि लकड़ी आदि शल्य की श्रेणी में आते हैं।

भूमि में यदि निर्माण प्रक्रिया के समय निम्न का शल्य (अस्थि) रह जाये तो उसका परिणाम इस प्रकार होता है :-

शल्य	परिणाम
गाय	राजा का भय
घोड़ा	रोग
कुत्ता	क्लेश
गद्या व ऊंट	संतान का नाश
मनुष्य व बकरा	अग्नि का भय
काष्ट (लकड़ी)का शल्य	धनहानि
अस्थि का शल्य	रोग भय
कपाल व केश	मृत्यु
कोयला	चोर भय
भस्म	अग्नि भय

शल्य को ज्ञात करके उसे भूमि से निकाल कर उस भूमि को वैदिक रीति से पवित्र करके शुद्ध करना चाहिए।[26]

4.10 आदर्श गृह में कक्ष नियोजन -

आदर्श गृह निर्माण के लिये उसके अन्दर के कमरों का ठीक प्रकार से विन्यास अति आवश्यक होता है। विभिन्न ग्रन्थों में कक्ष नियोजन पर व्यापक प्रकाश डाला गया है।

1. अग्नि पुराणम -

अग्नि पुराणम् के मतानुसार गृह में कक्ष नियोजन इस प्रकार इस प्रकार होना चाहिए।

---

(26) मत्स्यपुराण / अध्याय 253 / श्लोक 49-50/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(क) पाठशाला :-

पाठशाला घर के दक्षिण पूर्व कोने में होनी चाहिए।

(ख) शयन कक्षः-

शयन कक्ष दक्षिण दिशा में बनना चाहिए।

(ग) अस्त्रागार :-

अस्त्रागार का स्थान भी दक्षिण में होना चाहिए।

(घ) उत्तम धनः-

उत्तम धन अम्बुपेश नामक देवता के नाम से प्रसिद्ध कक्ष में रखना चाहिए।

(ङ) सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्पमालाः-

सुगन्धिति द्रव्य एवं पुष्पमाला आदि को पश्चिम कोण पर स्थित कमरे में रखना चाहिए।

(च) पशुओं का स्थान :-

पशुओं को उत्तर दिशा में स्थित कमरे में रखना चाहिए।

(छ) दीक्षा हेतु कमरा :-

दीक्षा ग्रहण करने के लिए पूर्व दिशा का कमरा उपयुक्त है।[27]

2. मत्स्य पुराण –

मत्स्य पुराण में भी कक्ष विन्यास हेतु मार्गदर्शन किया गया है।

ईशाने देवतागारं तथा शान्तिगृहं भवेत् ॥
महानसं तथाऽऽरनेये तत्पार्श्वे चोत्तरे जलम्।
गृहस्योपस्करं सर्वं नैर्ऋत्ये स्थावमेद् बुधः ॥
बन्धस्आनं बहिः कुर्मात्स्नान मण्डपमेव च।
धनधान्यं च वापत्पे कर्मशालां ततो बहिः।
एवं वास्तुविशेषः स्याद्गृहमर्तुः शुभावतः ॥

अर्थात् -

(1) देवस्थान /शांति गृह :-

घर के ईशान कोण (पूर्वोत्तर)में देव गृह का शान्ति कक्ष होना चाहिए।

(2) रसोईघर :-

अग्नि कोण में रसोई घर होना चाहिए।[28]

---

(27) अग्नि पुराण /अध्याय 105/श्लोक 28-31. /तारिणीश झा /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(28) मत्स्यपुराण / अध्याय 256 / श्लोक 33-35/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(3) जल का स्थान:-

उत्तर दिशा में जल का स्थान होना चाहिए।

(4) घरेलू सामग्रियों का स्थान :-

घर के नैऋत्प कोण में घरेलू सामग्रियों को रखने का स्थान बनाना चाहिए।

(5) पशु/स्नानागार :-

स्नानागार एवं पशुओं के बांधने का स्थान घर के बाहर होना चाहिए।

(6) अन्नागार :-

घर के वायव्य कोण में अन्न आदि रखने का कक्ष होना चाहिए।

(7) कार्यशाला :-

कार्य करने की शाला भी घर के बाहर होनी चाहिए।

इस प्रकार बना भवन स्वामी के लिए सुखकारी व मंगलकारी होता है।[29]

3. मानसार :-

सुप्रसिद्ध ग्रंथ मानसार में कक्ष नियोजन या भवन नियोजन का आधार दिशाओं पर निर्भर न होकर वास्तु पद विन्यास में अवस्थित देवताओं की स्थिति पर आधारित है।

सर्वप्रथम शिल्पी - ग्राम, नगर पत्तन, खेटक ,वन,आश्रम नदी किनारे तथा पर्वत के पार्श्व आदि में से किसी एक का चयन करे इन्हीं में से किसी एक में भवन का निर्माण करना चाहिए।

गृह की माप :-

गृह की लम्बाई चौड़ाई से सवा डेढ़, पौने दो, दो, सवा दो, ढ़ाई, पौने तीन, तीन, सवा तीन, पौने चार या चार गुना होनी चाहिए।

वास्तु पद विन्यास :

गृह की लम्बाई व चौड़ाई में परमशापिका (81) पद का विन्यास करना चाहिए। ब्रम्ह स्थान छोड़कर अन्य स्थान निवास योग्य है।

ब्राम्हण :-

आर्य, विवस्वत, मित्र, भूधर,इन पदों पर ब्राम्हणों का आवास होना चाहिए।

राजा:-

राजाओं के मुख्य गृह विवस्वत, मित्र और भूधर पदों में बनवाना चाहिए।

उक्त वर्णित पद शेष जातियों के लिए शुभ नहीं है। आपवत्स आदि आठ पद अन्य वर्णों के निवास हेतु हैं।[30]

---

(29) मत्स्यपुराण / अध्याय 256 / श्लोक 33-35/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(30) मानसार/अध्याय 36/ श्लोक 1-47/(हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

इन्द्रादि (चर दिशाओं में) ब्राम्हणों का आवास होना चाहिए जबकि यम व वरूण में क्षत्रियों का वास होना चाहिए। वरूण व सोम पद वैश्यों के वास हेतु हैं। नैऋत्य , सोम, ईश शुद्रो के वास के योग्य है। वायव्य व अग्नि सबके वास के योग्य है। उत्तर, ईशान एवं पर्जन्य रसोई के लिए निश्चित है।

अन्तरिक्ष अग्नि पूषाण सबके लिए कूप (कुआं) के योग्य है। यम एवं नैऋत्य सबके लिय भोजनालय के योग्य है। वायव्य ब्राम्हणों के देवताओं के लिए भोजन का स्थान है। अदिति ईश तथा पितृ देवताओं के लिए अर्चना (पूजन) का स्थान है। भल्लाट तथा मृग ब्राम्हण की गृहणी के वास योग्य है गन्धर्व भृंगराज मृग, अन्तरिक्ष इन सब में रानी का निवास होना चाहिए।

पुष्प दन्त व उसके कोण में आयुध भण्डार एवं मण्डप होना चाहिए। वरूण, असुर, नाग, मुख्य ,पर्जन्य, सोम पदों में वैश्य व अन्य वर्णों की पत्नी का स्थान है। सत्य व अन्तरिक्ष पद में सबके शयन का स्थान है शोष, असुर वरूण सबके लिए वासनालय का स्थान है।

सोम व मृग पदों में सुवर्ण (सोना) का रत्न रखने का स्थान है। नाग ब्राम्हणों के लिए हवन का स्थान है। अदिति सबके लिए स्नान का स्थान है। यम व नैऋत्य पद में कोचवान, गाड़ी वाले का अधुनिक युगानुसार ड्रायवर का निवास बनाना चाहिए। इन्द्र व महेन्द्र पद में नौकरों (भृत्यों) का निवास होना चाहिए। ईशान के बाहर अनुचर का आवास होना चाहिए।

गौशाला :-

पूषण व वितअ में गौओं का स्थान उचित है।

द्वार के बांई वाहन का स्थान है ब्रम्ह स्थान के समीप विवाह के लिए मण्डप का स्थान है आप एवं आपवत्स में नवजात शिशु को देखने का स्थान है।

पुत्रियों का स्थान:-

रूद्र व रूद्र जय पद में लड़कियों के लिए कमरा होना चाहिए।

पुत्रों का आवास:-

सवित्र और सावित्र में पुत्रों के लिए आवास होना चाहिए।

विद्या अभ्यास का स्थान:-

मृग पद में विद्या अध्यन के लिए स्थान होना चाहिए। मृग के बाहर स्नान से पूर्व शरीर में तेल लेपन करना चहिए। चाहर-दीवारी के उत्तरी पूर्वी कोण पर लोगों के बैठने (देखने -सुनने)के लिए मण्डप का निर्माण करना चाहिए विलासिता हेतु निर्माण कक्ष का निर्माण उत्तर में सोम पद में करना चाहिए। मृग का मुख्य पद में स्वभाव वाले व्यक्तियों का कक्ष होना चाहिए। सखियों (Female Companition) का अनुचरों का आवास अग्नि , पूषा, सत्य एवं महेन्द्र पदों में करना चाहिए। द्वार (Gate) के दाहिनी तरफ चौकीदार (Police Guard) का आवास होना चाहिए। इसी स्थान पर सैनिकों के परिवार के लोगों का भी आवास होना चाहिए। दक्षिण की ओर गृहक्षत एवं यम पद में रानियों का महल होना चाहिए। गन्धर्व एवं भृंगराज पद में ऐसी कुमारियों (Princess) का महल होना चाहिए जो केवल चांदनी (रात्रि)में ही अंत:पुर से निकलती है। इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम के वृष पद में ऐसी कुमारीयों (Beauties) का आवास होना चाहिए जो केवल दिन में अंत:पुर से निकलती है (रात्रि में नहीं)।[31]

(31) मानसार/अध्याय 36/ श्लोक 1-47/(हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

युवराज का महलः-

युवराज का आवास वरूण के पुष्पदन्त पद में होना चाहिए।

मुख्य द्वारः-

सभी वर्णों के लोगों के लिए घर का मुख्य द्वार महेन्द्र, पुष्पदन्त मुख्य एवं गृहक्षत पद में होना उत्तम है।

परन्तु पुरातन वास्तुविदों ने मुख्य पद में राजा के आवास का मुख्य द्वार वर्जित किया है। नागा एवं मुख्य पद में धान्आगार (धान) होना चाहिए। शोष एवं असुर में पुष्प का फूलों का मण्डप होना चाहिए। चारो दिशाओं एवं चारों कोणो पर सोपान (सीढ़ियों) का स्थान होना चाहिए। उत्तर पश्चिम दिशा में भल्लार एवं नाग के पद में नृत्य (संगीत)का स्थान प्रत्येक घर में होना चाहिए।

रोग पद में मुर्गों मुर्गियों के लिए शेड (SHED) का निर्माण करना चाहिए। दौवारिक एवं सुग्रीव पद में भेड़ो के रहने के लिए स्थान होना चाहिए। मुख्य पद में सबके लिए मंदिर होना चाहिए।

प्रतिदिन की पूजा अर्चना के लिए सबसे बाहरी दीवार के अन्दर रोग पद में मंदिर का निर्माण करना चाहिए।

इन समस्त परिस्थितियों पर भली प्रकार विचार करते हुए उत्तम आवास का निर्माण करना चाहिए।(32)

वास्तु सौख्यम ग्रंथ में भी कक्ष नियोजन पर प्रकाश डाला गया है।

" इन्द्राग्न्योर्मयनं मध्ये याम्याग्न्योघृतमन्दिरम्।
यमराक्षसयोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम्॥
राक्ष साम्बुवयोर्मध्ये विद्याम्यास्य मन्दिरम्।
तोमेशा निलयोर्मध्ये रोदनं मन्दिरं ततः॥
रोमोष भोग सदनं वायुवौनेर यह यतः।
कौलेरे शानयोर्मध्ये चिकित्सा मन्दिरं तथा॥
पुरन्दरेशयोर्मध्ये सर्ववस्तुषु संङ्. ग्रहम्।
सदनं कारमेदेवं क्रमतप्रोक्तनि षोडश॥ "

अर्थात् - कक्षों का विन्यास उक्त वर्णित प्रकार होना शुभदायी होता है। नारद जी के अनुसार पात्र संचय गृह उत्तर दिशा में एवं मांगलिक गृह वायव्य कोण में होना चाहिए।

गृह के पश्चिम - दक्षिण में गवाक्ष (जगंला) होना चाहिए। उपने पूर्वजों ताथा पिता व पिता तुल्य श्रेष्ठ जनों का आवास दक्षिण व पश्चिम में होना चाहिए। (33)

वृहत संहिता में भी घर के अन्दर कक्षों के विन्यास पर समुचित प्रकाश मिलता है।

ऐशान्यां देवगृहं महानसं चापि कार्यग्नेयाम्।
नैऋत्यां माण्डोपस्करोऽर्यधान्या नि मरूत्याम्॥

---

(32) मानसार/अध्याय 36/ श्लोक 1-47/(हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(33) वास्तु सौख्यम/अध्याय- 7 श्लोक 277-280/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय ,वाराणसी

वास्तु - सौख्यम के अनुसार कक्ष नियोजन

ईशान पूर्व अग्नि

उत्तर दक्षिण

देव	सर्व वस्तु संग्रह	श्री गृह	दधिमंथन	पाक गृह
चिकित्सा				घृत
निधि (धन)				शयन
रति				पुरीष (मल, गोबर)
धान्य संग्रह	रोदन	भोजन गृह	विद्याभ्यास	शस्त्र

वायव्य पश्चिम नैऋत्य

वास्तु - सौख्यम के अनुसार कक्ष नियोजन

ईशान		पूर्व		अग्नि
देव	सर्व वस्तु संग्रह	श्री गृह	दधिमंथन	पाक गृह
चिकित्सा				घृत
निधि (धन)				शयन
रति				पुरीष (मल, गोबर)
धान्य संग्रह	रोदन	भोजन गृह	विद्याभ्यास	शस्त्र
वायव्य		पश्चिम		नैऋत्य

उत्तर (बायाँ भाग) — दक्षिण (दायाँ भाग)

अर्थात् - जिस घर में चारो ओर कमरे का छत युक्त मैदान हो तो ऐसे गृह के ईशान कोण में पूजा का स्थान, नैऋत्य कोण में बर्तनों का स्थान वायव्य कोण में धन रखने का स्थान बनाना चाहिए। अग्नि कोण में रसोई का चूल्हा रखना चाहिए।

भवन के कोणों में अनुपयोगी समान रखना चाहिए। कोनों में शौचालय,जूता,व झाडू रखने का स्थान, स्नानागार देवस्थान आदि बनाने चाहिए। शयन तथा भोजन का स्थान कोने में नहीं होना चाहिए।[34]

4.11 उत्तम आवास में जल का स्थान -

जिस प्रकार उत्तम आवास में कक्षों का उचित नियोजन महत्वपूर्ण है ठीक उसी प्रकार जल का स्थान भी अति महत्व का है इस प्रकार व्यक्ति को शास्त्रोक्त रीति से जल का स्थान निर्धारित करना चाहिए।

" प्राच्यादि सलिले सुतहानिः शिखिमयं रिपुभयं च।
स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्टयं नैःस्वयं वित्ताव्मधविवृद्धिः ॥ "

अर्थात् - विविधि दिशाओं में जल का स्थान होने से निम्न फल प्राप्त होते हैं :-

पूर्व दिशा में - पूर्व दिशा में नल, टैंक या जल का स्थान होने से पुत्र नाश होता है।

अग्नि कोण में - अग्नि कोण में जल का स्थान हो तो अग्नि से भय होता है।

दक्षिण में - दक्षिण दिशा में जल का स्थान होने पर शत्रु से भय होता है।

पश्चिम में - पश्चिम दिशा में जल का स्थान होने पर स्त्रियां दुश्चरित्र होती हैं।

वामत्य कोण - वामत्य कोण में जल का स्थान होने पर निर्धनता आती है।

उत्तर दिशा - उत्तर दिशा में जल का स्थान हो तो धन वृद्धि होती है।

ईशान कोण - ईशान कोण में जल का स्थान हो तो पुत्र वृद्धि होती है।

इस प्रकार जल का स्थान उत्तर या ईशान कोण में ही रखना लाभप्रद होता है।[35]

ठीक यही विचार वास्तु सौख्यम ग्रन्थ में भी प्रस्तुत किये गये हैं।[36]

4.11.1 गृह कूप निर्माण हेतु स्थान -

" कूपे वास्तोर्मध्यदेशे ऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टि रैश्वर्य वृद्धिः।
सूनानार्शः स्त्रीविनाशो मृति श्च सम्पतपीडा शत्रुतः स्थाच्च सौख्पम् ॥ "

अर्थात - पिण्ड के भीतर मकान के मध्य भाग में कूप बनवाया जाय तो धन का नाश (अर्थात घर में दरिद्रता का स्थायी वास हो जाता है।) ईशान कोण में कूप हो तो पुष्टि, पूर्व में कूप हो तो ऐश्वर्य वृद्धि अग्नि कोण में पुत्रका नाश, दक्षिण दिशा में कूप बने तो स्त्री का नाश, नैऋृत्य में कूप हो तो मृत्यु, पश्चिम में कूप हो तो सम्पत्ति , वायव्य में कूप हो तो शत्रु से पीड़ा तथा ईशान में कूप बनवाय जाय तो सुख प्राप्त होता है।[37]

---

(34) बृहत्संहिता/अध्याय 52/ श्लोक - 116 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(35) बृहत्संहिता/अध्याय 52/ श्लोक - 117 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(36) वास्तु सौख्यम/अध्याय- 7/ श्लोक-284/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय ,वाराणसी

(37) मुहूर्त चिन्तामणी: प्रकरण 12/श्लोक 20 श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन वाराणसी

इस प्रकार मकान के भीतर यदि कूप निर्माण करना होतो पिण्ड के भीतर पूर्वभाग में उत्तर दिशा और ठीक पश्चिम दिशा में निर्माण करना शुभ होता है।(38)

एक बात पर विशेष बल दिया गया है कि किसी भी ऋतु में मकान की छाया दूसरे और तीसरे प्रहर में कुंए के अंदर नहीं पड़नी चाहिए।

कूप निर्माण के विषय में प्रसिद्ध ग्रन्थ "बृहत्संहिता" में भी मार्ग दर्शन किया गया है :-

"आग्नेय यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्पवा भवेत् कूपः।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः॥
नैर्ऋत कोणे बालक्षमं च विनितामपं चवापत्ये।
दिवत्रयमेतत्तपकव्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः॥"

अर्थात -ग्राम या नगर के अग्नि कोण में कूप का निर्माण होने पर बस्ती में सदैव भय बना रहता है अग्नि.द्वारा विनाश लीला होती है। नैर्ऋत्य कोण का कूप शिशुओं या बालकों के लिए विनाशकारी होता है। वापत्य कोण में निर्मित कूप स्त्रियों के लिए भयकारक होता है। इस प्रकार पूर्व वर्णित दिशाओं को छोड़कर निर्मित कूप शुभ होता है।(39)

प्रसिद्ध ग्रन्थ विश्वकर्मा प्रकाश के अनुसार -

"सर्वासु दिक्षु सलिलं प्रकुर्या द्विहाय नैर्ऋत्ययआग्नि वापून।
पूर्वोत्तरेश्ण न जलशदिक्षु कृतं जलं सौरूपसुतप्रदं च॥14॥
न पूर्वकं वारूण दिक्स्थितं च विवर्जयेन्मध्य गृहस्थितं।
च क्रमेण गर्गादिवसिष्ठमुख्या दिशास्थितानां च जलाशवानाम्॥15॥"

अर्थात - सम्पूर्ण दिशाओं में जल के स्थान को बनवाना चाहिए परन्तु नैर्ऋत्य, दक्षिण, अग्नि एवं वापत्य कोण त्याग देना चाहिए। पूर्व, उत्तर और ईशान दिशाओं का जल के स्थान सुख और सुत का दाता होता है। पूर्व एवं वरूण की दिशाओं में भी पूर्व वर्णित फल होता है। गृह के मध्य स्थित जल स्थान को भी त्याग देना चाहिए।(40)

वास्तु शास्त्र के अन्य प्रमाणिक ग्रन्थों में भी जल स्थान पर विचार किया गया है। राजा टोडरमल विरचित वास्तु सौख्यम ग्रन्थ में भी जल विचार किया गया है।

"प्राच्यादि स्थि सलिले सुतहानिः शिखिमयं रिपुभयं च।
स्त्री कलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्त्यं वित्तात्मज विवृद्धिः॥"

वास्तु या गृह भूमि के पूर्व में जल के स्थान से सुत (पुत्र) हानि, अग्नि कोण में अग्नि भय, दक्षिण में शत्रु भय, नैर्ऋत्य में स्त्री विवाद पश्चिम में स्त्री की दुष्टता, वापत्य में निर्धनता, उत्तर में धन वृद्धि, ईशान में संतति की वृद्धि होती है।(41)

---

(38) वास्तु रत्नाकर : अध्याय -12/श्लोक 19 -20/श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी/चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
(39) बृहत्संहिता/अध्याय 53/ श्लोक 97- 98 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
(40) विश्वकर्मा प्रकाश- अध्याय-7/श्लोक -14-15/खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई
(41) वास्तु सौख्यम/अध्याय- 7/ श्लोक-284/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत

विविध दिशाओं में कूप निर्माण का फल
(मुहूर्त चिन्तामणी)

ईशान		पूर्व		अग्नि
	पुष्टि	ऐश्वर्य	पुत्रनाश	
उत्तर	सौख्य	धननाश	स्त्रीनाश	दक्षिण
	शत्रुपीड़ा	सम्पत्ति	मृत्यु	
वापत्य		पश्चिम		नैऋत्य

विविध दिशाओं में कूप निर्माण का फल
(मुहूर्त चिन्तामणी)

ईशान		पूर्व		अग्नि
	पुष्टि	ऐश्वर्य	पुत्रनाश	
उत्तर	सौख्य	धननाश	स्त्रीनाश	दक्षिण
	शत्रुपीड़ा	सम्पत्ति	मृत्यु	
वापत्य		पश्चिम		नैऋत्य

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रसिद्ध ग्रन्थ मानसार में एक विपरीत प्रमाण मिलता है। मानसार के अनुसार - अंतरिक्ष, अग्नि एवं पूषाण पद सभी वर्णोंकि लिए कूप निर्माण हेतु उपयुक्त है।(42)

जबकि अन्य शास्त्रों में अग्नि कोण में कूप निर्माण को सर्वथा अनुचित बताया गया है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ मयमतम् में भी कूप या जल हेतु उपयुक्त स्थान ईशान कोण को बनाया गया है।(43)

4.12 निवास के चारों ओर वृक्षों (वनस्पति) का विन्यास -

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ मत्स्य पुराण में वृक्ष विन्यास का वर्णन मिलता है।

" भवनस्य वटः पूर्वे दिग्आगे सर्वकामिकः।
ददुम्बरस्तथा माम्ये वारूण्यां पिप्पलः शुभः॥
प्लक्ष श्चोत्तरतो धन्यो विपरीतास्त्व सिद्धये।
कण्टकी क्षीर वृक्षश्च आसनः सफलो द्रुभः॥
भार्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा।
न च्छिन्धाधादि तानन्या नन्तरे स्थापयेच्छुमान्॥
पुन्नागाशोक बकुल शमीतिलक चम्पकान्।
दादिमीपिप्पली द्राक्षास्त या कुसुममणपान्॥
जम्बीरपूगपन सद्रुमकेतकी मिर्जा तीसरो जशत पत्रिकमल्लिकाभिः।
यन्ना रिकेल कदलीदल पाटलामिर्युक्तां तदत्र भवनं श्रियआतनोति॥"

अर्थात - दिशाओं के अनुसार निम्न वृक्ष प्रशंसित कहे गये हैं।

पूर्व दिशाः-

पूर्व की ओर बरगद का वृक्ष सब प्रकार की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है।

दक्षिण दिशा :-

दक्षिण दिशा में गूलर का वृक्ष मंगलकारी है।

पश्चिम दिशाः-

पश्चिम दिशा में पीपल का वृक्ष शुभ है।

उत्तर दिशाः-

उत्तर दिशा में पाकड़ का वृक्ष मंगलकारी है।

इन दिशाओं से विपरीत दिशा में यदि ये वृक्ष लगाये जायें तो सर्वथा विपरीत फल देने वाले होते हैं।(44)

---

(42) मानसार/अध्याय 36/ श्लोक 14/(हिन्दी टीका):/शिव वर्मा, शोभा वर्मा/स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

(43) मयमतम/अध्याय 27/ श्लोक 32/ब्रूनो डैगेन्स/सीता राम भारतीय इंस्टीट्यूट

(44) मत्स्य पुराण/अध्याय 255/ श्लोक 20-24/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

निन्दित वृक्षः-

घर के निकट कांटो वाला , दूधवाला (आसनादि वृक्ष) या जिनमें फल हों तो वे स्त्री एवं सन्तान के लिए पीड़ा दायक होते हैं। यदि इन वृक्षों का काटना सम्भव न हो तो उनके समीप शुभ वृक्षो को लगाना चाहिए।

प्रशंसित (शुभ) वृक्ष :-

नाग केशर, अशोक, मौलसिरी, जांट, तिलक पुष्पी, चम्पा,अनार, पीपली, दाख, अर्जन,जंबीर, सुपारी, कटहल, केतकी, मालती, कमल चमेली, नारियल, केला, एवं पाटल। इन वृक्षों से युक्त घर शुभकारी होते हैं।[45]

विश्वकर्मा प्रकाश ग्रन्थ में भी वृक्षों के नियोजन पर मार्गदर्शन किया गया है।

जंबीर, पुष्प के वृक्ष, पनस, अनार, जाती, चमेली, शतपत्र (कमल), केशर, नारियल पुष्प और कर्णिकार (कनेर) इनसे ढका हुआ घर मनुष्यों के सब सुखों का दाता होता है। सर्वप्रथम भूमि पर वृक्षों को लगाना चाहिए तत् पश्चात् गृह निर्माण कारना चाहिए।

वृक्षों के विन्यास के विषय में अन्य वैदिक ग्रन्थों में भी उल्लेख मिलता है। [46]

समरांगण सूत्रधार में अशुभ वृक्षों के विषय में बताया गया है।

कडवें, कांटेवाले, दुर्गन्धि , गुह्राक आदि देव योनियों से आश्रित पेड़ो को पुर प्रसाद और वेश्य के समीप नहीं लगाना चाहिए। बेर, केला ,अनार, नींबू जिस घर में उगते है उस घर का उत्थान नहीं होता है।[47]

वाराह मिहिर विरचित बृहत् संहिता

मत्स्य पुराण के समान ही बृहत संहिता में भी चारों दिशाओं में वृक्षों की स्थिति पर वर्णन है। गर्ग ने वृक्षों के दोषों का भी वर्णन किया है।

पूर्व में पीपल	-	भय
दक्षिण में पिलखन	-	पराजय
पश्चिम में बड़	-	राजपीड़ा
उत्तर में गूलर	-	नेत्र रोग

वृक्षो की शुभा शुभ प्रकृति :-

"कांटेदार वृक्ष (बबूल, खैर आदि)घर के पास आक, कटैली आदि दूघ के वृक्ष हों तो धन का नाश होता है। फलदार वृक्ष आम अमरूद आदि हों तो सन्तान के लिए हानिकारक होते हैं।" इन वृक्षों को घर के पास नही लगाना चाहिए। इनकी लकड़ी भी गृह निर्माण में प्रयुक्त नहीं करनी चाहिए। यदि इन वृक्षों को काटना या हटाना सम्भव न हो तो इनके बीच-बीच में उत्तम व प्रशंसित वृक्ष पुन्नाग, अशोक, अरिष्ट, बकुल, कटहल , शमी व साल में से किसी भी वृक्ष को लगाने से दोष निवारण हो जाता है।

---

(45) मत्स्य पुराण/अध्याय 255/ श्लोक 20-24/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(46) विश्वकर्मा प्रकाश- अध्याय-13/श्लोक 100-103/खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई
(47) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 38/130-31/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

पहले लगाने योग्य वृक्षः-

नीम, अशोक, फन्नाग, सिरस, प्रियंगु वृक्ष सबसे पहले क्रम में लगाना शुभ होता है। (48)

वास्तु सौख्यम् - लगभग समान प्रकार के विचार वास्तुसौख्यम नामक ग्रन्थ में देखने को मिलता है।

बृहत् संहिता से थोड़ा भिन्न विचार चारों दिशाओं में स्थित वृक्षो के शुभा शुभ परिणामों के विषय में दिखाई पड़ता है।

पूर्व में पीपल	-	निर्धनता
दक्षिण में पाकड़	-	रोग
पश्चिम में वट	-	स्त्री व कुल की हानि
उत्तर में गूलर	-	ह्रास

इसी प्रकार मालती, मल्लिका अमरस, इमली, श्वेता व अपराजिता जो भी वास्तु भूमि पर लगाता है वह शस्त्रसे भरा जाता है। इस प्रकार वास्तु नुरूप वृक्षों की स्थिति पर पर्याप्त सामग्री वास्तु ग्रन्थों में उपलब्ध है।(49)

भवन भास्कर नामक ग्रन्थ में भी इसी प्रकार घर के चारो ओर वनस्पतियों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।(50)

वैदिक वास्तुविद्या नामक ग्रन्थ में भी गृह के समीपस्थ शुभाशुभ वृक्षों की स्थितियों पर मार्गदर्शन किया गया है।(51)

गृह के समीप शुभ एवं अशुभ वृक्षों की स्थितियों पर वास्तु रत्नाकर ग्रन्थ में बृहद् रूप से उल्लेख किया गया है।(52)

वास्तु माणिक्य रत्नाकर ग्रन्थ में भी निवास स्थान के चारो ओर लगाने योग्य शुभ एवं अशुभ (वर्जित)वृक्षों की स्थितयों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है।(53)

4.13 प्रवेश द्वार -

किसी भी आवास में उसका प्रवेश द्वार अत्यंत महत्वपूर्ण अंग होता है। अतः प्रवेश द्वार अत्यंत सोच विचार कर निर्धारित करना चाहिए। विविध वास्तु- शास्त्रीय ग्रन्थों में मार्ग व्यवस्था पर चर्चा की गयी है।

(1) मत्स्य पुराणः-

मत्स्य पुराण के अनुसार हर प्रकार के गृहों में प्रवेश दाहिनी ओर से करना चाहिए। इस प्रकार प्रवेश

---

(48) बृहत्संहिता-2/अध्याय 54/ श्लोक 3 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

(49) वास्तु सौख्यम -अध्याय-3/श्लोक -31- 39/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय , वाराणसी

(50) भवन भास्कर/राजेन्द्र कु. धवन/पृ. क्र. - 46/गीता प्रेस गोरखपुर

(51) वैदिक वास्तु विद्या /81/निकेतन आनंद गौड/ गुप्ता पब्लिशिंग हाउस, इंदौर

(52) वास्तु रत्नाकर/विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी/पृ.क्र. 67-72/चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी

(53) वास्तु माणिक्य रत्नाकर/पृ.क्र. 179-89/पं. राम तेज पाण्डेय/बैद्यनाथ प्रसाद बुकसेलर,वाराणसी

द्वार दाहिनी ओर से होना चाहिए।

पूर्व दिशा :-पूर्व दिशा का प्रवेश द्वार इन्द्रएवं जयन्त नामक देवताओं के पदों पर निर्मित करना चाहिए। इस प्रकार निर्मित घर हर प्रकार से प्रशंसित माना गया है।

दक्षिण दिशा:-दक्षिण दिशा का प्रवेश द्वार याम्प एवं वितय नामक देवताओं के पदों पर बनाना चाहिए।

पश्चिम दिशा:-पश्चिम दिशा का प्रवेश द्वार पुष्पदन्त एवं वरूण के स्थान पर प्रशंसित है।

उत्तर दिशा:-उत्तर दिशा में भल्लाट तथा सौम्प इन दोनो पदो पर द्वार का निर्माण शुभदायक होता है।(54)

(2) **अग्नि पुराण** में भी इसी प्रकार का विचार प्रवेश द्वार के सम्बन्ध में वयक्त किया गया है।(55)

(3) **मानसार** में भवनों के प्रवेश द्वार पर सविस्तार व्याख्या की गयी है।

देवताओं , ब्राम्हणों आदि वर्णो के गृहों, राजाओं (क्षत्रियों)के भवनों, सभी प्रकार के प्राकार , मण्डप में चारों दिशाओं में चार द्वार इच्छानरूप बनवाना चाहिए। द्वार दीवार के मध्य भाग में बनवाने पर दोष नहीं होता। हर्म्य (महल, या बड़े भवन) में द्वार इशान कोण में सुविधा पूर्वक खुलना चाहिए। जल द्वार(नाली) दीवार के निचले हिस्से में बनाना चाहिए। देवताओं और मनुष्यों के लिए प्रवेश द्वार(महाद्वार) दो पल्ले वाला होना चाहिए। मुख्य द्वार सीढ़ियों से संयुक्त होना चाहिए।

पूर्व दिशा :-

गृह की लम्बाई व चौड़ाई को नौ-नौ भागों में सर्वप्रथम विभक्त कर लेना चाहिए। हर्म्य (भवन) का माहाद्वार पूर्व दिशा में महेन्द्र पद में अथवा मध्य रेखा बांयी ओर बनयाए। ईश, पर्जन्य, आदिति, उदिति, जयन्त, मृग में उपद्वार, झरोखा, खिड़की आदि बनवाए।

दक्षिण दिशा :-

दक्षिण में गृहक्षत में महाद्वार बनवाएं अथवा मध्य रेखा के बाएं ओर बनवाए वितय,पूषाण, पावक, अन्तरिक्ष ,मृग, सत्य में उपद्वार, झरोखा बनवाना श्रेयस्कर होता है।

पश्चिम दिशा:-

पश्चिम में पुष्पदन्त पद में महाद्वार बनाना चाहिए। सुग्रीव, दौवारिक,नैऋत्प, मृग, भृंगराज, गन्धर्व, का वायव्य में उपद्वार वातायन, खिड़की आदि बनवाना चाहिए।

उत्तर दिशा :-

उत्तर में भल्लाट अथवा लम्बाई की मध्यरेखा के बाई ओर प्रधान द्वार बनवाना चाहिए। मुख्य ,नाग,अनिल, रोग, शेष, असुर के पद में उद्वार बनवाना चाहिए।

ईशान आदि चार दिशाओं में चार (कोने के) द्वारों का निर्माण करना चाहिए।(56)

---

(54) मत्स्य पुराण/अध्याय/255/श्लोक 7 से 9/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(55) अग्नि पुराण/पूर्व भाग अध्याय - 105/श्लोक - 35 - 39/तारिणीश झा /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

(56) मानसार/अध्याय-38/ श्लोक - 1 - 25/शव वर्मा, शोभा वर्मा/ स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

रसोई घरः-

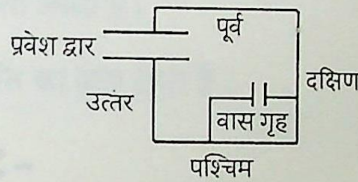
सभी प्रकार के रसोई घरों का द्वार सामने की दीवार के मध्य भाग में अथवा मध्य से बांई ओर बनाना चाहिए। दो, चार, छः,आठ, दस या बारह बड़े रोशन दान, छोटे रोशन दान के सहित बीम के नीचे बनना चाहिए। इनके द्वार हवा का उर्ध्वगमन होता है। रसोई से निकलने वाली धुंए एवं गैस आदि भी इनके द्वारा ऊपर की ओर निकल जाती हैं।

देव मंदिरों का प्रवेश द्वारः-

मंदिरों का मुख्य द्वार सम्मुख दीवार के मध्य भाग में बनाना चाहिए ताकि अंदर स्थित प्रतिमा का पूरा दर्शन दर्शनार्थियों को मिल सके [57]

4. बृहत् संहिता -

इसी प्रकार बृहत् संहिता में भी भवन के मुख्य द्वार पर मार्ग दर्शन किया गया है। भवन में प्रवेश करते समय यदि मुख्य भवन दाहिनी ओर पड़े तो विशेष शुभ होता है।



इक्यासी पदीय वास्तु में 9-9 कोष्ठक होते हैं, लेकिन चौंसठ पदीय वास्तु में 8-8 कोष्ठक होते हैं इस प्रकार हर दिशा में 8-8 द्वार हो सकते हैं इस प्रकार चारों दिशाओं में 32 द्वार हो सकते हैं। हर दिशा के 8-8 द्वारों का फल इस प्रकार हैं:-

पूर्व दिशाः-

"अनिलभयं स्त्री जननं प्रभूतधनिता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्।
क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्वं चपूर्वेण।।"

अर्थात् -शिखी (ईशान) - शिखी के स्थान पर द्वार हो तो अग्निभय होता है।

पर्जन्य - पर्जन्य पर द्वार हो तो कन्या का जन्म होता है।

जयन्त - जयन्त पर द्वार होने पर खूब धन की प्राप्ति होती है।

इन्द्र - इन्द्र पद में द्वार होनेपर राजा की विषेश कृपा प्राप्त होती है।

सूर्य - सूर्य पद में द्वार होने पर क्रोध उत्पन्न होता है।

सत्य - सत्प पद पर द्वार होने से भवन में निवास करने वाले लोग चालाकी व झूठ की प्रवृति वाले होते हैं।

---

(57) मानसार/अध्याय-38/ श्लोक - 1 - 25/शव वर्मा, शोभा वर्मा/ स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

भृश - भृश पद में द्वार होने पर भवन में निवास करने वाले लोगें के अन्दर क्रूरता आती है।

अन्तरिक्ष - अन्तरिक्ष पद में द्वार होने पर चोरी की प्रवृति होती है।[58]

दक्षिण दिशा के आठ द्वारः-

"अल्पसुतत्वं प्रैष्य नीचत्वं भक्ष्मयानसु तवृद्धिः।
रौद्रं कृतध्नमधनं सुतवीर्यध्नं च याम्येन॥"

अर्थात् -अनिल -अनिल पद में द्वार हो तो कम पुत्र उत्पन्न होते हैं।

पूषा- पूषा पद द्वार हो तो दास भाव आता है।

वितथ - वितथ में मुख्य द्वार होने पर नीच कर्म व नीच आचरण का समावेश होता है।

बृहत्क्षत - बृहत्क्षत के पद में द्वार होने पर अन्न की बहुतायत व पूत्र वृद्धि होती है।

यम - यम पद में मुख्य द्वार हो तो अशुभ होता है।

गन्धर्व - गन्धर्व पद में द्वार होने पर कृतघ्नता आती है।

भृंगराज - भृंगराज पर द्वार होने पर निर्धनता आती है।

मृग - मृग पद पर द्वार होने पर पुत्र की शक्ति का ह्रास होता है।

पश्चिम दिशा के आठ द्वारः-

सुतपीडा रिपु वृद्धिर्न सुतधनाप्तिः सुतार्यफल सम्पत्।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे॥

अर्थात -पितर- पितर पर द्वार हो तो पुत्रों को कष्ट होता है

दौवारिक - दौवारिक पर द्वार हो तो शत्रु वृद्धि होती है।

सुग्रीव- सुग्रीव पद में द्वार होने से धन व पूत्रों की वृद्धि होती है

असुर - असुर पद में द्वार होने से राजभय होता है

शोष - शोष पर द्वार हो तो धन नाश होता है।

पापयक्ष्मा - पापयक्ष्म पर द्वार हो तो रोगभय होता है।

उत्तर दिशा के आठ द्वार-

वधबन्धो रिपुवृद्धिः सुत धनलाभः समस्तगुण सम्पतम्।
भुगधनाप्तिवैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम्॥

अर्थात् - रोग- उत्तर दिशा के रोग पद में द्वार होने पर मृत्यु या बन्धन का व्यक्ति भागी बनता है।[59]

---

(58) बृहत्संहिता-2/अध्याय 52/ श्लोक 70 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
(59) बृहत्संहिता-2/अध्याय 52/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

सर्प- सर्प पद में द्वार होतो शत्रुओं की वृद्धि होती है।

मुख्य - मुख्य पद में द्वार हो तो धन व पुत्रों का लाभ होता है।

भल्लाट - भल्लाट के पद पर द्वार हो तो सर्वगुण व सम्पत्तियों का लाभ होता है।

सोम - सोम पद पर द्वार होतो पुत्र से विद्वेश होता है।

अदिति - अदिति पद में द्वार होने पर स्त्री द्वारा कष्ट होता है।

दिति - दिति में द्वार हो तो निर्धनता होती है।

उपर्युक्त वर्णित फल गर्गादि ऋषियों के मन्तव्य पर आधारित है। प्रवेश द्वार का निर्णय करते समय समस्त विषयों पर भली प्रकार विचार करते हुए करना चाहिए।(60)

5. समरांगण सूत्रधार में चर्तुवर्ण के लोगो के आवासों के द्वारों का वर्णन किया गया है।

भल्लाट, धनद, चरक अथवा पृथ्वीधर - इन पदों पर महेन्द्र द्वार उत्तम वेश्य ब्राम्हण के लिए बनाना चाहिए।

महेन्द्र, अर्क (सूर्य)अथवा सत्य का आर्यक- इन पदों पर गृहक्षत द्वार शुभ निकेतन क्षात्रिय के लिए बनाना चाहिए।

याग्य, वैवस्वत अथवा ज्ञान्धर्व का गृहक्षत- इन पदों पर पुष्प- द्वार शुभ भवन वैश्यके लिए बनाना चाहिए।

वारूण, पौष्पदन्त अथवा मैत्र अथवा असुर पदों पर मल्लाट- द्वार उत्तम सदन शूद्र के लिए निर्मित करना चाहिए।

ब्राम्हणों का वास्तु प्राङ्.मुख और घर दक्षिणाभिमुख होवे तो धन और धान्य से और पुत्र और पौत्रों से उनकी वृद्धि होती है।

क्षत्रियों का वास्तु दक्षिणाभिमुख तथा भवन पश्चिमाभिमुख यदि हो उनका धन-धान्य एवं पराक्रम बढ़ता है।

वैश्यों के वास्तु का द्वार पश्चिम और भवन का द्वार उत्तर में यदि हो तो वहां पर वे धन, धान्य, पुत्र और पशु आदि से वृद्धि प्राप्त करते हैं।

यदि वास्तु उत्तर-द्वार वाला हो एवं गृह पूर्वाभिमुख हो तो शूद्र लिए उसकी कर्म वृत्ति धन धान्य के साथ बढ़ती है।

गृह में प्रवेश करने को लेकर प्रवेश द्वार चार प्रकार से विभाजित किया गया है :-

उत्संग:-

ऐसा द्वार निवेश जहां पर एक ही दिशा वाले वास्तु और वेश्म के दरवाजे हों उत्संग कहलाता है। यह निवेश सौभाग्य, संतान वृद्धि धन, धान्य और जय को देने वाला होता है।(61)

(60) बृहत्संहिता-2/अध्याय 52/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
(61) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 35/2-17/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली

हीन बाहुकः-

जहां प्रवेश करने पर वास्तु का गृह बायीं ओर होता है, उस वास्तु को हीन बाहुक कहा जाता है। विद्वानों ने इसे अत्यंत निंदनीय कहा है। ऐसे घरों निवास करने वाला व्यक्ति दरिद्र, कम मित्रों वाला, अल्प बान्धवों वाला एवं स्त्री के द्वारा जीता गया होता है। घरों में रोज व्याधियां उत्पन्न होती रहती हैं।

पूर्णबाहुक :-

वास्तु में प्रवेश करने पर यदि घर दाहिने ओर होता है तोउसका प्रदक्षिण प्रवेश होने के कारण उसे पूर्णबाहुक कहा जाता है। इस प्रकार के वास्तु में निवास करने वाले लोग पुत्र-पौत्र, धन धान्य एवं सुख को प्राप्त करते है।

प्रत्याक्षाय :-

यदि वास्तु द्वार घर के पीछे का आश्रय लिए हो तो वाम भाग से इसका प्रवेश होने के कारण यह प्रत्यक्षाय नामक निंदित वास्तु होता है।[62]

5. बहद्वास्तु माला

इसी प्रकार बहद्वास्तु माला में भी गृह के प्रवेशद्वार के विषय में चर्चा की गयी है।

" पूर्वे ब्राम्हण राशीनां वैश्यानां दक्षिण शुभम्।
शूजनां पश्चिमे द्वार वृयावामुत्तर मतम्॥ "

अर्थात् - ब्राम्हण राशि के लिए पूर्व दिशा का द्वार, क्षत्रिय राशि के लिए उत्तर द्वार एवं शुद्र राशि के लिए पश्चिम द्वार शुभ होते है।

पूर्वादि चार दिशाओं में किस भाग में गृह का प्रवेश द्वार स्थापित किया जाय इस हेतु भी मार्गदर्शन किया गया है। पूर्वानुसार उत्तरादि विविध दिशाओं में 8-8 द्वारों के फल बताये गये हैं।[63]

6. वास्तु माणिक्य रत्नाकर

द्वार स्थापना के विषय में इसी प्रकार की चर्चा वास्तु माणिक्य रत्नाकर नामक ग्रन्थ में भी की गयी है।[64]

7. वास्तु सौख्यम

वास्तु सौख्यम ग्रन्थ में मुख्य द्वार के निर्णय हेतु सविस्तार चर्चा की गयी है। प्रथमतः वर्णानुसार चारों वर्णो हेतु चार दिशाओं के प्रशंसित द्वारों का वर्णन किया गया है।

देव गृह, विहार (जन समूह निवास), पूजन गृह, मण्डप, प्रतोली एवं यज्ञ भवन आदि का द्वार मध्य भाग में होना उत्तम होता है।

---

(62) समरांगण सूत्रधार/अध्याय 35/2-17/ द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल/मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स ,दिल्ली
(63) बृहद्वास्तुमाला/श्लोक 149 -166/डॉ. ब्रम्हानंद त्रिपाठी/चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी
(64) वास्तु माणिक्य रत्नाकर/ श्लोक - 152 -153

चौसठ पदीय वास्तु रचना में चारों दिशाओं के आठ-आठ द्वारों के फल इस प्रकार वर्णित है।

पूर्व दिशाः-

" दुःख, शोक धन प्राप्तिर्नृ व पूजा महद्धनम्।
स्त्री जन्मापुत्रता हानिः प्राच्यां द्वारफलान्यतः ॥ "

प्रथम भाग में द्वार होने पर दुःख, दूसरे में शोक, तृतीय में धन प्राप्ति, चतुर्थ में नृप पूजा, पंचम में विशिष्ट धन की प्राप्ति, षष्ठम में स्त्रीजन्म, सप्तम में अपुत्रता एवं आठ में भाग में मुख्य द्वार होने से हानि होती है।

दक्षिण दिशाः-

" निधनं, बन्धनम भीतिः पुत्रा प्तिश्य धनागमः।
पशो लाभ श्चोरभमयं व्यधिमीतिश्च दक्षिणे ॥327॥"

दक्षिण दिशा के प्रथम भाग में द्वार मृत्यु कारक भाग का द्वार बन्धन कारक होता है, तृतीय भाग में द्वार होने से भय होता है, चतुर्थ भाग का द्वार पुत्र प्राप्ति दायक होता है। पंचम भाग में द्वार होने पर धन लाभ, छठवें में यश प्राप्ति एवं सातवें भाग का द्वार चोर से भय कारक होता है। दक्षिण दिशा के आठवें भाग में निर्मित द्वार व्याधियों से भय देता है।

पश्चिम दिशाः-

" शत्रु वृद्धि पुत्र प्राप्ति लक्ष्मी प्राप्तिर्धनागमः
सौभाग्यं धनलाभश्च दुःख शोकं च पश्चिमे ॥328॥ "

पश्चिम दिशा के प्रथम भाग में स्थित द्वार शत्रुवृद्धि दायक होता है। द्वितीय भाग में द्वार होने पर पुत्र प्राप्ति होती है। तृतीय भाग में द्वार होने पर लक्ष्मी प्राप्ति होती है। चतुर्थ भाग में द्वार होने पर धनागमन होता है पंचम भाग में द्वार होने पर सौभाग्य की वृद्धि करता है। षष्ठम में धन लाभ होता है। सप्तम भाग का द्वार दुःख का कारण बनता है. तथा अष्ठम भाग में स्थित द्वार शोक उत्पन्न करने वाला होता है।

उत्तर दिशाः-

" नैस्त्यं स्त्री दूषणं हानिःसम्पत्प्रीतिः सुखागमः।
शत्रुबाधा तथा दुःखं चोत्तरस्यांदिशि क्रमात् ॥329॥ "

उत्तर दिशा के द्वारो के क्रमशःफल इस प्रकार हैं :-

पहला द्वार	-	निर्धनता देता है।
दूसरा द्वार	-	स्त्रीदोष देता है।
तीसरा द्वार	-	हानिकारक होता है।
चौथा द्वार	-	सम्पत्ति दायक होता है।
पंचम द्वार	-	प्रीति देता है।
षष्ठम द्वार	-	सुख दायक होता है।
सप्तम् द्वार	-	शत्रु बाधा उत्पन्न करता है।
अष्ठम् द्वार	-	दुःख कारक होता है।

जब 81 पदीय (9.9) वास्तु विन्यास किया जाता है तो पूर्वादि चारों दिशाओं में बांई से दांयी ओर क्रमशः द्वार का निर्णय इस प्रकार किया जाता है :-

पूर्व दिशा - तीसरे एवं चौथे भाग में द्वार का निर्माण शुभ होता है।

दक्षिण दिशा - चौथे खण्ड में मुख्य द्वार शुभ होता है।

पश्चिम दिशा - पश्चिम दिशा में तीसरे , चौथे व पांचवे भाग में विधानतः द्वार शुभ होता है।[65]

उत्तर दिशा - उत्तर दिशा में भी तीसरे, चौथे व पांचवे भाग में द्वार का निर्माण शुभदायक होता है। [66]

8.वास्तु रत्नाकरः

द्वार निर्माण के विषय में ठीक इसी प्रकार का उल्लेख वास्तु रत्नाकरः ग्रन्थ में भी मिलता है। कर्क वृश्चिक और मीन राशि के व्यक्तियों के लिए पूर्व दिशा का द्वार शुभ है। कन्या, मकर और मिथुन राशि के व्यक्तियों के लिए दक्षिणका द्वार शुभ होता है। तुला, कुम्भ और वृष राशि वालों के लिए पश्चिम दिशा का द्वार शुभ होता है। मेष, सिंह और धनु राशि के व्यक्यियों के लिए उत्तर दिशा का द्वार बनाना उत्तम होता है।

इसी प्रकार विविध वास्तु पद विन्यासों के अनुसार विभिन्न 64 या 81 द्वारों के फल भी वर्णित है। आय के अनुसार भी द्वार निर्णय पर प्रकश डाला गया है। विभिन्न नक्षत्रों लग्नों में गृहारम्भ करने पर द्वार व्यवस्था का वर्णन भी मिलता है।

यदि मकान में एक ही द्वार का निर्माण करना हो तो पूर्व दिशा में बनवाना चाहिए। यदि मकान में युग्म द्वारों का निर्माण करना हो हो तो पूर्व व पश्चिम में कदापि निर्माण नहीं करना चाहिए। दक्षिण दिशा में मूलद्वार वर्जित है
।

ब्रम्हा, महादेव एवं जैन मन्दिरों में चारो ओर का द्वार बनाना श्रेष्ठ होता है [67]

4.14 द्वारों का परिमाण एवं सज्जा -

किसी भी गृह में मुख्य द्वार को वास्तु शास्त्रानुसार निर्मित कर उसकी साज सज्जा करनी चाहिए।

मुख्य द्वार की अपेक्षा अन्य द्वारों को अधिक शोभित नहीं करना चाहिए। घड़े श्रीपर्णी, लता, एवं वल्लियों से मुख्य द्वार को आवश्कतानुसार (अधिक नहीं)सुसज्जित कर नित्य बलि, अक्षत एव्रं जल से पूजा करनी चाहिए।

"विस्ताराद् विगुणोत्सेधं द्वारं न विषयापतम्।
पश्चिमे दक्षिणे वापि कपाटं च सुख प्रदम्।।"

अर्थात् - द्वार की चौड़ाई ये उसकी ऊंचाई दुगनी होनी चाहिए। किसी भी मकान का द्वार समावत होना चाहिए विषमावत नहीं। जब द्वार के अपने समाने की भुजाएं व चारो कोण तुल्य हो तो समावत सम कोण कहलाता है दक्षिण व पश्चिम में दरवाजा सुखदायी होता है।[68]

---

(65) वास्तु सौख्यम्/ नवम् अध्याय/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत
(66) वास्तु सौख्यम्/ नवम् अध्याय/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत
(67) वास्तु रत्नाकर/अध्याय 8/श्लोक -49
(68) वास्तु सौख्यम्/ नवम् अध्याय/330/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत

"मूलद्वारं नन्यैद्वरिरभि सन्दधान रूपर्द्धर्या।
घट फल पत्र प्रमआदिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात॥"

अर्थात् - प्रधान द्वार के रूप व सौन्दर्य के समान घर के अन्य द्वारों का निर्माण नहीं करना चाहिए। मुख्य द्वार पर कुम्भ(घट), फल, पत्तियां, सर्प, हंस आदि की आकृतियों से सुसज्जित करना चाहिए।[69]

4.15 शिलान्यास की दिशा का निर्धारण:-

यह तथ्य भी अति महत्वपूर्ण है कि भूमि के किस भाग पर शिलान्यास करना चाहिए। प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत्संहिता के अनुसार -

दक्षिण पूर्वे कोण कृत्वा पूजां शिलां न्पसेत प्रथमम्।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्थाश्चैवं समुत्थाप्याः॥
छत्रस्त्रगम्बपुतः कृतधूपविलेपनः समुत्याप्यः।
स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छयः प्रयत्वेन॥

अर्थात - पांच शिलाओं में से पहली शिला अग्निकोण में, धूपदीप माला बलि उपहार दक्षिण से पूजा कर के स्थापित करना चाहिए शेष शिलाओं को प्रदक्षिणा के क्रम से स्थापित करें।

जहां शिलान्यास किया गया हो वहीं पर स्तम्भ उठाने का कार्य करना चाहिए।[70]

पण्डित हृषीकेश उपाध्याय ने भी अपने पंचाग में अग्नि कोण में ही शिलान्यास करने का विधान कहा है।

गर्ग ऋषि के मतानुसार -

ततः पुण्याह घोषेण शिलान्यासं प्रकल्पयेत।
ऐशान मादितः कृत्वा प्राग्दाक्षिण्येन विन्यसेत्।
अनेनैव विधानेन स्तम्भद्वारावरोहणम्॥

गर्ग ऋषि ने ईशान कोण में प्रथम शिला स्थापित करने को कहा है एवं शेष को प्रदक्षिणा के क्रम से स्थापित करना चाहिए।[71]

बृहद्वास्तु माला में भी अग्नि कोण में ही शिलान्यास करने का निर्देश दिया गया है।[72]

प्रसिद्ध ग्रन्थ अग्नि पुराण में शिलान्यास (कार्यारम्भ) के विषय में प्रकाश डाला गया है :-

अन्त्यंवस्त्र युगच्छन्नं कुम्भं स्कन्धे द्विजन्मनः।
निधाय शीतवाधादिब्रहन्घोषसमाकुलम्॥
पूजां कुम्भे सकाह्वत्य प्राप्ते लग्नेऽग्निकोष्ठ के।
कुछालेनाभिषिक्तेन मध्वक्तेन खानयेत्॥
नैर्ऋत्यां क्षेपयेन्मृतस्नां खाते कुम्भजलं क्षिपेत्।

---

(69) बृहत् संहिता/खण्ड - 2/अध्याय -52/श्लोक 180/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
(70) बृहत्संहिता/अध्याय- 52/श्लोक 110-111/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
(71) बृहत्संहिता/अध्याय- 52/पृ.क्र. 603/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

पुरस्य पूर्व सीमान्त नयेद्यावद भीप्सितम् ॥
अध तद्रक्षणं स्थित्वा भ्रामपेत्परितः पुरम् ।
सिन्चन्सीयान्त चिन्हाति आवदीशा नगोचरम् ॥

अर्थात् - किसी भी भूमि पर गृहारम्भ करने हेतु किसी ब्राम्हण के कन्धे पर एक जोड़े वस्त्र से अच्छादित एक दूसरे घड़े को रखकर गाना, बजाना, वेदध्वनि आदि के साथ घट की पूजा करनी चाहिए। तदुपरान्त उत्तम लग्न के आने पर अग्नि कोण में अभिषिक्त तथा मधुलिप्त कुदाल से खोदना प्रारम्भ करना चाहिए। खोदी हुई मिट्टी को नैर्ऋत्य कोण में फेंकर गड्ढे में घड़े का जल छिड़क देना चाहिए।[73]

4.16 गृह प्रवेश -

मयमतम् ग्रन्थ के अनुसार जब गृह निर्माण पूर्णरूप से हो जाये तभी गृह प्रवेश करना चाहिए। इस सम्बन्ध में कभी भी जल्दी बाजी नहीं करनी चाहिए।

The entry into a house is made only when it is finished; there should be no hurry to enter an unfinished house . Therefore, the work having been brought to completion,the house is to be entered in an auspicious way at the precisely suitable moment of an auspicious hour in an half day which accords with the horoscope, an auspicious day in on (auspicious) fort night of an auspicious day .

इस प्रकार जब गृह का निर्माण कार्य पूर्ण रूप से सम्पन्न हो जाये तो उचित दिन उचित मुहूर्त जो कि जन्म कुण्डली के अनुसार योग्य हो में विधि पूर्वक गृह प्रवेश करना चाहिए।[74]

मत्स्य पुराण में भी गृह प्रवेश विषय प्रकार मार्ग दर्शन किया गया है।

कृत्वाऽग्रतो द्विजवरानय पूर्णकुम्भं
दध्यक्षता भ्रदल पुष्प फलापशोभम् ।
दत्त्वा हिरण्यवसनानि तदा विजेम्यो
माङ्गल्यशान्ति निलयाम् गृहं विशेतु ॥
गृहोक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्प्रसादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः
संतर्पये द्द्विज वरानथ भक्ष्य भोज्यैः
शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रतिशित्सधूपम् ॥

अर्थात जब भवन भली भांति पूर्ण हो जाए तो श्रेष्ठ ब्राम्हणों को आगे करके दही ,अक्षत, आम के पल्लव, पुष्प तथा फलादि से सुशोभित जल पूर्ण कलश को देकर तथा अन्य ब्राम्हणों को सुवर्ण एवं वस्त्रादि देकर मांगलिक , शांतिदायक भवन में गृह पति को प्रवेश करना चाहिए

तत्पश्चात वेदोक्त एवं गुह्य शास्त्रोक्त विधि से बलिकर्म करके प्रसाद एवं वास्तु की शान्ति के लिए शास्त्रोक्त रीति से हवन करना चाहिए। सुन्दर भोज आदि द्वारा ब्राम्हणों को तृप्त कर धूपादि सुगन्धित द्रव्यों के साथ श्वेत वस्त्र धारण कर गृह प्रवेश करना चाहिए।[75]

4.17 भवन का विस्तार -

(72) बृहवास्तुमाला/श्लोक -124 - 125/डॉ. ब्रम्हानंद त्रिपाठी/चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी
(73) अग्नि पुराण/पूर्व भाग अध्याय - 92/श्लोक - 15 -18/तारिणीश झा /हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(74) मयमतम्/अध्याय 28.1ब्रूनो डैगेन्स/सीता राम भारतीय इंस्टीट्यूट

एक बार भवन निर्माण होने के पश्चात उसके विस्तार के समय सोच समझकर निर्णय लेना चाहिए । घर का विस्तार चारों दिशाओं में होना चाहिए । किसी भी एक दिशा में विस्तार करना उत्तम नहीं होता है ।

यदि संवर्धयेद् गेहं सर्व मेव विवर्धयेत् ।
पूर्वेण वर्धितं वास्तु कुर्या द्वराणि सर्वदा ॥
दक्षिणे वर्धितु वास्तु मृत्येव स्यान्न संशयः ।
पश्चाद्विवृद्धं यद्वास्तु तदर्थक्षयकारकम् ॥
वर्धापितं तथा सौम्ये बहुसंतापकारकम् ।
आग्ने ये यत्र वृद्धि स्मात्तदग्निभयदं भवेत् ॥

अर्थात् - पूर्व दिशा में विस्तार किया गया वास्तु बैर पैदा करने वाला होता है । दक्षिण दिशा में बढ़ायागया वास्तु मृत्यु कारक होता है । पश्चिम दिशा में वास्तु का विस्तार करने से धननाश होता है । उत्तर दिशा में बढ़ी हुई वास्तु बहुत दुःख व संताप उतपन्न करने वाली होती है । अग्नि कोण में वास्तु की वृद्धि से अग्नि का भय होता है । नैर्ऋत्य कोण में वास्तु की वृद्धि होने पर शिशुओं की मृत्यु हो जाती है । वायव्य कोण में विस्तारित वास्तु से वात - व्याधि (वायु से होन वाले रोग) का प्रकोप होता है । ईशान कोण में बढ़ी हुई वास्तु से अग्नि से हानि होती है ।[76]

4.17 द्वार वेध -

समस्त प्रमाणिक ग्रन्थों में द्वार का बड़ा महत्व बताया गया है । हर स्थिति में द्वार को हर प्रकार के वेध से सुरक्षित रखना चहिए ।

तथावास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत् ।
द्वारे तु रथ्यया विद्रे भवेत्सर्वकुलक्षयः ॥
तरूणा द्वेवनाहुल्यं शोकः पङ्केन जायते ।
अपस्मारो भवेन्नू कूपवेधन सर्वदा ॥
व्यथा प्रस्त्रवणेन स्मात्कीलेनाग्निभयं भवेत् ।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृत भवेत् ॥

अर्थात् - सदैव द्वार वेध वर्जित कहा गया है । द्वार वेध से तात्पर्य द्वार के ठीक सामने किसी रूकावट से है , जिससे द्वार का आवागमन अवरूद्ध होता है । विविध अवरोधों द्वारा द्वार वेध के फल इस प्रकार हैं :-

(1) गली, सड़क या मार्ग:-

गली, सड़क का मार्ग द्वारा, द्वार वेध होने पर कुल का नाश हो जाता है । तात्पर्य यह है कि जब कोई सड़क गली का मार्ग किसी द्वार पर आकर समाप्त हो तो उसे मार्ग द्वारा वेध कहा गया है ।

(2) वृक्ष द्वारा वेधः-

जब किसी द्वार के ठीक सामने वृक्ष उपस्थित हो तो द्वेष की अधिकता होती है ।

(3) कीचड़ द्वारा वेधः-

---

(75) मत्स्य पुराण / अध्याय 256 / श्लोक 29-31 / पं बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(76) मत्स्य पुराण / अध्याय 256 / श्लोक 29-31 / पं बाबूराम उपाध्याय / हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

यदि प्रवेश द्वार पर कीचड़ की उपस्थित हो तो शोक की प्राप्ति होती है।

(4) कूप द्वारा वेध:-

यदि द्वार के ठीक सामने कुंआ या कूप हो तो गृहपति को मृगी का रोग होता है।[77]

(5) नाबदान का जल प्रवाह द्वारा वेध:-

नाबदान का जल प्रवाह द्वारा द्वार वेध हो तो व्यथा (पीड़ा) होती है।

(6) कील द्वारा वेध:-

कील द्वारा वेध होने पर अग्नि से भय होता है।

(7) देवता द्वारा वेध:-

प्रवेश द्वार पर देवस्थान का मंदिर हो अथवा प्रवेश द्वार देवता द्वार विद्ध हो तो विनाश कारक है।

(8) स्तम्भ द्वारा वेध:-

यदि प्रवेश द्वार का किसी स्तम्भ से वेध होता हो तो स्त्री द्वारा क्लेश की प्राप्ति होती है।

(9) घर से दूसरे घर में वेध:-

एक घर से दूसरे घर में वेध पड़ने पर गृहपिता (गृहस्वामी)का नाश होता है।

(10) अपवित्र द्रव्याद्वि द्वारा वेध:-

अपवित्र वस्तुओं से वेध होने पर स्त्रियों को कष्ट होता है।

(11) अन्त्यज (नीच जाति) के घर से वेध :

अन्त्यज के घर से वेध होने पर हथियार से भय होता है।

विशेष:-

गृह की ऊँचाई से दुगनी भूमि के बाद यदि वेध पड़े तो उसमें वेध का दोष नहीं होता है।

गृह के द्वार यदि स्वत: खुल जातें हो तो गृह में निवास करने वाले लोगों को उन्माद का रोग होता है। ठीक इसी प्रकार यदि गृह के द्वार स्वत: बन्द हो जाते हों तो कुलनाश हो सकता है। गृह के द्वार यदि अपने मान से अधिक ऊँचे हैं तो राज भय जानना चाहिए। यदि गृह के द्वार अपने मान से नीचे हैं तो चोरों का भय होता है। एक द्वार के ऊपर जो दूसरे द्वार होते हैं वे यमराज के मुख कहे जाते है। मार्ग के बीच में निर्मित जिस अति दुर्गम गृह की चौड़ाई बहुत अधिक होती है, वह वज्र के समान होता है ,जिसमें शीघ्र ही गृहस्वामी का विनाश हो जाता है। इसी प्रकार अन्य द्वारो से पीड़ित मुख्य द्वार विविध दाषों को उत्पन्न करने वाला होता है।[78]

द्वार वेध पर बाराह मिहिर कृत बृहत् संहिता में भी प्रकाश डाला है। दरवाजे के सामने मार्ग (गलियारा), वृक्ष, कोना, कुंआ, खम्भा, पानी निकलने का स्थान (नाली) हो तो अशुभ फल दायक होता है। किन्तु यदि द्वार की ऊँचाई से दुगनी दूरी पर उक्त वास्तुएँ हों तो द्वार वेध का दोष नहीं होता है।

---

(77) मत्स्य पुराण/अध्याय 255/ श्लोक 10-18/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(78) मत्स्य पुराण/अध्याय 255/ श्लोक 10-18/पं बाबूराम उपाध्याय/हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
(79) बृहत् संहिता/अध्याय -52/श्लोक 74/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली

यह दूरी भवन की ऊँचाई से दुगनी न होकर दरवाजे की ऊँचाई से दुगनी होनी चाहिए। वेध से तात्पर्य ठीक समाने होने से है।[79]

ठीक यही विचार वास्तु सौख्यम में भी उल्लिखित है।[80]

गलियारे से वेध हो तो गृहस्वामी के लिए विनाश कारक। वृक्ष से बाधा हो तो घर के बालकों के लिए दोष कारक होता है कीचड़ व पानी से वेध हो तो शोक होता है। नाली से वेध हो तो खूब धन व्यय होता है।

कुँआ से वेध हो तो मानसिक अस्थिरता एवं मिर्गी आदि का दोष होता। द्वार के ठीक सामने देव प्रतिमा हो तो गृहस्वामी का विनाश होता है। द्वार के सम्मुख खम्बा (बिजली, टेलीफोन, आदि का) हो तो स्त्रियों के लिए दोषकारक होता है। ब्रम्ह स्थान (भीतर से) या बाहर ब्रम्हा की प्रतिमा से वेध हो तो कुलनाश होता है।[81]

घर के द्वार यदि स्वतः ही खुलने लगें तो उन्माद् (बेचैनी, मानसिक, भ्रम) होता है। यदि द्वार स्वतः बन्द होने लगे तो कुलनाश होता है। कई विद्वानों ने कुल-नाश का अभिप्राय स्त्रियों के गर्भपात से लिया है। यदि गृह के द्वार परिमाण से अधिक हों तो राजपक्ष से भय होता है। यदि द्वार परिमाण से कम हो तो चोरभय, मुसीबतों व दुःख होता है। द्वार के ठीक ऊपर अन्य द्वार हो तो शुभ नहीं होता। कम चौड़ा भी अशुभ होता है। बहुत चौड़ा द्वार हो तो भुखमरी होती है। तिरछा या झुका हुआ द्वार हो तो वंश का नाश करने वाला होता है।

घर के भीतर की ओर झुका हुआ द्वार हो हर प्रकार से धन-जन की हानि होती है। बाहर की ओर झुका हुआ द्वार हो प्रवास की अधिकता होती है। द्वार जिस दिशा में लगा हो, उससे भिन्न दिशा में झुकाव हो या खुलता हो तो घर में दस्युयों से भय होता है।

घर के प्रधान द्वार को अधिक आकर्षक व सुन्दर बनाना चाहिए। मुख्य द्वार के समान शेष द्वारों का निर्माण नहीं करना चाहिए। मुख्य द्वार को कुम्भ, फल ,पल्लव, शिवजी के गण, नारिकेल (नारियल), लता , सिंह, सर्प, हंस आदि की प्रतिकृतियों से सुसज्जित करना चाहिए।[82]

इसी प्रकार वास्तु सौख्यम में द्वार वेध विषय पर चर्चा की गयी है। मुख्य द्वार मार्ग से विद्ध हो तो गृहस्वामी की मृत्यु होती है। वृक्ष के द्वारा मार्गविद्ध होने पर कुमार (घर के युवक)आचरण हीन होते हैं। कीचड़ द्वारा मार्ग वेध होने पर घर के निवासी शोक संतप्त होते हैं। जल के प्रवाह द्वारा मार्ग वेध होने पर खूब व्यय होता है। कुएं द्वारा मार्ग वेध हाने से मृगी रोग होता है। देव प्रतिमा द्वारा मार्ग वेध होने पर गृह स्वामी का विनाश होता है। किसी स्तम्भ से वेध होने पर सित्रियों में चरित्रहीनता आती है। ब्रम्हा के वेध से कुल का नाश होता है।[83]

इस प्रकार अवलोकन करें तो स्पष्ट होता है कि लगभग सभी ग्रन्थों में द्वार वेध पर सविस्तार वर्णन किया गया है।

---

(80) वास्तु सौख्यम्/ नवम् अध्याय/ श्लोक 359/आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल/संपूर्णानंद संस्कृत
(81) बृहत्संहिता / अध्याय 52 / श्लोक 75,76 /डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली .
(82) बृहत्संहिता / अध्याय 52 / श्लोक 77, 80/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
(83) वास्तु सौख्यम्/ नवम् अध्याय/ श्लोक 359/डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र/रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली



अध्याय - 5

निष्कर्ष एवं उपसंहार



अध्याय - 5

निष्कर्ष एवं उपसंहार



निष्कर्ष एवं उपसंहार

भारतीय सभ्यता व संस्कृति विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से है। भारतीय ऋषियों एवं मनीषियों ने सहस्त्रों वर्षों तक अपार कष्ट सहकर गिर-कंदराओं में अपने शोध केन्द्र स्थापित किये। प्रतीत होता है कि तत्कालीन गुरूकुल उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र थे। इन केन्द्रों में निःस्वार्थ लोक कल्याण की भावना से मानव जीवन के हर पहलू पर अनवरत शोध कार्य चलता था। इन्हीं शोधों की अनुपम कृति है वास्तु शास्त्र। इस शास्त्र की बारिकियों को देववाणी संस्कृत का प्रयोग कर संहिता बद्ध कर दिया गया।

प्राचीन काल में शिक्षा का प्रचार-प्रसार आम जन तक नहीं था जिस कारण लोगों का जटिल वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझना कठिन था। फलस्वरूप तत्कालीन ऋषियों ने हर पहलू को आस्था के साथ जोड़कर प्रतीक बना दिया ताकि लोग श्रद्धापूर्वक अपनी जीवन शैली को निर्देशानुसार बना लें।

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में वास्तु शास्त्र के विकास का क्रम दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के चौवनवें सूक्त में वास्तोष्पते (गृह पालक देव) शब्द का उल्लेख है जो कि इस तथ्य का ज्वलंत प्रमाण है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व भी हमारी सभ्यता विकास के शिखर पर थी। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के 54 वें सूक्त में वर्णन है :-

हे वास्तोष्यते (गृह पालक देव) आप हमें जगायें। हमारे यहां पुत्र-पौत्र आदि द्विपदों, गौ, अश्व आदि चतुष्पदों को निरोग एवं सुखी करें जो धन हम आपसे मांगे वह आप हमें प्रदान करें।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समय में भी है कि किसी गृह पालक (वास्तु) देव का अस्तित्व था। अगले सूक्त में वास्तु देवता के स्वरूप का भी वर्णन मिलता है। वास्तु देव श्वेत सरण (देव कुक्करी) के वंशधर हैं। पीले वर्ण वाले हैं। इन्हें वास्तोष्पति देव के नाम से संबोधित किया गया है। वास्तु देव के दांत विभत्स व चमकदार हैं।

यदि श्रृंखलाबद्ध ढंग से विचार करें तो आगे पुराणों में जो वास्तु पुरूष के स्वरूप की चर्चा की गयी है वह समान ही है।

अथर्ववेद में वास्तु शास्त्र के विकास की कहानी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अथर्ववेद में वर्णन है कि गृह निर्माण से पूर्व व्यक्ति वसु देवता का आव्हान करता है साथ ही ब्रम्हाण्ड की पांच मूलभूत शक्तियों का भी आव्हान करता है। अथर्ववेद के विस्तृत अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि भवन निर्माण कला उस समय प्रचलित थी क्योंकि स्थान-स्थान पर वास्तु संस्कार का उल्लेख मिलता है।

गृह प्रवेश के समय पूर्ण नारी का मंगल कलश सहित प्रवेश करना अत्यंत शुभ माना गया है। अथर्ववेद में इसका स्पष्ट उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

महर्षि बाल्मीकि प्रणीत रामायण में स्थान-स्थान पर वास्तु शास्त्र की चर्चा की गयी है। वनवास काल में जब राम, सीता-लक्ष्मण सहित पर्णशाला का निर्माण करते हैं उस समय वास्तु शान्ति का उल्लेख है। भवनों के प्रकार वास्तु पद विन्यास बलिकर्म विधानों का भी वर्णन मिलता है।

बृहत् संहिता में तो वास्तु शास्त्र के लगभग सभी पहलुओं का सविस्तार वर्णन है।

भारतीय वाङ्गमय में पुराणों का अपना एक विशेष स्थान है। पुराण भारत के अतीत की गौरवशाली परंपरा के स्पष्ट हस्ताक्षर हैं। आज भी भारत के घर-घर में पौराणिक शिक्षाप्रद कथायें प्रचलित हैं।

पुराण काल में ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तु शास्त्र के समस्त विषयों का पूर्ण-रूपेण विकास हो चुका था तभी तो वास्तु पुरूष की उत्पत्ति, स्वरूप वास्तु पद विन्यास, गृह निर्माण योजना, भूमि परीक्षा नगर नियोजन आदि पर प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

समस्त अठारह पुराणों में कमोबेश वास्तु शास्त्र की ज्ञान गंगा प्रवाहित है। उल्लेखनीय रूप से मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य महापुराण, स्कन्ध पुराण आदि में यह ज्ञान पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

पुराणों में वास्तु शास्त्र के अठारह उपदेशकों/आचार्यो का उल्लेख मिलता है। ये हैं - भृगु, अत्रि, वशिष्ट, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजीत, विशालाक्ष, पुरंदर, ब्रम्हा, कुमार, नंदीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरूद्ध, शुक्र एवं वृहस्पति। आगे चलकर वास्तु शास्त्र के ये मुख्य प्रवर्तक हुए। कालांतर में वास्तु शास्त्र की दो मुख्य धाराएं प्रतीत होती हैं - पहला उत्तर भारतीय शाखा जिसके मुख्य आचार्य विश्वकर्मा हुए। दूसरी शाखा दक्षिण भारतीय शाखा हुई जिसके प्रवर्तक दानव शिल्पी मय हुए।

वास्तु शास्त्र के चार प्रमुख प्रमाणिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें से दो उत्तर भारतीय शाखा के हैं :

1. विश्वकर्मा प्रकाश 2. राजा भोज द्वारा रचित समरांगण सूत्रधार

दक्षिण भारतीय शाखा में भी दो प्रमुख ग्रन्थ स्थापित हैं :

1. मानसार 2. मयमतम्

इन सभी ग्रन्थों में वास्तु शास्त्र के गूढ़तम रहस्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अन्य कई ग्रन्थ भी प्रमुखता से स्थापित हैं। यथा वास्तु राज वल्लभ, वास्तु शौख्यम, वास्तु माणिक्य रत्नाकर आदि।

उपनिषदों में भी वास्तु शास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों पर प्रकाश डाला गया है।

अध्ययन का क्षेत्र जैसे-जैसे व्यापक होता जाता है वास्तु विज्ञान के रहस्य स्वतः सुलझते जाते हैं। संहिता, स्मृति, ब्राम्हण आदि में वास्तु श्मस्त्र के बारीक से बारीक ज्ञान को सहजता से प्रस्तुत किया गया है। इस श्रृंखला में बृहत् संहिता का अपना एक विशिष्ट महत्व है। वास्तु पद विन्यास से लेकर गृह निर्माण में कक्ष नियोजन, गृह के चहुंदिश वनस्पतियों की व्यवस्था, विविध दिशाओं के द्वार आदि विषयों की सूक्ष्मता से बृहत् संहिता में विवेचना की गयी है।

वास्तु के ग्रन्थों मानसार, मयमत्म, विश्वकर्मा वास्तु शास्त्र, समरांगण् सूत्रधार आदि में वास्तु शास्त्र सम्पूर्णरूप से पल्लवित, पुष्पित दिखाई पड़ता है। मयमत्म एवं मानसार में तो वास्तु शास्त्र मात्र भवन/नगर निर्माण तक सीमित न होकर भाव, शास्त्र,चित्रकला तक पहुंच गया है। इनका भी समग्र विश्लेषण दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्ष रूप में देखा जाय तो शोध अधययन से यह तथ्य प्रभावित होता है कि वास्तु शास्त्र वैदिक ज्ञान है। वास्तु शास्त्र के समस्त ज्ञान एवं विषय वस्तु वैदिक ग्रंथों में निहित हैं।

इस शोध अध्ययन में यह इसकी परिकल्पना निर्धारित की गयी थी कि वास्तु शास्त्र के समस्त सिद्धान्त वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं।

भारत वर्ष की यह विडम्बना रही है कि हम परमुखापेक्षी हो गये हैं। जब तक पश्चिम के देश किसी बात को प्रमाणित न कर दें हम उस पर यकीन नहीं करते। यही बात वास्तु शास्त्र पर लागू होती है। हमने पाश्चात् दर्शन के अनुकरण में अपनी वैदिक धरोहर विस्मृत कर दिया। अब जब वास्तु शास्त्र का प्रचार-प्रसार एवं व्यवहार पश्चिम के लोग करने लगे तो हम पुनः वास्तु शास्त्र की महिमा का बखान करने लगे।

वास्तु शास्त्र के समस्त सिद्धांत आकाशीय पिण्डों , ग्रह, नक्षत्र,तारों आदि की गति एवं दिशा को आधार मान कर बनाये गये हैं। वैज्ञानिक शोधों के द्वारा जो तथ्य उभरकर सामने आये हैं उनकी सूची इस प्रकार है।

सूर्य पृथ्वी पर आने वाली उर्जा का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। सूर्य के प्रकाश में पराबैंगनी (Ultra Voilet) एवं अवरक्त (Infra - Red) दो प्रकार के विशेष किरणें होती हैं। सूर्य के प्रकाश के वर्ण क्रम में लाल रंग में अवरक्त किरणों की प्रचुरता होती है जबकि बैंगनी प्रकाश के परा बैगंनी किरणों की प्रमुखता होती है। वैज्ञानिक शोधों द्वारा यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि दोपहर के बाद एवं सूर्यास्त से पूर्व प्रकाश की किरणों में पराबैगंनी किरणों की मात्रा बढ़ जाती है जो स्वास्थ्य के लिये अत्यंत हानिकारक हैं।

वर्ष में सूर्य की गति एवं उदय होने की दिशा में कुछ परिवर्तन होता है। इस प्रकार सूर्य की किरणों का प्रभाव अलग दिशाओं से पृथ्वी व वास्तु रचना पर पड़ता है। सूर्य की गति 22 दिसम्बर से 20 जून तक उत्तरायण होती है जबकि 21 जून से 21 दिसम्बर तक सूर्य दक्षिणायण होता है। सूर्य के उदय होने की दिशा उत्तर पूर्व में कुछ अंशों तक परिवर्तित होती है। सूर्योदय के समय सूर्य की रश्मिया जिन में हानिकारक पराबैंगनी किरणे नहीं होती सर्वप्रथम उत्तर-पूर्व (ईशान) कोण पर पड़ती हैं। इसी कारण वास्तु के नियमों में कहा गया है कि उत्तर और पूर्व को खुला रखना चाहिये ताकि अधिक से अधिक उर्जा का प्रवाह घर/नगर/ग्राम में हो सके। नगर नियोजन में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उत्तर या पूर्व में पर्वत का उंची रचना न हो। भूमि का ढाल भी उत्तर व पूर्व में होना चाहिये। भवन निर्माण में पूर्व व उत्तर में कम ऊँचाई का खुला बरामदा बनाना चाहिये। प्रवेश द्वार भी उत्तर, पूर्व या ईशान (उत्तर-पूर्व) का होना उत्तम है। कारण यह है कि जब सूर्य की रश्मियां इन दिशाओं पर पड़ती हैं तो रात्रि की गैस आदि गर्म होकर प्रसारित होती हैं एवं एक प्रकार का शून्य (Vacuum) उत्पन्न होता है। जब हम किसी भी कार्य या प्रयोजन से बाहर निकलते हैं तो मष्तिक में शांति एवं शरीर स्फूर्तिवान बनता है।

इसी कारण पूजा या साधना कक्ष भी ईशान कोण पर बनाने का मार्गदर्शन दिया गया है।

जल का स्रोत (कूप/बोरिंग) आदि भी ईशान (उत्तर-पूर्व) कोण में बनाने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार जब सूर्योदय की प्रथम उर्जायुक्त किरणें जल स्रोत पर पड़ती हैं तो जल को हानिरहित और शुद्धता प्रदान करती हैं। ईशान कोण में ऊँचे वृक्ष आदि भी वर्जित हैं। यदि भूलवश ईशान कोण में शौचालय का निर्माण करा दिया गया है तो वह सम्पूर्ण उर्जा प्रवाह और जल साधनों को प्रदुषित करके नुकसान पहुँचाता है। पुरातन काल मनीषियों ने इस वैज्ञानिक तथ्य को आस्था के प्रश्न से जोड़ दिया एवं कहा कि यहां वास्तु पुरूष का सिर है एवं इस स्थान को अधिक से अधिक खुला एवं शुद्ध रखना चाहिये। इसका कारण यह था। कि साधारण जन भी वास्तु के नियमों को जीवन में अपना कर सुखी हो सकें।

दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) कोण भी वास्तु रचना में अति महत्व का है। सूर्य की अवरक्त (Infra - Red) किरणें जल में अवशोषित होकर स्वास्थ्य को हानि पहुंचाती हैं। जल और अग्नि दोनों परस्पर विपरीत स्वभाव के हैं। पंच मूल भूत शक्तियों में जल अग्नि का विशिष्ट स्थान है। आग्नेय कोण से सूर्य उर्जा का हानिकारक प्रभावों को कम करने के लिये आग्नेय कोण में अग्नि से जुड़े वस्तुओं यथा रसोई घर, ब्वायलर बिजली का मीटर, मोटर आदि की स्थापना करनी चाहिये।

वास्तु के सिद्धान्तों के अनुसार दरवाजे खिड़की रोशन दान आदि का निर्माण उत्तर व पूर्व की ओर अधिक से अधिक व पश्चिम व दक्षिण की ओर बिल्कुल नहीं करना चाहिये। इसका वैज्ञानिक तथ्य है कि दोपहर के बाद एवं सूर्यास्त से पूर्व सूर्य के प्रकाश में पराबैंगनी (Ultra Voilet) किरणों की तीव्रता बढ़ जाती है। इस प्रकार यदि पश्चिम व दक्षिण की ओर दीवारों को उंचा भारी एवं मोटा बनाना चाहिये तथा इस ओर बंद होना चाहिये। इस तथ्य को वास्तु में प्रतीक रूप में यम के द्वारा निरूपित किया गया है। अर्थात दक्षिण में यम का निवास है अतः प्रवेश द्वार,

खिड़की दरवाजे आदि इस ओर नहीं बनाना चाहिये। दक्षिण की ओर ऊँचे छायादार वृक्ष भी लगाना चाहिये। इस प्रकार पराबैंगनी किरणों के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है।

दक्षिण-पश्चिम कोण (नैऋत्य)में जल स्त्रोत आदि भी नहीं होना चाहिये। शौचालय, सेप्टिक टैंक आदि इस ओर उचित हैं। भारत में अधिकांशतः पछुआ हवायें बहती हैं, इस प्रकार उत्तर-पश्चिम कोण (वायव्य) पर बड़ी खिड़कियों का निर्माण करना चाहिये ताकि वर्ष भर स्वास्थ्यप्रद वायु का आवागमन हो सके। वैज्ञानिक शोधों से इस बात की पुष्टि हो चुकी है कि मानव शरीर भी एक चुम्बक की भांति है। मानव शरीर में इतना लौह तत्व उपस्थित है कि उससे लोहे की कील का निर्माण किया जा सकता है। पृथ्वी भी एक बड़े चुम्बक की तरह कार्य करती है। वास्तु शास्त्र के अनुसार सिर दक्षिण व पैर उत्तर में करके शयन करना उत्तम कहा गया है। इसका कारण यह है कि चुम्बक के दो परस्पर समान ध्रुव आपस में विकर्षण करते हैं जबकि दो विपरीत ध्रुव के कारण आपस में उद्वेलन नहीं होता है। इस प्रकार दक्षिण में सिर करके शयन करने से रात्रि को नींद अच्छी आती है, मानसिक शांति व स्वास्थ्य उत्तम रहता है। इसके विपरीत ही समान ध्रुव के कारण (उत्तर की ओर सिर करके सोने से) विद्युत चुम्बकीय तरंगें मस्तिष्क में अशांति पैदा करती हैं जिस कारण हृदय गति में वृद्धि, श्वांस रोध, उत्तेजना, रक्त चाप आदि के विकार उत्पन्न होते हैं। अनिद्रा दुःस्वप्न आदि की भी विकृति आती है।

वास्तु नियमानुसार यह भी निर्देश दिया गया है कि बीम के नीचे शयन करना अथवा बैठना नहीं चाहिये। इसका मुख्य कारण यह है कि पूरी संरचना में भार बीम पर ही क्रियाशील होते हैं। इस प्रकार गुरूत्व का बल बीम से नीचे की ओर प्रसारित होता है। अतः बीम के नीचे बैठने या शयन करने से मस्तिक में तनाव चिड़चिड़ापन आदि आता है। चंद्र के आकर्षण बल के कारण समुद्र में ज्वार एवं भाटा आता है मानव शरीर में लगभग 70 प्रतिशत जल स्त्रोत होता है। जल का प्रतिशत महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा अधिक होता है। चंद्र का प्रभाव मानव शरीर पर भी पड़ता है। महिलाओं पर चंद्रमा का प्रभाव अधिक पड़ता है। इस चंद्र प्रभाव को संतुलित करने हेतु दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) कोण में रसोई घर की स्थापना की जाती है। वास्तु शास्त्र के सिद्धांत दिशा विज्ञान, भू-चुम्बकीय क्षेत्र, सूर्य के आभा मण्डल का प्रभाव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, ज्योतिष आदि को ध्यान में रखकर निर्मित किया गया है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में देखा जाय तो जो इसकी परिकल्पना तय की गयी थी वह पूर्ण रूपेण सत्य सिद्ध होती ह। यद्यपि वास्तु के अन्य सिद्धान्तों को अभी वैज्ञानिक कसौटी पर कसा जाना बाकी है।

तीसरी परिकल्पना यह की गयी थी कि भारतीय वास्तु ज्ञान भवन निर्माण कला न होकर सम्पूर्ण जीवन पद्धति है एवं चौथी परिकल्पना यह है कि यदि नगरों का नियोजन वास्तुशास्त्रीय ढंग से किया जाय तो वहां रहने वाले लोग उनके उद्योग व्यवसाय आदि समृद्धि को प्राप्त करते हैं।इन दोनों परिकल्पनाओं को एक साथ लेकर चलना उचित होगा। भारतीय भवन निर्माण योजना पर दृष्टिपात करें तो यह प्रतीत होता है कि वास्तु के सारे नियांत मानव जीवन के हर पहलू एवं समाज के हर वर्ग के लोगों को ध्यान में रख कर बनाये गये हैं। नगर नियोजन से पूर्व यह तय कर लेना चाहिये कि भूमि योग्य है या नहीं। नगर नियोजन के लिये समतल भू-प्रदेश स्निग्ध, सारवाली, शुद्ध दक्षिण की ओर जलाशयों से युक्त जल के बहुतायत वाला, घने वृक्षों से आच्छादित, पूर्व की ओर ढ़ाल वाली भूमि उपयुक्त होती है। नगर को ऐसी भूमि में बसाना चाहिये जहां आयुर्वेदिक औषधियां उत्पन्न होती हो जहां स्वच्छ सुस्वादु जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो।नगरों में देवालयों के निर्माण पर भी जोर दिया गया है, साथ ही यज्ञ मण्डपों की भी बहुतायत होनी चाहिये। नगर में मार्ग व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिये कि वाहन आदि सुविधापूर्वक गुजर सकें। नगरों में मिथुनों के लिये सुन्दर, मनोरम, रतिप्रद स्थान भी होना चाहिये।

नगर नियोजन के लिये सर्वप्रथम नगर की नाप कर लेनी चाहिये उसके पश्चात नगर में वास्तु पद विन्यास करना चाहिये। पदविन्यास के बाद समस्त देवताओं की पूजा अर्चना करके बलि समर्पित करना चाहिये।

तत्पश्चात नगर का विधिवत् नियोजन करना चाहिये। नियोजन के उपरान्त समाज के विविध वर्गों के लोगों को उनके अनुसार गृह निर्माण हेतु स्थान देकर गृह नियोजन करना चाहिये। गृह नियोजन से पूर्व शिलान्यास विधि पूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। अन्तिम चरण में गृह प्रवेश करना चाहिये।

नगर नियोजन से पूर्व भूमि शुद्धि का भी विधान किया गया है। नगर नियोजन में चारों दिशाओं में चार मुख्य द्वारों का निर्माणा करना चाहिये। पुरातन में शास्त्रो में द्वारों का परिमाण इस प्रकार बताया गया है कि इस में हानी आदि सुगमता से प्रवेश कर जायें। सम्प्रति हाथ आदि का अभिप्राय बड़े मालवाहक ट्रकों से लेना चाहिये। नगर के सुरक्षार्थ परकोटों आदि के भी निर्माण का प्रावधान है।

भारतीय भवन निर्माण योजना की महानता इस बात से दृष्टिगोचर होती है कि नगर नियोजन में विविध व्यवसाय करने वाले लोगों को, विविध जाति के लोगों को प्रतिनिधित्व दिया गया है।

वास्तु के लगभग समस्त मूल ग्रन्थों पुराणों आदि में नगर की वसति योजना पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। तत्कालीन परिपेक्ष्य में नगर में उस समय की परिस्थितियों के अनुसार नियोजन किया गया था। आवश्यकता है आज के युग व समय के अनुसार नगर नियोजन को स्वरूप देने की।

नगर की वसतियोजना का स्वरूप निम्न प्रकार हो सकता है।

दक्षिण-पूर्व भाग -

नगर के दक्षिण-पूर्व भाग में इस प्रकार के लोगों के आवास व इनकी दुकाने बनानी चाहिये जो कि स्वर्ण आभूषण का निर्माण व व्यवसाय करते हो। साथ ही इसी भाग में लोहे से बनी वस्तुओं के विनिर्माण यथा-स्टील फैब्रिकेशन, लेथ का कार्य, आदि कार्य करने वाले लोगों हेतु व्यावसायिक परिसरों एवं आवास आदि का निर्माण करना चाहिये। इसी भाग में फैक्ट्री आदि का निर्माण करना चाहिये।

दक्षिण भाग -

नगर के दक्षिणी भू-भाग में मनोरंजन से जुड़े लोगों के आवास होने चाहिये। नगर में सिनेमा घरों, थियेटरों, नाट्य शालाओं, मदिरालयों आदि का स्थान भी दक्षिणी भाग में होना चाहिये।

नगर में मृतकों के अंतिम संस्कार हेतु भी श्मशान स्थल का निर्माण दक्षिणी भाग में ही करना चाहिये।

दक्षिण पश्चिम भाग -

नगर के दक्षिणी पश्चिमी भाग में खेल-तमाशा दिखा कर जीविकोपार्जन करने वाली जाति नट दूसरों (राजपुरूषों) का गुणगान कर जिनकी जीविका चलती है जिसे भाट कहा जाता है एवं मछुआरों/मल्लाहों को बसाना चाहिये।

पश्चिम -

नगर के पश्चिमी भाग में वाहन चालकों, पुलिस विभाग के सिपाहियों को स्थापित करना चाहिये। पुलिस लाइन आदि का स्थान भी यही है। गौ-शाला का निर्माण भी नगर के इसी भाग में करना चाहिये।

पश्चिम - उत्तर भाग -

इस भाग में नगर में प्रशासनिक अधिकारी-कलेक्टर, डिप्टी कलेक्टर, तहसीलदार एवं अन्य कर्मचारियों को बसाना चाहिये। कलाकारों संगीतज्ञों, चित्रकारों, आदि का निवास भी इसी दिशा में होना चाहिये।

उत्तर दिशा -

नगर की उत्तर दिशा में तपस्वियों, ब्राम्हणों, यतियों को स्थान देना चाहिये। इस प्रकार नगर में ऋषि मनीषियों के साधना हेतु तपोभूमि गुरूकुल आदि इसी ओर बसाना चाहिये। नगर के कृषि कार्य करने वाले लोगों को भी इसी ओर बसाना चाहिये।

पूर्व - उत्तर (पूर्वोत्तर) दिशा -

दैनिक एवं साप्ताहिक बाजार जहां फल एवं खाद्य पदार्थ अनाज, सब्जी, तेल आदि मिलते हो उनके लिये पूर्व-उत्तर की दिशा उपयुक्त है।

पूर्व दिशा -

पूर्व दिशा में पुलिस एवं सुरक्षा बलों के कप्तानों, खुफिया विभाग के कार्यालय तथा उनके अधिकारियों के निवास होने चाहिये।

इसी प्रकार रिजर्व पुलिस बल, सेना, पुलिस लाईन हेतु स्थान दक्षिण पूर्व की ओर होना चाहिये।

नगर या राज्य के सचिवों कोषालयों के अधिकारियों, इंजीनियरों एवं राज मिस्त्रियों तथा शिल्पकारों का स्थाान नगर के पश्चिम में होना चाहिये।

नगर में चारों वर्णो ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के लिये पृथक-पृथक दिशा नियत है :-

ब्राम्हण - उत्तर दिशा

क्षत्रिय - पूर्व दिशा

वैश्य - दक्षिण दिशा

शूद्र - पश्चिम दिशा

नगर में सफाई कार्य करने वाले लोगों को नगर के चारों दिशाओं में बसाना चाहिये।

नगर में देवालयों की अनिवार्य स्थापना करने का निर्देश दिया गया है। जिस नगर में देव प्रतिमाओं की स्थापना नहीं होती वहां बुरी शक्तियों का वास होता है तथा नगर में वास करने वाले लोग रोग दुःख आदि कष्टों से ग्रसित रहते हैं।

नगर के पूर्वी द्वार के दोनों तरफ लक्ष्मी तथा कुबेर जी की अनिवार्य स्थापना करनी चाहिये। अन्य देव मंदिरों की स्थापना भी सुविधा तथा निर्देशानुसार की जानी चाहिये।

नगर की सुरक्षा के लिए ब्रम्हा, विष्णु तथा महेश आदि की मूर्तियां भी स्थापित करनी चाहिए।

वास्तु शास्त्र के प्रमाणिक ग्रन्थों में नगर के कई प्रकार बताये जाते हैं। नगर के विस्तार के आधार पर एवं उसकी वसति योजना के आधार पर विद्वानों ने नगरों के प्रकार बताये हैं। विशेष रूप से अग्नि पुराण, मयमतम, मानसार एवं समरांगण सूत्रधार में नगर विन्यास नियोजन पर सारगर्भित किन्तु सविस्तार जानकारी उपलब्ध है।

समरांगण सूत्रधार में चालीस प्रकार के वास्तु संस्थान क्षेत्रों का विभाजन किया गया है। भूमि के आकार के आधार पर सम, चतुरश्र , सायि, दीर्घ वृत,शम्बुक, शकयकृति, भगाकृति , आदर्शाकृति, वश्राकृति, कन्याकृति , छिन्नकर्ण , विकर्ण, शंख सदृश, क्षुर सन्निभ, शक्ति मुख,कूर्मपृष्ठ, सदंश, व्यजनाकृति, शक्ति मुख,

शरावाकृति, स्वस्तिकाकृति, पणवाकार , मृदङ्गाकार,विर्शकर, कबंधाकृति, यवमध्य समाकृति, उत्सङ्गाकार, गजदंताकार, परशु-सदृश्य विश्रावित, श्वभ्र, प्रलम्ब,विवाहिक, त्रिकुष्ट, पञ्चकुष्ट, परिच्छिन्न, दिकस्वस्तिकाभ, श्री वृक्ष, वर्धमान समानन, एणीपद,नरपद आदि चालीस वास्तु संस्थान के क्षेत्र बताये गए हैं।

भूमि के स्वभाव के अनुसार लोगों को निवास करना चाहिए। उदाहरण के लिए सम व चतुर श्र में राजा का निवास होना चाहिए जबकि भग संस्थान में वेश्याओं का निवास होना चाहिए।

इसी प्रकार संमरागण के अध्याय 19 का गहन विश्लेषण करें तो पता चलता है कि समाज के हर वर्ग की सुख-सुविधा का ध्यान वास्तु के नियमों में रखा गया है। विविध माध्यमों से जीविकोपार्जन करने वाले लोगों यथा-मांस का व्यापार करने वाले, स्वर्णकार, बढ़ई , वैश्यायें, बहेलिये, माली,मजदूर,नाई, शराब बेचने वाले,कैदियों आदि हेतु भी अलग-अलग प्रकार के वास्तु संस्थान का प्रावधान किया किया गया है। इस प्रकार यहां स्पष्ट है कि शोध हेतु जो तीसरी परिकल्पना निर्धारित की गयी कि वास्तु शास्त्र भवन निर्माण कला न होकर सम्पूर्ण जीवन पद्धति सत्य है।

वैदिक ग्रन्थों में नगरों के विविध प्रकार एवं उनकी आकृति का वर्णन मिलता है। मानसार , मयमतम् एवं समरांगण में नगरों के शुभ-अशुभ स्थितियों के अनुसार नगर के भेद बताये हैं। समरांगण -सूत्रधार के अनुसार कुछ विशेष प्रकार के नगर होते हैं जिन्हें निन्दित कहा गया है। ऐसे नगरों में बसने वाले लोग विभिन्न व्याधियों से ग्रस्त रहते हैं । ये नगर हैं यछिन्नकर्ण, विकर्ण, वश्राकृति, सूचीमुखाकार, वर्तुलपुर, व्यजनाकार, चापाकार, शकटद्विसमाकार, द्विगुणायत, संस्थान। उदाहरण स्वरूप छिन्नकर्ण पुर में वास करने वाले लोगों को व्याधि,शत्रुओं एवं चोरों से निरंतर खतरा बना रहता है। विकर्ण में वास करने वाले लोग अल्पायु एवं सन्तानहीन होते हैं तथा उन्हें दुष्टराजा का कुशासन मिलता है। वज्राकृति नगर में वास करने से स्त्री से पराजय होती है। सूचीमुखाकार में लोग भूख एवं कष्टों से युक्त होते हैं। वर्तुल नगर के लोग अल्पायु होते हैं। व्यजनाकार नगर में लोग असत्यवादी एवं रोग ग्रस्त होते हैं। चापाकार के लोग चरित्रहीन स्त्रियों से युक्त एवं नपुंसक होते हैं। शकट द्विसमाकार में अग्नि , रोग, शोक एवं चोरों से भय होता है। द्विगुणायत संस्थान में लोगों के चतुष्पदों(घोड़े हाथियों) का नाश होता है तथा ऐसा नगर बलशाली शत्रुओं से पराजित होता है।

अतः वास्तु में वर्णित जो प्रशंसित नगरों के माप में एवं विन्यास वर्णित हैं उन्हीं के अनुरूप नगरों का निर्माण कर सुखपूर्वक निवास करना चाहिए।

भारत में नगरों का निर्माण अति प्राचीन है। पुरातन वैदिक एवं समसामयिक ग्रन्थों में कई नगरों , अयोध्या, मथुरा, द्वारिका, पाटली पुत्र आदि का वर्णन मिलता है। मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त अवशेष नागरिक सभ्यता (सिन्धु घाटी की सभ्यता) के ज्वलंत प्रमाण है। विदेशी आक्रांताओं के आगमन से भारतीय वैदिक परंपरा का प्रयोग बाधित हुआ। विदेशियों ने भारतीय जीवन शैली को बलपूर्वक नष्ट करने की कोशिश की। कई मूल ग्रन्थों को भी समय-समय पर नष्ट करने का प्रयास किया गया। परिणाम स्वरूप भारतीय नगरों/भवनों आदि में वास्तु शास्त्रीय सिद्धांतों का प्रयोग कम होने लगा एवं धीरे-धीरे लुप्त प्रायः हो गया। पूज्य महर्षि जी एवं अन्य पुण्यात्माओं ने अथक परिश्रम कर भारतीय वैदिक ज्ञान को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया है। आज लोग महानगरों/नगरों ही नहीं बल्कि ग्रामों तक वास्तु ज्ञान से परिचित हो रहे हैं। नगर, स्कूल, कॉलेज, सभा भवन, मंदिर एवं भवनों (निवास गृह) आदि के निर्माण वास्तु शास्त्रियों के परामर्श से किये जा रहे हैं।

शोधार्थी ने प्रतिदर्श के रूप में प्रस्तुत नगर का वास्तु के नियमों को आधार मानकर विश्लेषण किया। विश्लेषण व निष्कर्ष अध्याय 3 में सविस्तार वर्णित हैं।

अध्याय 3 के शोध कार्यों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि नगरों की वास्तु रचना पर प्राकृतिक शक्तियों का प्रभाव पड़ता है। यदि नगरों का नियोजन वास्तु सम्मत हो तो नगर का चहुंमुखी विकास होता है नगर की संरचनाएं स्थायी होती है।

भारत में निर्मित तिरूपती देवस्थानम् ,लक्ष्मी नारायण मंदिर एवं कई अन्य नियोजन जो कि वास्तु के निर्देशानुसार निर्मित हैं आज भी अति समृद्ध शाली है एवं अक्षुण्य बने हुए है भारत का पुराना जयपुर शहर भी वास्तु निर्माण की अनुपम रचना है।

अतः परिकल्पना क्रं. 5 का यदि अवलोकन करें तो वह सत्य प्रतीत होती है।

यदि नगर का नियोजन करना हो तो अगला क्रम भवन निर्माण ही होगा बिना गृह निर्माण के नगरों की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतः अध्याय 4 में आदर्श गृह निर्माण के विषयों पर सविस्तार चर्चा की गयी है।

भविष्य महापुराण में वर्णन है कि व्यक्तियों को अपना स्वयं का घर बनाकर उसमें निवास करना चाहिए। यदि हम किराये के मकान में निवास करते हैं तो वहां किये गये पुण्य कर्मों का भागीदार उस भवन का स्वामी हो जाता है। इस प्रकार व्यक्तियों के किये गये शुभ-अशुभ समस्त कर्मों का फल उन्हें प्राप्त नहीं होता। भारतीय वास्तु ज्ञान का उद्‌देश्य जन सामान्य के जीवन को श्रेस्कर बनाना है तभी तो यदि व्यक्ति सक्षम न हो तो पर्णशाला, मिट्टी का घर,ईट आदि का घर भी बनाकर निवास करने का निर्देश दिया गया है।

सार यह है कि व्यक्ति का स्वयं का ही निवास होना चाहिए। व्यक्ति को कहां निवास बनाना चाहिए इस हेतु भी स्पष्ट मार्ग दर्शन वैदिक वास्तु विज्ञान करता है। व्यक्ति को अपना निवास धार्मिक जनों से युक्त प्रदेश में बनाना चाहिए। आवास निर्माण से पूर्व गुरूजनों से अनुमति प्रदान करना चाहिए तथा पड़ोसियों की सुविधा का ध्यान रखना चाहिए। व्यक्तियों को प्रवेश द्वार ,चौराहा, राजभवन हिंसक प्रवृत्ति के लोगों, कारीगरों के मकान, वैश्याओं के निवास, पाखण्डी लोगों के निवास, देव मंदिर की गली, राजमार्ग एवं राजकुल के लोगों के निवास से बहुत दूर अपनी शक्ति के अनुसार सुरक्षित भवन बनाकर निवास करना चाहिए। स्थल का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि चारों ओर सच्चरित्र लोगों के निवास हों तथा पड़ोसी दुष्ट स्वभाव वाले न हों।

वास्तु शास्त्र में आवास निर्माण हेतु उत्तम भूमि के लक्षण का भी वर्णन है। ऐसी भूमि जहां उत्तम जड़ी बूटियां उगती हों जहां ढाक, पीपल आदि के वृक्ष हों भूमि समतल हो ,उपजाऊ हो, स्निग्ध हो तथा जिसकी ढाल उत्तर या पूर्व की ओर हो।

वह भूमि जहां समाधि वृक्ष अधिकता मेंहों, सर्पो का निवास हो, वाराह, बंदर, गीदड़ आते हों निवास योग्य नहीं है इस प्रकार कई बिन्दुओं को ध्यान में रखकर भूमि क्रय करना चाहिए।

भूमि क्रय करने के उपरांत व्यक्ति को भली प्रकार से भूमि परीक्षा कर लेनी चाहिए। भूमि परीक्षा से सम्बन्धित कई विधियां वास्तुशास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित है। कुछ मुख्य विधियां हैं:-

1. प्लव परीक्षण :-

उत्तर व पूर्व के ओर ढाल वाली भूमि श्रेष्ठ है।

2. वर्ण परीक्षा :-

ब्राम्हणों के लिए श्वेत, क्षत्रिय के लिए रक्त, वैश्य के लिये पीत, एवं शूद्र के लिए काली मिट्टी प्रशंसनीय है।

3. स्वाद परीक्षण:-

ब्राम्हणों के लिए मीठी, क्षत्रिय के लिए कसैली, वैश्य के लिए तीखी, शुद्र के लिए कड़वे स्वाद वाली भूमि उपयुक्त है।

इसी प्रकार अन्य विधियां भी भूमि परीक्षा के विषय में मार्गदर्शन करती है।

भूमि में शल्य (हड्डी) का भी विचार भली प्रकार करना चाहिए यदि भूमि में शल्य हो तथा उसका भूमि पूजन कर लिया जाय तो यह भयकारक होता है। अत: शल्य खोद कर बाहर निकालने के पश्चात ही शिलान्यास आदि कार्य करना चाहिए विविध जन्तुओं के शल्य यदि भूमि में हो तो उनके परिणामों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

भली प्रकार वास्तु पूजन करके गृह का निर्माण वास्तु सम्मत रीति से कराना चाहिए। एक आदर्श गृह में कक्ष नियोजन किस प्रकार हो इस पर भी विद्वानों ने अपने मत दिये हैं। वैदिक रीति से कक्ष नियोजन निम्न प्रकार उचित है:-

1. पाठशाला:- घर के दक्षिण- पूर्व कोण पर होनी चाहिए।

2. शयन कक्ष:- शयन कक्ष का निर्माण दक्षिण दिशा में करना चाहिए।

3. अस्त्र शस्त्र :- अस्त्र शस्त्र हेतु दक्षिण दिशा उपयुक्त है।

4. उत्तम धन :- उत्तम धन का स्थान अम्बुपेश नामक देवता के पद में होना चाहिए।

5. सुगन्धित द्रव्य पुष्पमाला :- इनका उपयुक्त स्थान पश्चिमी कोण पर स्थित कमरा है।

6. गौशाला :- गौओं एवं पशुओं का स्थान उत्तर दिशा में होना चाहिए।

7. दीक्षा ग्रहण करने हेतु :- दीक्षा हेतु कमरा पूर्व की ओर उचित है।

8. रसोई घर :- दक्षिण-पूर्व(अग्नि) कोण में उचित है।

9. देव स्थान/शांति कक्ष :- देव स्थान पूजा एवं साधना हेतु ईशान कोण (पूर्वोत्तर) उचित है।

10. जल का स्थान :- उत्तर दिशा में जल का स्थान होना चाहिए।

11. घरेलू सामग्रियों का स्थान :- घर के दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण) में घरेलू सामग्रियों को रखना चाहिए।

12. अन्नागार :- घर के वायव्य कोण (उत्तर-पश्चिम) में अन्न का संग्रह करना चाहिए।

13. अग्रजों पिता, पिता तुल्य श्रेष्ठ जनों का निवास दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में होना चाहिए।

गृह में कूप निर्माण पर भी प्रकाश डाला गया है। मकान के अन्दर यदि कूप निर्माण आवश्यक हो, तो पूर्व भाग में, उत्तर में एवं पश्चिम में निर्माण किया जा सकता है, परन्तु ईशान कोण में कूप या जल का स्थान सर्वोत्तम होता है।

व्यक्ति को भवन निर्माण के उपरान्त भवन के चारों ओर उत्तम वृक्षों को लगाना चाहिए। वास्तु के अनुसार पूर्व दिशा में बरगद, पश्चिम में पीपल, उत्तर में पाकड़, दक्षिण में गूलर का वृक्ष मंगलकारी होता है। अन्य शुभ वृक्ष हैं - नाग केशर, अशोक, मौलसिरी, तिलक पुष्पी।

वास्तु-शास्त्र में भवन के प्रवेश द्वार पर विशेष ध्यान दिया गया है। किसी भी भवन का प्रवेश द्वार

अत्यन्त सोच विचार कर बनाना चाहिए। सब प्रकार के भवनों में प्रवेश दाहिनी ओर से करना चाहिए। दिशाओं के अनुसार भी प्रवेश द्वार बनाने हेतु निर्देश दिया गया है । पूर्व दिशा का प्रवेश द्वार इन्द्र एवं जयन्त नामक देवताओं के पदों पर करना चाहिए। दक्षिण दिशा का प्रवेश द्वार याम्य एवं वितथ के पदों में बनाना चाहिए। पश्चिम दिशा में प्रवेश द्वार पुष्प दन्त एवं वरूण के स्थान पर प्रशंसित है। उत्तर दिशा में भल्लाट एवं सौम्य इन दोनों पदों पर द्वार का निर्माण कल्याणकारी होता है।

वास्तु-शास्त्रीय ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न देवताओं के पदों पर स्थित भिन्न-भिन्न दिशाओं के द्वारों के फल का सविस्तार वर्णन किया गया है। चारों वर्ण के लोगों के आवास-गृहों के मुख्य द्वारों का विश्लेषण भी किया गया है। व्यक्ति के राशियों के आधार पर भी भवन के प्रवेश द्वार बताये गये हैं। कर्क, वृश्चिक एवं मीन राशि के व्यक्तियों के लिए पूर्व दिशा का द्वार शुभ है। कन्या, मकर एवं मिथुन राशि के व्यक्तियों के लिए दक्षिण दिशा का द्वार उत्तम है। तुला, कुम्भ एवं वृष राशि के व्यक्ति के लिए पश्चिम दिशा में द्वार बनाना चाहिए। मेष, सिंह और धनु राशि के व्यक्ति के लिए उत्तर दिशा का द्वार मंगलकारी होता है।

भवन के प्रवेश द्वार को मंगल कलश, श्रीपर्णी, लता एवं वल्लियों से आवश्यकतानुसार सुसज्जित कर बलि, अक्षत एवं जल से पूजन करना चाहिए। मुख्य द्वार के रूप एवं सौन्दर्य के समान भवन के अन्य द्वार का निर्माण नहीं करना चाहिए। मुख्य द्वार को कुम्भ, लता, फल, पत्तियां, शिवजी के गण, नारियल, सिंह, सर्प, हंस आदि की आकृतियों से भी सुसज्जित करना चाहिए।

वास्तु के प्रावधानों के अनुसार शिलान्यास सदैव अग्निकोण में ही करना चाहिए। भवन जब भली प्रकार निर्मित हो जाय तो ही उचित दिन और उचित मुहुर्त में गृह प्रवेश करना चाहिए। अपूर्ण भवन में गृह प्रवेश कदापि नहीं करना चाहिए।

भवन का मुख्य द्वार हर प्रकार के वेध से सुरक्षित होना चाहिए। द्वार-वेध का तात्पर्य यह है कि द्वार के ठीक सामने किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं होना चाहिए, जिससे द्वार का आवागमन अवरूद्ध होता हो। द्वार का वेध कई प्रकार से हो सकता है। मार्ग द्वारा, वृक्ष द्वारा, कीचड़ द्वारा, कूप द्वारा, कील द्वारा, देवता के द्वारा, स्तम्भ द्वारा । इन सबों से वेध होने पर गृह-स्वामी एवं परिवार के सदस्यों को कई कठिनाइयों एवं व्याधियों से गुजरना पड़ता है। गृह-स्वामी का कर्त्तव्य है कि वह भवन के मुख्य द्वार को हर प्रकार के वेध से सुरक्षा करे। गृह की उंचाई से दुगुनी दूरी पर यदि वेध हो, तो दोष समाप्त हो जाता है।

भवन के विस्तार पर भी दिशा-निर्देश दिये गये हैं। भवन का विस्तार सदैव चारों दिशाओं में समान रूप से होना चाहिए। इस प्रकार वास्तु भवन निर्माण कला के बहुआयामी पक्षों को प्रस्तुत करता है।

शोधार्थी द्वारा अम्बिकापुर नगर के करीब सौ भवनों का वास्तु-शास्त्रीय विश्लेषण संलग्न अनुसूची के आधार पर किया गया है। शोध सर्वेक्षण से भिन्न-भिन्न दिशाओं एवं अलग-अलग परिस्थितियों में निर्मित भवनों एवं उनमें निवास करने वाले व्यक्तियों के जीवन पर वास्तु-शास्त्रीय प्रभाव का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ । शोध निष्कर्षो से यह पता चलता है कि वास्तु-शास्त्रीय सिद्धान्त व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करते हैं। कुछ महत्वपूर्ण तथ्य भी प्रकाश में आये।

1. नगर के मुख्य मार्ग के एक तरफ निर्मित भवन व दुकानों का प्रवेश-द्वार दक्षिण की ओर है। दुकानों की स्थिति ठीक नहीं है। व्यवसाइयों के घर की परिस्थितियां भी अनुकूल नहीं हैं, परन्तु कुछ दुकानें बहुत अच्छा व्यवसाय कर रही हैं। दक्षिण की ओर प्रवेश द्वार वाले भवनों में निवास करने वाले लोग बुरी संगती से भी प्रभावित हैं।

2. नगर के ही एक अन्य मार्ग पर स्थित भवनों के प्रवेश द्वार दक्षिण की ओर हैं। यहां तीन-चार घरों के युवा सदस्यों ने आत्महत्या की है तथा घर के लोग भी अन्तर्कलह एवं आर्थिक तंगी के दौर से गुजर रहे हैं ।

3. शोध निष्कर्षों से यह पता चलता है कि पश्चिम की ओर प्रवेश द्वार वाली दुकानों का व्यवसाय भी अच्छा है, परन्तु सारा दिन दुकानदार सूर्य के किरणों के दुश्प्रभाव से ग्रस्त रहते हैं। तेज धूप के कारण दुकान में रखी वस्तुएं खराब हो जाती हैं। इसके विपरीत पश्चिम की ओर प्रवेश वाले भवनों की स्थिति ठीक नहीं है। इस प्रकार के भवनों में निवास करने वाले लोग कई परेशानियों से गुजर रहे हैं।

4. पूर्व एवं उत्तर की ओर प्रवेश द्वार वाले भवनों में निवास करने वाले लोगों का जीवन-स्तर अति उत्तम है। लोगों ने जीवन के हर क्षेत्र में विकास किया है (कुछ अपवादों को छोड़कर)। पूर्व एवं उत्तर की ओर प्रवेश द्वार वाले भवनों में निवास करने वाले लोग धार्मिक प्रवृत्ति के हैं एवं उनकी आध्यात्मिक अभिरूचि भी है। पूर्व एवं उत्तर की ओर प्रवेश वाली दुकानों, व्यावसायिक परिसरों के व्यवसाय की स्थिति अति उत्तम है।

5. शोध परीक्षणों में एक विद्यालय का परीक्षण करने पर प्रतीत हुआ कि पूर्व में विद्यालय, नगर में अग्रणी था, परन्तु बाद में विद्यालय का स्तर अचानक गिरने लगा। कारणों की खोज करने पर यह ज्ञात हुआ कि विद्यालय के ईशान कोण में एक शौचालय का निर्माण करा दिया गया है। विद्यालय के अधिकारियों को इस तथ्य से अवगत कराया गया। अधिकारियों ने शौचालय तोड़वा कर वहां से प्रवेश द्वार का निर्माण कराया है। विद्यालय की स्थिति में आश्चर्यजनक सुधार आया है।

6. नगर का महाविद्यालय, जो कि जिले का सबसे बड़ा शिक्षण-केन्द्र है, दक्षिणाभिमुख है। यहां वर्ष भर सुचारू रूप से कक्षाएं नहीं चल पाती हैं। महाविद्यालय में अध्ययन-अध्यापन की भावना का अभाव है।

7. जिन भवनों में आग्नेय कोण में रसोई घर नहीं है, वहां की महिलायें कई बीमारियों से ग्रसित हैं। इसी प्रकार जहां आग्नेय कोण में शौचालय का निर्माण कराया गया है, उस भवन के लोग पाइल्स की बीमारी से ग्रसित हैं।

8. जिन भवनों में पश्चिम की ओर कूप का निर्माण कराया गया है या कोई बहुत बड़ा गड्ढ़ा है, वहां घर का बड़ा सुपुत्र दुर्व्यसनों का शिकार है।

इस प्रकार कई अन्य शोध-निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं। शोध अध्ययन में जो परिकल्पनाएं निर्धारित की गयी थी, उनकी पुष्टि होती है।

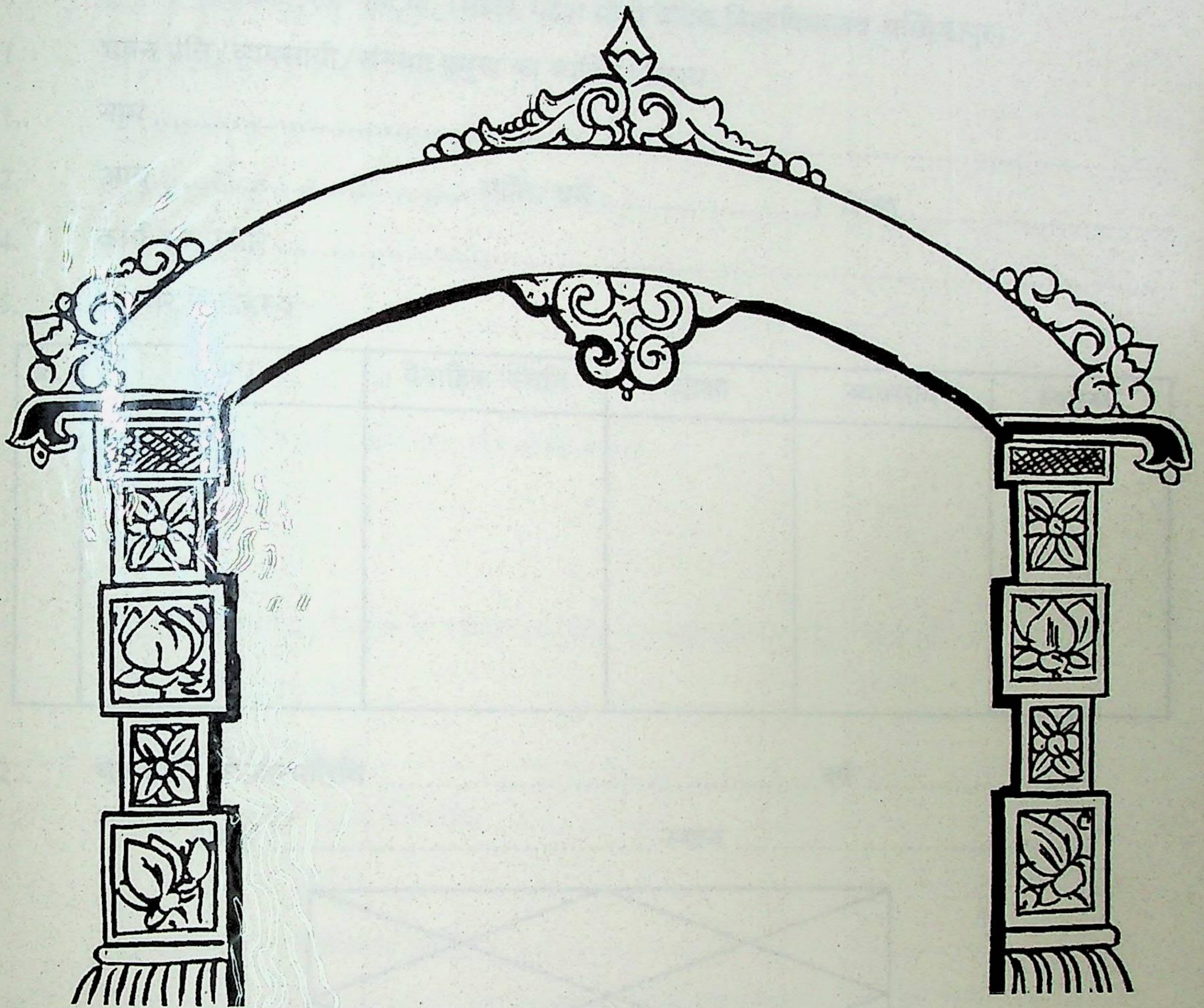
शोध निष्कर्षों के प्रकाश में यह बात सिद्ध होती है कि वास्तु-शास्त्र पूर्णतः वैदिक ज्ञान है। वैदिक वास्तु-शास्त्र के नियम सौर मण्डल के ग्रह-नक्षत्रों, विद्युत चुम्बकीय तरंगों एवं खगोलीय गवेषणा पर आधारित हैं। इस प्रकार यह शास्त्र पूर्णतः वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। भवनों, नगरों आदि के निर्माण में यदि वास्तु के सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाय, तो प्रकृति की समस्त शक्तियां, जो कि उर्जा के स्रोत हैं, अपने सही अनुपात में कार्य करती हैं। इस प्रकार निर्मित नगरों एवं भवनों में निवास करने वाले लोगों का जीवन भौतिक, शारीरिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक रूप से समृद्धशाली बनता है एवं लोग जीवन के हर क्षेत्र में विकास करते हैं।

सारांश रूप में देखा जाय तो भारतीय वास्तु परम्परा भवन निर्माण कला के सूक्ष्मतम तथ्यों का प्रतिपादन करती है। भवन के कक्ष नियोजन में साधना एवं दीक्षा ग्रहण करने हेतु भी कक्ष का निर्धारण किया गया है। इस प्रकार भारतीय भवन निर्माण कला केवल भौतिक ही नहीं आध्यात्मिक पक्षों का भी पक्ष प्रस्तुत करती है। नक्षत्र, ग्रह, तारों के प्रभाव दूरगामी होते हैं एवं पृथ्वी पर स्थित संरचनाओं एवं प्राणियों पर पड़ते हैं।

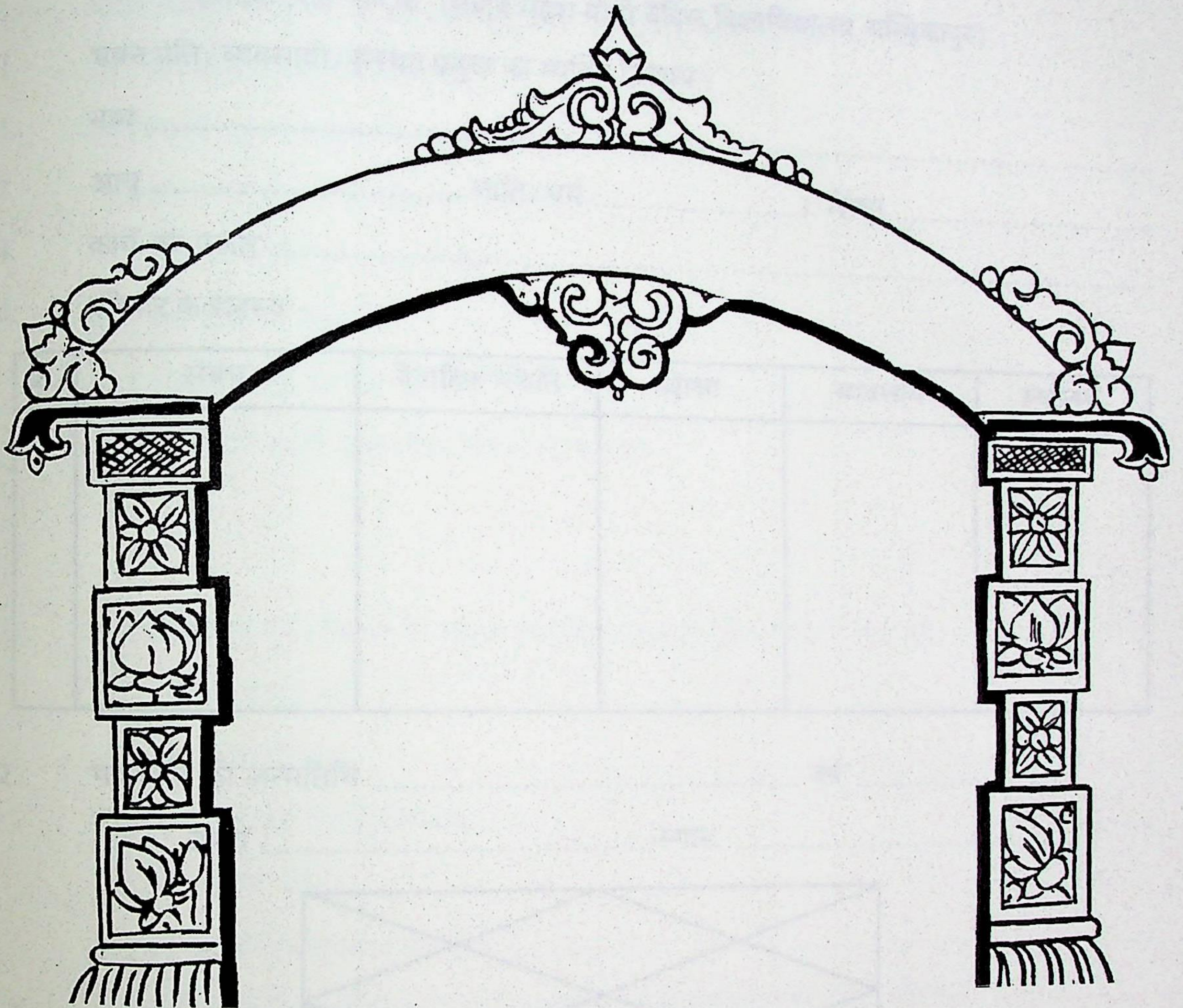
इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर भवन निर्माण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार शोध निष्कर्षों से निर्धारित परिकल्पनायें सिद्ध होती है।

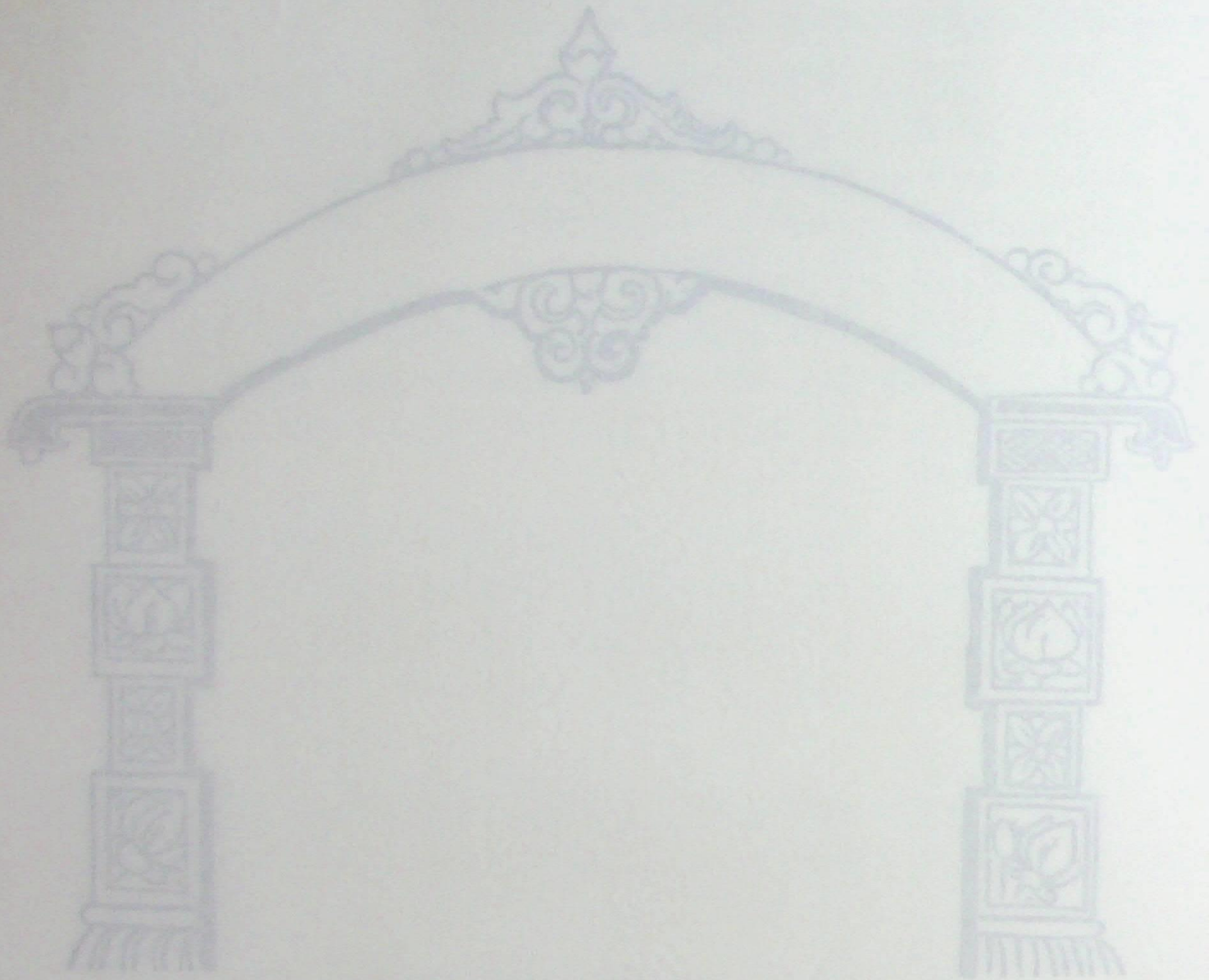




परिशिष्ट



परिशिष्ट



परिशिष्ठ -1

पूर्णतः गोपनीय
शोध कार्य हेतु

वैदिक वास्तु शास्त्र के परिपेक्ष्य में आदर्श नगर - नियोजन का व्यावहारिक अनुशीलन

शोधार्थी :- निर्मल कुमार पाण्डेय

एम.टेक.,एल-एल.बी. (महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय अम्बिकापुर)

1. भवन पति/व्यवसायी/संस्था प्रमुख का व्यक्ति परिचय :

1. नाम ....

2. आयु .... जाति/धर्म .... 3. शिक्षा ....

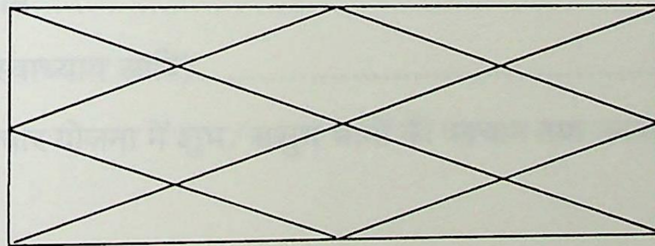
4. कार्य का प्रकार ....

5. परिवार के सदस्य -

क्र.	संबंध	वैवाहिक स्थिति	शिक्षा	व्यवसाय	स्वास्थ्य

2. भवनपति की जन्मतिथि .... वर्ष ....

समय .... स्थान ....



3. भवन का स्थल चित्र एवं मानचित्र तथा रेखाचित्र ....

4. भवन का दिक् सामुख्य ....

5. पर्यावरण विन्यास ....

6. भवन/भूमि की ढ़ाल-उत्तर/पूर्व/पश्चिम/दक्षिण ....

7. छत से गिरने वाले वर्षा के पानी की दिशा ....

8. भूमि का प्रकार (१) आकार ....

(२) गुजरने वाले सड़कों की स्थिति ....

9. मृदा परीक्षण के परिणाम :- ....

10. भवन रचना प्रारंभ -

(१) दिन ....(२) दिनांक ....(३) समय ....(४) पंचांग मुहूर्त ....

11. निर्माण में प्रयुक्त सामग्री - (१) नयी (२) पुरानी

12. निर्माण में त्रुटियां और सावधानियां -

13. भवन निर्माण में उसके आकार और गुणवत्ता के आधार पर लगा समय और व्यय -

(१) निर्माण प्रारंभ का वर्ष/दिनांक ....

(२) निर्माण प्रारंभ के समय अनुमानित लागत ....

(३) प्रारंभ में पूर्ण होने की संभावित समय सीमा ....

(४) भवन पूर्ण होने का वर्ष/दिनांक ....

(५) पूर्ण होने पर कुल व्यय ....

(६) कॉलम भराई का क्रम ....

14. निर्माण में आने वाली कठिनाईयां और उनके कारण -

15. क्या निर्माण से पूर्व/निर्माण के समय वास्तुविद् से परामर्श लिया गया ? हां/नहीं

(१) वास्तुविद् का नाम ....

(२) शैक्षणिक योग्यता ....

(३) वास्तु संबंधी डिग्री/डिप्लोमा ....

(४) संस्था का नाम ....

(५) अन्य ज्ञान (स्वाध्याय आदि) ....

16. वास्तु शास्त्रीय विचार योजना में शुभ/अशुभ भागों की पहचान तथा उनका रेखांकन

17. वास्तु शास्त्रीय विचार से योजना विन्यास नहीं हुआ तो उसके कारण

18. महत्वपूर्ण बिन्दू

(१) गृह स्वामी तथा परिवारजनों के साथ घटी

(क) शुभ घटनाएं :

(ख) अशुभ घटनाएं :

(19) भवन पर पर्यावरणीय, जैविक एवं अन्य प्रभाव (छाया दोष आदि) -

(20) भवन में गृहपति/परिवारजनों के आवास से पूर्व की स्थिति

क्र.	गृहपति/सदस्य	स्वास्थ	आर्थिक स्थिति	राजनैतिक	व्यवसायिक	शिक्षा

(21) भवन में आवास के पश्चात गृहपति/सदस्यगण की स्थिति (उन्नति/अवनति) का विवरण

क्र.	गृहपति/सदस्य	स्वास्थ	आर्थिक स्थिति	राजनैतिक	व्यवसायिक	शिक्षा

(22) आंतरिक गृह सज्जा

(1) उपकरणों (भारी समान/प्रयोग शाला)

(2) उपस्कर की स्थिति

(३) विद्युत व्यवस्था (मीटर/आदि)

(४) गैराज

(५) जल व्यवस्था

(६) सेप्टिक टैंक

(७) ड्राइंग रूम

(८) शयन कक्ष

(९) स्नानागार/शौचालय

(१०) गृहपति का कमरा

(११) बच्चों का कक्ष

(१२) अध्ययन कक्ष

(१३) पूजा घर

(१४) अन्य

अवलोकन एवं निष्कर्ष

1. भवन पति की वैचारिक भाव भूमि क्या थी ? जिसके कारण उन्होंने वास्तु शास्त्र के नियमों के अनुसार अपना घर बनाया अथवा नहीं बनाया ?

2. वास्तु पुरूष की दृष्टि जागृत/सुप्त आदि अवस्था क्या थी ?

3. जो धन गृह निर्माण में खर्च हुआ उसका स्त्रोत क्या था ?

4. जो धन और समय गृह निर्माण में खर्च हुआ क्या वह उचित था ? हां अथवा नहीं का क्या कारण है ?

5. गृहपति/स्थापति/निर्माता संविदाकार/ज्योतिषी के बीच समन्वय हुआ अथवा नहीं के कारण ?

6. उपकरण एवं उपस्कर तथा आंतरिक साज-सज्जा कितनी और कैसे सुविधा अथवा असुविधाजनक रही ?

7. जब गृहनिर्माण प्रारंभ हुआ तब इनकी गृह दशायें क्या थीं ? कैसी चल रही थी ?

8. कुल मिलाकर गृहपति एवं अन्य परिवारजनों का स्वास्थ्य, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, स्वाभाविक, राजनैतिक, व्यावसायिक तथा व्यावहारिक प्रगति अथवा दुर्गति कब-कब कितनी हुई ? उन्नति अथवा अवनति की अवधि में उनकी ग्रह दशायें क्या थी ?

9. यदि गृहपति ने अपना आवास बेच दिया तब उसका कारण क्या था ?

10. वार्षिक एवं दशवार्षिक समस्त प्रभाव एवं परिणामों का धन ऋण का लेखा-जोखा और वर्तमान स्थिति ?

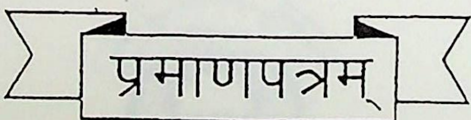
परिशिष्ट -2

महर्षिमहेशयोगीवैदिकविश्वविद्यालयः

राष्ट्रीयमहर्षिज्योतिषस्थापत्यवेदसम्मेलनम्



३०, ३१ जुलाई एवं १ अगस्त २००१



.......श्री निर्मल कुमार पाण्डेय......... नामा /नाम्नी, प्रतिभागी / प्रतिभागिनी,

विश्वविद्यालयेनायोजिते राष्ट्रीयमहर्षिज्योतिषस्थापत्यवेदसम्मेलने भागं गृहीतवान् / गृहीतवती

एवं ....वर्तमान जीवन को सफल एवं आनंदमय बनाने के लिए स्थापत्यवेद की अनिवार्यता.... इति

विषयमादाय शोधपत्रं प्रस्तुतवान् / प्रस्तुतवतीति प्रमाणयति।

भुवनेश शर्मा
प्रो. भुवनेशशर्मा
कुलपतिः

जाबालिपुरम् (मध्यप्रदेशः)
दिनाङ्क : 1 अगस्त 2001

परिशिष्ट -3

NATIONAL CONFERENCE ON TECHNOLOGY MANAGEMENT IN RURAL AREA

(With special reference to tribal area)

25-26 October 2002

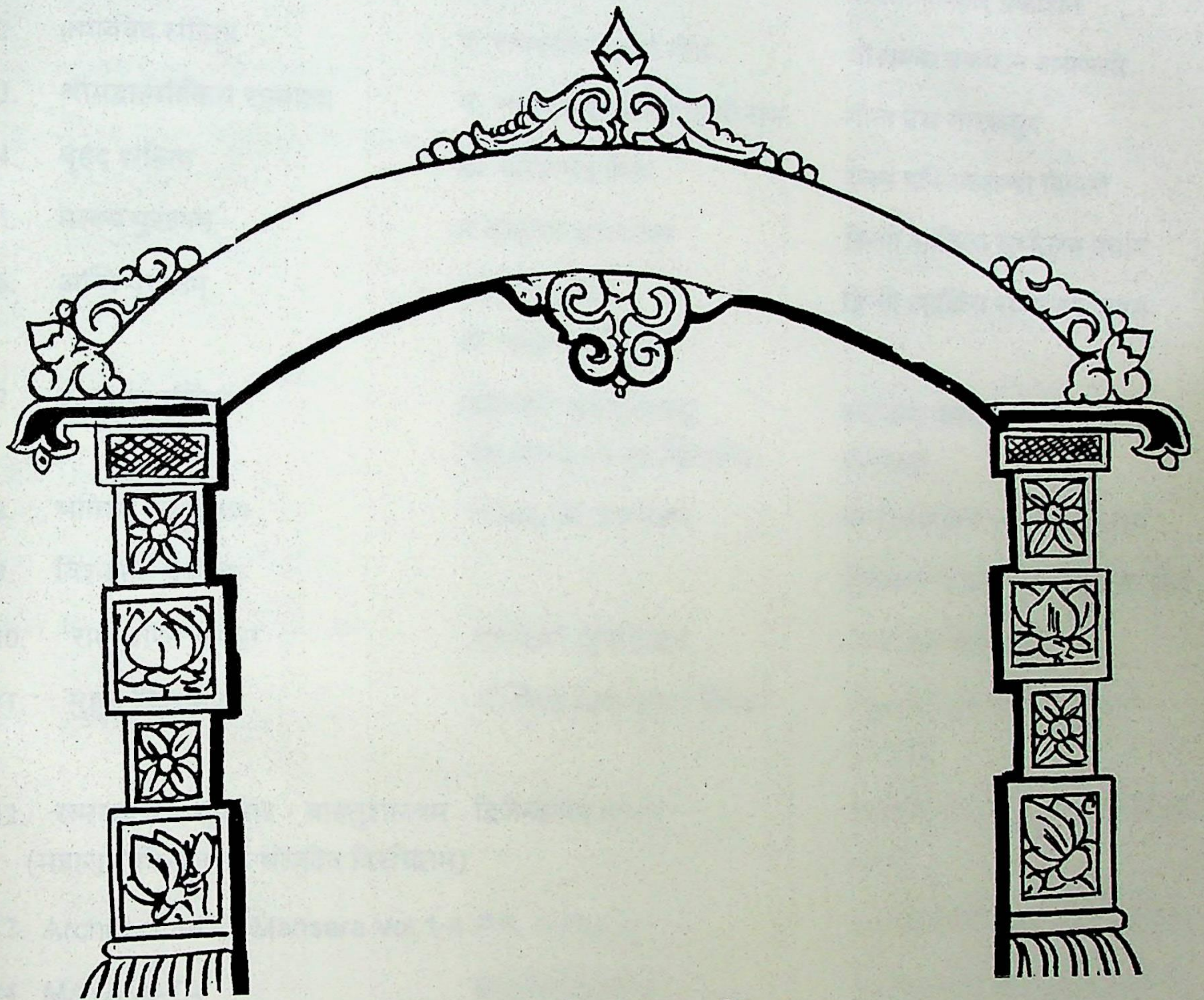
Organised by Department of Physics and Economics, Govt. P. G. College, Ambikapur
Sponsored by University Grants Commession, Central Regeonal Office, Bhopal (M.P.)



CERTIFICATE

This is to certify that Dr./Mrs./Mr. .... निर्मल कुमार पाण्डेय .... *of* शोध छात्र- महर्षि महेश योगी वैदिक वि.वि. जबलपुर .... *has presented a paper/invited talk on* .... जनजातीय क्षेत्रों में वास्तु विज्ञान सम्मत जीवन की अनिवार्यता .... *and activity participated in the national conference on "Technology management in rural area".*

Dr. S. K. Srivastava Convener	**Prof. G. P. Mishra** Patron/Principal



संदर्भ - सूची



संदर्भ - सूची

संदर्भ - ग्रन्थ

	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
1.	ऋगवेद	श्रीराम शर्मा आचार्य	गायत्री परिवार प्रकाशन
2.	अथर्ववेद संहिता	पं. रामस्वरूप शर्मा गौड	चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी
3.	श्रीमद्वाल्मीकिय रामायण	पं. रामनारायणदत्त शास्त्री राम	गीता प्रेस गोरखपुर
4.	बृहद संहिता	डॉ. सुरेशचंद्र मिश्र	रंजन पब्लिकेशन्स दिल्ली
5.	मत्स्य पुराणम्	पं बाबूराम उपाध्याय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
6.	अग्नि पुराणम्	तारिणीश झा डॉ. घनश्याम त्रिपाठी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
7.	कल्याण संक्षिप्त	मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (ईक्कीसवें वर्ष का विशेषांक)	कल्याण कार्यालय, गीता प्रेस गोरखपुर
8.	भविष्य महापुराण	पं बाबूराम उपाध्याय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
9.	विश्वकर्म प्रकाश:		खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन बंबई
10.	राम चरित मानस	गोस्वामी तुलसीदास	गीता प्रेस गोरखपुर
11.	मुहूर्त चिंतामणी	श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी	चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन वाराणसी
12.	समराङ्गण - सूत्रधार - वास्तुशास्त्रम (महाराजाधिराज श्री भोजदेव विरचितम)	द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल	मेहरचंद लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स दिल्ली
13.	Architecture Of Mansara Vol.1-4	P.K. Acharya	Low Price Publication, Delhi
14.	MAYAMATA (An Indian Treatise On Housing Architecutre and Iconography)	Bruno Dagens	Sitaram Bhartiya Institute Of Science and Research
15.	VASTU SASTRA (Hindu Science Of Architecutre)	D.N. Shukla	Munshi Ram Manohar Lal, Delhi
16.	वास्तु सौख्यम (राजा टोडरमल्ल विरचितम्)	आचार्य श्री कमलाकांत शुक्ल	संपूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी
17.	बृहद्वास्तु मालायाम	डॉ. ब्रम्हानंद त्रिपाठी	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
18.	वास्तु रत्नाकर	श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्विवेदी	चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
19.	मानसार (हिन्दी टीका)	शिव वर्मा, शोभा वर्मा	स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर

20.	शिलान्यास देहलीन्यास पद्धति	वायुनंदन मिश्र	मास्टर खेलाड़ी लाल संकटा प्रसाद वाराणसी
21.	गृह निर्माण व्यवस्था	बद्री नारायण त्रिपाठी	मास्टर खेलाड़ी लाल संकटा प्रसाद वाराणसी
22.	भवन भास्कर	राजेन्द्र कुमार धवन	गीता प्रेस गोरखपुर
23.	भारती भवन निर्माण योजना	नंद किशोर झाझरिया	मिथुन प्रकाशन, कानपुर
24.	वैदिक वास्तु विद्या एवं रोग कारक वास्तु दोष	निकेतन आनंद गौड	गुप्ता पब्लिशिंग हाउस, इंदौर
25.	भारतीय वास्तु ज्ञान		पं. जगदीश प्रसाद शर्मा
26.	रेमेडियल वास्तु		डॉ. भोजराज द्विवेदी
27.	Vastu and Pyramidal Remedies	Dr. Dronamraju Poornachandra Rao	Rajya Laxmi Publications, Hydarabad
28.	Gruha Vastu	Dr. Dronamraju Poornachandra Rao	Rajya Laxmi Publications, Hydarabad
29.	वास्तु माणिक्य रत्नाकर	पं. राम तेज पाण्डेय	बैद्यनाथ प्रसाद बुकसेलर, वाराणसी
30.	Engineering & General Geology	Parbin Singh	S.K. Kataria & Sons, Ludhiana
31.	वास्तु कला एवं गृहनिर्माण	डॉ. उमेश पुरी ज्ञानेश्वर	रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

शब्द - कोष

1.	संस्कृत हिन्दी कोष	वामन शिवराम आप्टे	मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशस
2.	शब्द कल्पद्रुम	राजा राधाकांत देव	
3.	अंग्रेजी - हिन्दी शब्द कोष	कामिल बुल्के	

पत्र - पत्रिकायें

1.	विज्ञान भारती प्रदीपिका	सं. -प्रो. सुरेश्वर शर्मा	विज्ञान भारती प्रकाशन जबलपुर
2.	वास्तु कला विज्ञान	शिव वर्मा	स्थापत्य वेद शिक्षण संस्थान, इंदौर
3.	गृह लक्ष्मी		सितंबर 97, पृ.क्र. 97-105
4.	The Times Of India		8 th July 2001 Sunday Review
5.	अखण्ड ज्योति		जून 200 , पृ.क्र. 30-32

